UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180126

UNIVERSAL
LIBRARY

पथ-भ्रान्त पथिक

(स्वर्गीय चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के पथभोला पथिक नामक
बँगला उपन्यास का अनुवाद)

अनुवादक

पण्डित सुन्दरलाल त्रिपाठी

तथा

पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४१

Printed and published by
K. Mittra, at the Indian Press, Ltd.,
ALLAHABAD.

निवेदन

पथ-भ्रान्त पथिक बँगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्वर्गीय चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के 'पथभोला पथिक' नामक उपन्यास का अनुवाद है। इसका अनुवाद श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी ने इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग के साहित्य-विभाग में कार्य करते समय आरम्भ किया था और वह सन् १९३३ ई० की सरस्वती में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ है। किन्तु कुछ विशेष कारणवश सुन्दरलाल जी समस्त पुस्तक का अनुवाद नहीं कर सके। आठवें परिच्छेद तक तो उन्होंने अविकल अनुवाद किया है, बाद को दो परिच्छेदों में अवशिष्ट अंश का सारांश लिखकर उपन्यास समाप्त कर दिया है। अन्त में सरस्वती में प्रकाशित अन्य समस्त धारावाहिक उपन्यासों के समान इसे भी पुस्तक-रूप में प्रकाशित करते समय यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सरस्वती में जिन परिच्छेदों का सारांशमात्र प्रकाशित हुआ है, उनका भी अविकल अनुवाद हो जाना चाहिए और उसका भार अर्पित किया गया इन पंक्तियों के लेखक को। इस प्रकार प्रारम्भ के आठ परिच्छेदों का अनुवाद श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी ने किया है और अन्त के नौ, परिच्छेदों का इन पंक्तियों के लेखक ने।

ठाकुरदत्त मिश्र

पथ-भ्रान्त पथिक

पहला परिच्छेद

परिचय

वह बेचारा मर्चेण्ट आफ़िस का एक साधारण क्लर्क है। केवल तीस रुपया मासिक वेतन पाता है। इतने में क्या खाये और क्या पहने। इसी लिए न तो उसे यथेष्ट पुष्टिकर भोजन मिल पाता है और न उसके मन मे पोशाक-पहनावे की तरफ़ ही नजर डालने का उत्साह उत्पन्न होता है। उसकी आकृति देखते ही मालूम पड़ जाता है कि वह अनाहार-क्लिष्ट और दुर्भिक्ष-पीड़ित है—उसकी आँखें भीतर को धँस गई हैं। आँखों के गड्ढों से लेकर उसके दोनों गालों को मानो किसी ने तराश कर बैठा दिया है। उसकी दोनों आँखें बड़ी-बड़ी है, परन्तु उनमें कोई भाव नही है, चाहना में कोई अर्थ नहीं है। मछलियों की आँखों की तरह वे आँखें केवल देख सकती हैं, मन का कोई भाव व्यक्त नहीं कर पातीं। लोग कहते हैं कि आँखें मन का दर्पण हैं, परन्तु उस पर यह बात बिलकुल लागू नहीं होती। उसकी दृष्टि शिशु की तरह सरल नहीं है, किन्तु मूढ़ की तरह अचेतन है। उसके शरीर का वर्ण शायद कभी गौर रहा हो, अब वह आलस्य-अवहेलना के कारण ताँबा का-सा हो गया है। उसके सिर के प्रायः सभी बाल झड़कर पतले पड़ गये है। परन्तु न तो वह एकदम चँदवा ही कहा जा सकता है और न यही कहा जा सकता है कि उसके सिर में बाल ही हैं। सारे सिर में बाल फैले हुए हैं, परन्तु बहुत विरल

हो गये हैं, मानो बहुत दिन के मलेरिया-ज्वर से पीड़ित रोगी का सिर हो। उसकी मूँछें भी पतली हैं, ओंठ के बीच के बाल विरल हैं और दोनों किनारों की मूँछें लम्बी होकर नीचे की ओर झुक गई हैं, मानो किसी चीनी की मूँछें हों। तिस पर उसके दोनों कानों के नीचे तक फैले हुए और कानों में भरे हुए बालों ने उसकी एक अजीब किस्म की सूरत बना दी है।

उसके दफ्तर जाने की पोशाक ने न जाने कब जन्म ग्रहण किया था, उसका कोई लेखा नहीं है। अपने जीवन के पहले प्रभात में वह जीन के सादे कोट-पतलून के रूप में थी। अब उसमें कुछ-कुछ पीले रंग का मिश्रण दिखाई पड़ता है। यदि वह अपनी इस एक-मात्र पोशाक को मैली होने पर धोबी के घर भेजने का अवसर भी निकाल ले और अधिक-से-अधिक दो दिन तक उसका विरह भी सहन कर सके तो धोबी तो उसकी अन्तर्वेदना नहीं समझेगा—वह आठ-दस दिन से कम में उसे नहीं लौटायेगा। इतने दिनों का विरह वह कैसे सहन कर सकता है? वह मर्चेण्ट आफिस का क्लर्क ठहरा, उसके भाग्य में तो विधाता ने एक साथ ही चार दिन से अधिक छुट्टी लिखी ही नहीं है। तिस पर पूजा की छुट्टियों में कुछ दिनों तक धोबी लोग भी आनन्द मनाते हैं, उन दिनों कपड़े नहीं धोते। अतएव बीच-बीच में दो-एक दिन की छुट्टी मिलने पर वह तुरन्त धो देने के लिए अपनी पोशाक को उड़िया धोबी के हाथों सौंप देता है अथवा गर्म पानी में साबुन घोलकर खुद ही धो लेता है। धोबी के घर में ज़्यादा दिनों के लिए डालकर धुलवा लेने का मौक़ा उसे कभी नहीं मिलता। पोशाक पहने बिना जाने पर भी साहब नाराज़ होता है और मैली पोशाक देखकर भी उसका पारा चढ़ जाता है। इसी लिए वह ग़रीब अपनी पोशाक को न तो धुलने को ही डाल सकता है और न दूसरे कपड़े पहनकर ही दफ़्तर जाने का साहस करता है और उस ग़रीब का वेतन महीने में केवल तीस रुपया निर्धारित है। जिस महीने

में तीस दिन होते हैं उसमें तो एक रुपये रोज़ की भी आय हो जाती है। परन्तु वर्ष के अधिकांश महीनों मे प्रायः इकतीस दिन ही होते हैं। अतएव महीने में एक दिन उसे घाटे में काम करना पड़ता है। इतने थोड़े रुपयो में क्या खाये, क्या पहिने और किस आसरे पर नई पोशाक़ बनवाये? इसी लिए उसकी यह पोशाक़ इतने दिनो तक पक-पककर पीली पड़ गई है। कोट की बाँहो और पेंट के किनारो के फट जाने से उनमे से सूत के फुचड़े निकल आये हैं, मानो कोट-पतलून झालरदार ही हो।

उसका पैत्रिक मकान कलकत्ते में ही घूघूडाँगा में है। उसके पिता ने यशोहर-जिले से कलकत्ते में आकर मामूली रोजगार करना शुरू किया था। पहले-पहल वह अपने सिर पर लादकर कुलफ़ी-बरफ़ बेचा करता था, आम की भी फेरी लगाता था। उसी से कुछ रुपया जमा करके उसने टाला मुहल्ले में एक किराने की दूकान खोली। समय पाकर उसकी दूकान जम गई और हाथ में कुछ रुपये भी आ गये। अन्त में उसने न शहर और न गाँव में, बल्कि कलकत्ते से मिले हुए घूघूडाँगा नाम के मुहल्ले में थोड़ी-सी ज़मीन लेकर दो पक्के कमरे और एक खपरैल का रसोईघर बनवाया था। लेकिन उसने अपने लड़के को भला आदमी बनाने की दुराशा मे स्कूल-कालेज में पढ़ा-लिखा और एक दफ़्तर की क्लर्की दिलवाकर बहुत आनन्द के साथ परलोक-गमन किया। क्लर्क महोदय ने बाप की किराने की दूकान उठा दी है और अब उसी मकान में रहने तो लगे हैं, परन्तु मरम्मत न होने के कारण मकान में लोना लग गया है और वह जहाँ-तहाँ से झर-झर कर गिरने लगा है। किसी दिन यही उसे दफ़नाकर उसकी संसार-यन्त्रणा शान्त कर देगा। इसकी अपेक्षा तो यदि वह अपने पिता की किराने की दूकान ही चलाता होता, तो खा-पहनकर स्वस्थ शरीर से आनन्द-पूर्वक अपने दिन बिता सकता। लेकिन इससे तो भलमनसाहत में बट्टा लग जाता।

उसका मकान लकड़ियों के घेरे से घिरा हुआ है। घेरे के एक तरफ़ लगा हुआ बेंड़ा ही उसके मकान का दरवाज़ा है। दीवार घिरवाने के पहले ही उसके पिता का स्वर्गारोहण हो गया था। इसी लिए मकान की चहारदीवारी नहीं बनवाई जा सकी।

ये लोग तीन भाई हैं। यह मँझला है। बड़े और छोटे दोनों भाई पढ़-लिखकर नौकरी की तलाश में परदेश चले गये हैं। उनमें मे कोई भी मँझले की खोज-खबर नहीं लेता। उसका पिता भद्रासन मकान के अतिरिक्त चार हज़ार के लगभग नक़द रुपया भी छोड़ गया था। उसने मरते समय कहा था कि "तुम्हारी यह मातृहीन छोटी बहन छोड़े जाता हूँ। इसे बड़ी मुसीबत से पाल-पोसकर इतनी बड़ी कर सका हूँ। परन्तु इसका विवाह करके नहीं मर सका। जो रुपया छोड़े जा रहा हूँ उससे अच्छा वर और घर ढूँढ़कर इसका विवाह कर देना। तुम लोग लड़कों की जाति हो, अपने लिए उद्यम करके कमा लोगे; मेरी दुःखिनी की तरफ़ ध्यान रखना। यह सब रुपया मैंने दुःखिनी के लिए ही जमा करके रक्खा था।" दुःखिनी के बड़े और छोटे भाइयों ने कहा कि वे लोग इन रुपयों से परदेश में नौकरी अथवा रोज़गार के द्वारा शीघ्र ही धनी बनने का रास्ता ढूँढ़ निकालेंगे। तब दुःखिनी के विवाह में दस-पचीस हज़ार रुपया भी ख़र्च कर सकेंगे। आज-कल के समय में केवल चार हज़ार रुपया में कहीं अच्छा लड़का भी मिल सकता है? मँझला भाई ग़रीब, सीधा आदमी था। अतएव उसने भाइयों के बहकावे में आकर उन्हें सब रुपया सौंप दिया। अपने लिए अथवा बहन के लिए कुछ भी नहीं रख सका।

उन रुपयों को लेकर उसका बड़ा भाई अमरीका जा पहुँचा और वहाँ नरम रेशम का चोग़ा और पगड़ी पहनकर संन्यासी बन गया। वह अब विवाह न करने पर भी स्वामी जी अथवा बाबा जी बनकर विलास और ऐश्वर्य के सुख में भूला है। वह संसार-विरक्त संन्यासी ठहरा, जिसे अपने-पराये का भेद नहीं है। अब उसके लिए वसुधैव

कुटुम्बकम् का मन्त्र ही इष्ट है। अतएव उसके मन में अपने भाई-बहन का कोई संवाद लेने की बात ही नहीं उठती।

और उसका छोटा भाई ब्रह्मदेश में चावल और लकड़ी का रोज़गार करने चला गया। वहीं उसने एक ब्रह्मी स्त्री से अपना घर बसा लिया है और सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक रहने लगा है। उसने भी तब से आज तक अपने घर की तरफ़ अपना मुँह नहीं किया है, साथ ही भाई-बहन की कोई खोज-ख़बर लेना भी उचित नहीं समझा।

बहन जब विवाह करने के योग्य हो गई तब मँझले भाई ने अपने दोनों भाइयों को अनेक चिट्ठियाँ लिखी, तार दिये, परन्तु कोई जवाब नहीं पा सका। अन्त में लाचार होकर पैत्रिक मकान गिरवी रखकर अपनी मातृहीन दुखिनी बहन का बहुत अच्छे घर में विवाह कर दिया। परन्तु विवाह के दो महीने के बाद ही वह बहन मर गई और उसे बे-घर का बना गई। उसका मकान दूसरे के हाथ में चला गया, वह कभी उसे छुड़ा भी सकेगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। उसके पिता ने यह मकान बनवाया था और पूंजी का रुपया ख़र्च किये बिना ही अपने चलते हुए रोज़गार से हर महीने कुछ न कुछ ख़र्च करके उसे पूरा करवाता जाता था। परन्तु दीवार के भीतरी हिस्से में पलस्तर लगवा लेने पर भी बाहर चूना नहीं लगवा सका था। अब मकान दूसरे के हाथ गिरवी रक्खा है, बहुत सम्भव है कि किसी दिन इसे छोड़कर रास्ते में खड़ा होना पड़े। इसी लिए वह मकान की मरम्मत की बात तक नहीं सोचता; और सोचने पर भी वह कर क्या सकता है। कुल तीस रुपया का तो नौकर है, ख़ुद क्या खाये-पहने और कहाँ से मकान में पलस्तर लगवाये। अतएव उसका मकान उसी की तरह अकालवार्धक्य से जीर्णजीर्ण हो गया है, दरवाज़ों और खिड़कियों पर न रङ्ग पोता, न तारकोल लगवाया जा सका है। सारा मकान गन्दा पड़ा है। वह अब अपने इस पैत्रिक मकान में दूसरे के मकान की तरह उदासीन होकर निवास करने लगा

है। उसका महाजन प्रायः आकर उसे डाँट जाता है कि मैं तुम्हारा मकान बेचकर अपना ऋण और सूद अदा कर लूँगा।

इन्हीं सब कारणों से वह ग़रीब अपना विवाह तक नहीं कर सका है। संसार में कौन उसका अपना है, सो भी तो वह नहीं जानता। ये लोग कभी अपने देश नहीं गये। अब तक परदेश में ही रहते चले आ रहे हैं! उसकी मा के मरने पर उसके पिता ने दूर के रिश्ते की एक विधवा बहन को बुलाकर भोजन बनाने के लिए अपने मकान में रख लिया था। वही बुढ़िया बुआ अब तक उसके मकान में है। वही रसोई बनाकर उसे दफ़्तर जाने के पहले खिला देती है और उसके घर की रखवाली करती है।

परन्तु इस हीन, दरिद्र और अभागे क्लर्क का नाम काफ़ी यमकपूर्ण श्रीपुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड है, जैसे काने लड़के का नाम पद्मलोचन हो। बेचारे के इस (न उच्चारण किये जा सकने योग्य) नाम के कारण भी दफ़्तर का साहब उस पर बहुत नाराज़ रहता है। वह अपने मुँह से इसके नाम का उच्चारण नहीं कर पाता। न तो वह पुण्डरीकाक्ष बाबू ही पुकार सकता है और न मिस्टर पूतितुण्ड ही उच्चारण कर पाता है। उसकी बात कहते वक़्त साहब बहुत नाराज़ हो जाता है और कहता है—ऐ भद्दे और भयावह नामवाले बाबू!

पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड की जितनी अधिक दुर्दशा हुई थी, उसका मन भी उतनी ही हताशा से भर उठा था। वह हर साल अपने आफ़िस के साहब की मार्फ़त देशी और विलायती बहुत-से घुड़दौड़ों के टिकट खरीदता है। कौन जाने यदि तीर लग जाय तो बात की बात में उसका भाग्य जग जाय। बेचारा पेट काटकर जो दो पैसा जमा करता है वह घुड़दौड़ के घोड़े के पीछे विलीन हो जाता है, अधिक दिन उसके पास सञ्चित नहीं रह पाता। इसकी अपेक्षा भी एक बहुत भारी और दुर्लभ दुराशा ने उसके मन में स्थान कर लिया था। यह दुराशा गङ्गानगर के जमींदार राजाबहादुर राजेन्द्रनारायण रायचौधरी की ज्येष्ठा कन्या

मेना देवी को अपने इस टूटे-फूटे घर में गृहिणी के रूप में लाने की प्रचण्ड इच्छा थी। वह मेना को केवल दूर से अपनी आँखों से देखकर उसका अत्यन्त आन्तरिक स्नेह कर बैठा था।

· पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड के मकान के ठीक सामने ही राजाबहादुर का बाग़ से घिरा हुआ एक विशाल भवन है। उस भवन में एक प्रकाण्ड अहाता है, बाग़ चहारदिवारी से घिरा है, सामने की ओर लोहे का फाटक है, उसमें सोने का पानी चढ़ा है। फाटक के सामने सङ्गीनधारी सन्त्री का पहरा है। फाटक के भीतर चारों तरफ़ एक आँगन से घिरा हुआ दोमञ्ज़िला भव्य भवन है। पुण्डरीकाक्ष के एकमञ्ज़िले मकान के आँगन से उसकी छत भर दिखाई पड़ती है, भवन बाग़ की आड़ में वृक्षों और पत्तों से ढका है। बाहर के फाटक से मकान की तरफ़ जाने के रास्ते के किनारे एक कटघरे में दो बुलडाग कुत्ते बँधे रहते हैं। उन दोनों का भों-भों का भयावह नाद पुण्डरीक अपने घर से सुनकर ही डर के मारे काँप उठता है। शाम के वक़्त लालबेगी जब उन शेर के समान दोनों कुत्तों को मोटी ज़ञ्जीर में बाँधकर घुमाने के लिए बाहर निकालते हैं तब उनका विपुल कलेवर और प्रकाण्ड मुँह में दाँतों की बिभीषिका देखकर पुण्डरीक के मन में कभी राजाबहादुर के मकान में जाने तक की कल्पना नहीं हो सकती थी। बहुत दुर्लभ होने पर भी पुण्डरीक का मन मेना देवी के प्रति आकृष्ट हो गया था। वह इस दुराशा को किसी प्रकार भी अपने मन से दूर नहीं कर सकता था।

पुण्डरीक की आँखें उसे देखने के लिए लालायित रहती हैं। मेना और एना दो बहनें हैं, वे रोज़ कालेज जाती-आती हैं। कभी-कभी वे शाम को प्रकाण्ड रोल्सरायस कार में बैठकर घूमने भी निकलती हैं। पुण्डरीक अपने आफ़िस जाने का बढ़िया सूट पहन और धूसर वर्ण का एक छाता हाथ में लेकर अपने मकान के बाड़े के सामने खड़ा हो जाता है। मेना देवी को एक बार आँखों से देख लेने को अपनी शुभ यात्रा मानकर आफ़िस की तरफ़ रवाना होता है। कालेज में

अनेक छुट्टियाँ होती हैं। इन छुट्टियों में मेना और एना कालेज नहीं जातीं। परन्तु अभागे मर्चेंट आफिस में तो इतनी सस्ती छुट्टियाँ नहीं हैं। अतएव पुण्डरीक को कालेज की छुट्टियों के दिनों में मेना देवी को देखे बिना ही दफ़्तर जाना पड़ता है। यात्रा का मुहूर्त शुभ किये बिना जाने को मजबूर होने के कारण सारा दिन उसका मन असमञ्जस में पड़ा रहता है, यह डर लगा रहता है कि न जाने कब कौन अमंगल हो जाय। किसी दिन बड़े बाबू अथवा साहब से डाँट खाने पर ही वह सोचता है—भाग्य में आज कष्ट बदा था। उसे मैं पहले से ही जानता था। आज की यात्रा एकदम निष्फल थी।

मेना और एना से आँखों की वार्ता के अतिरिक्त वह कभी मौखिक आलाप नहीं कर सका था। फिर भी उसने उनके नौकरों-दरबानों आदि से बातें कर करके उनका पूरा परिचय प्राप्त कर लिया था।

पुण्डरीकाक्ष मेना को मन ही मन प्यार करने लगा था, अतएव वह मेना के मकान के सभी लोगों को प्यार करता था, यहाँ तक कि उन दोनों बुलडागों तक को वह प्यार करने की चेष्टा करता। क्योंकि अँगरेजी में एक कहावत है कि यदि तुम मुझे स्नेह करो तो मेरे कुत्ते को भी तुम्हें स्नेह करना होगा। उस मकान के नौकर-चाकर, दासी-दरबान, गुमाश्ते आदि सभी के प्रति पुण्डरीकाक्ष के मन में आदर का भाव था, सबका वह सम्मान करता था। परन्तु उसी मकान में एक आदमी था जिसे देखते ही न जाने क्यों उसके शरीर में आग लग जाती थी, उसे वह फूटी आँखों नहीं देख सकता था। उस आदमी के बारे में भी उसने जान लिया था कि वह राजाबहादुर का मन्त्री है। उसका नाम भास्कर है। उसकी उम्र और रूप देखते ही पुण्डरीकाक्ष को रोष आ जाता। उसकी उम्र छब्बीस-सत्ताईस वर्ष के क़रीब होगी। और रूप बड़ा मनोहर, सुन्दर, साँचे में गढ़ा हुआ-सा सुडौल मुँह है, उसकी दोनों उज्ज्वल और विषाद-पूर्ण आँखें सबसे पहले लोगों का मन

हर लेती हैं। बहुत बड़ी खिंची हुई न होने पर भी उन दोनों आँखों में जो एक तेज छिपा हुआ है उसे देखते ही उसके सामने सबका मन अभिभूत और संकुचित हो जाता है। आँखों के बाद ही तीक्ष्ण खड्ग के समान उसकी नाक पर दृष्टि जाती है। उसके शरीर का वर्ण चम्पक-पुष्प के समान गौर है और उसमें एक प्रकार की सुनहरी दीप्ति फूटी पड़ती है, वह मानो शान्त सरोवर के नील जल पर चन्द्र-ज्योत्स्ना का वर्ण हो। उसका आकार काफ़ी बड़ा है, छः फ़ुट के लगभग लम्बाई होगी; शरीर न अधिक स्थूल है, न अधिक दुर्बल; सारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठोस, केवल पेशियों से बना है। साथ ही उसका शरीर ऐसा कमनीय है, मानो मक्खन से बना हो, मानो किसी निपुण शिल्पी ने मोम गूँध गूँध-कर इस मूर्ति का गठन किया हो। पहले-पहल देखते ही उसके बल का ज्ञान हो जाता है। परन्तु उसमें कहीं भी गुण्डेपन का आभास नहीं मिलता। उसका मुँह सदा ही विषादयुक्त गम्भीर और मितभाषी-सा बना रहता है। पुण्डरीकाक्ष उसे देखते ही डरते-डरते नमस्कार करता है, वह भी बदले मे नमस्कार करता है, उसके मुँह का भाव ज़रा भी नहीं बदलता। पुण्डरीकाक्ष का मन यद्यपि उसे नमस्कार करने के बाद जलने लगता है; तथापि वह मेना देवी के मकान का एक प्रधान व्यक्ति है, उसका असम्मान करने का भी उसे साहस नहीं होता। पुण्डरीकाक्ष ने यद्यपि कभी खुलकर यह बात नहीं सोची थी, तो भी अनजाने में ही उसके अन्तर में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था कि मेना और भास्कर की जो विषादयुक्त गम्भीरता है उसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य छिपा है। उसके अन्तर में एक प्रकार की ईर्ष्या और भय का यह भाव था कि जिसे वह अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता है उसे शायद यह व्यक्ति छीने लिये जा रहा है, हो न हो अब तक यह उसका मन छीन भी चुका हो। ऐसी ही दुर्भावनाओं से पुण्डरीक का मन जितना ही भरता था, उतना ही वह मेना से अनुरक्त और भास्कर से विरक्त होता जाता था।

राजाबहादुर के मेना और एना के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं थी। एक लड़का था, उसे मरे हुए पाँच-छः वर्ष हो गये हैं। लड़के के शोक में तीन-चार वर्ष पहले इन दोनों की मा रानी भी मर चुकी हैं। राजाबहादुर की उम्र अभी ज़्यादा नहीं है, अधिक-से-अधिक पचपन-छप्पन के लगभग होगी। इस उम्र में राजा-महाराजा के लिए एक और विवाह कर लेना कौन-सी बड़ी बात है? रानी के मरने के बाद से बहुत-से ब्राह्मण विवाह तय करने के लिए उनके मकान में आते-जाते रहते हैं। परन्तु राजाबहादुर किसी प्रकार भी विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं होते। वे कहते हैं कि समर्थ लड़कियों का विवाह न करके स्वयं अपना दूसरा विवाह करने पर संसार क्या कहेगा और लड़कियाँ ही क्या सोचेंगी। बड़ी लड़की मेना उन्नीस वर्ष की हो गई है और छोटी लड़की का सत्रहवाँ वर्ष पूरा होने को है। परन्तु लड़कियाँ ज़िद किये बैठी हैं कि एम० ए० पास किये बिना वे विवाह ही नहीं करेंगी। मेना और एना दोनों ही बी० ए० में हैं—एक फ़ोर्थ ईयर में और दूसरी थर्ड ईयर में। उन्हें एम० ए० पास करने में अब भी दो-तीन वर्ष बाक़ी हैं। तब तक तो राजाबहादुर की उम्र साठ तक पहुँच जायगी। तब भी क्या वे विवाह करेंगे? वे किसी को गोद लेंगे अथवा नहीं, यह कुछ सुना नहीं जाता। तो भी एटर्नी महोदय बीच-बीच में आते-जाते रहते हैं और न मालूम क्या-क्या लिखा-पढ़ी होती है।

पुण्डरीकाक्ष ये सब बातें सुनता है और सोचता है—हाय, यदि ये मुझे गोद ले लेते। परन्तु यदि मैं राजाबहादुर का पोष्यपुत्र हो जाऊँगा तो मेना मेरी बहन हो जायगी। तब तो विवाह की सम्भावना उसी क्षण सदा के लिए समाप्त समझो। इसकी अपेक्षा तो मुझे यदि ये अपना दामाद बनाकर घर में रख लें तो सभी दृष्टियों से सुन्दर हो। परन्तु ये क्या देखकर मुझे अपना दामाद बनायेंगे? जिसके पास कुछ नहीं होता उसे ही तो लोग घर-जमाई बनाते हैं। जिसके पास कोई जीविका अथवा धन-सञ्चय होगा वह अपनी ससुराल में रोटियों के

टुकड़ों पर क्यों पड़ा रहेगा? दीन-हीन होने के कारण ही तो मैं अपनी पत्नी के चरणों का दास बनकर उसकी आज्ञा के अनुसार चलने को तत्पर होऊँगा। तो भी दामाद बनने के लिए एक गुण का होना तो आवश्यक ही है—वह है राजकुमारी का वर बनने के योग्य रूप। यदि दोनों वक़्त पेट भर अच्छी चीज़ें खाने को मिलें तो इसी चेहरे से आभा फूट पड़े। परन्तु हाय रे भाग्य। यह तो मेरा दिन का सपना देखना है। यदि घुड़दौड़ का एक दाँव मार सकूँ तो फिर मेरी बराबरी कौन कर सकता है? मेना मुझे नित्य ही देखती है, मेरी तरह वह भी अवश्य ही मन ही मन मुझसे स्नेह कर बैठी है। अब हम लोगों के विवाह का प्रश्न उठने के लिए किसी सुयोग का ही विलम्ब है। यदि मेरे पास कुछ अर्थ-बल होता, तो दास-दासियों को बख़शीश देकर मेना के पास प्रेमोपहार भेजकर उसे क़ाबू में कर लेता।

हमारे देश में कन्यापक्ष ही विवाह का प्रस्ताव करता है। परन्तु हम लोगों का तो प्रणय-घटित पाणि-ग्रहण का मामला है, कन्या तो किसी प्रकार अपने पिता से मुँह खोलकर विवाह की बात कह न सकेगी। अतएव पाश्चात्य विधान के अनुसार वर को ही विवाह का प्रस्ताव रखना पड़ेगा। किन्तु मुझमें तो इतना साहस है नहीं। यदि कहीं दरबान के द्वारा धक्के मारकर निकलवा दिया गया तो मैं मेना के सामने मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रह जाऊँगा। अन्त में विवाह के लोभ में उसे देख पाने का भी सुख खो दूँगा। विरह असह्य हो जाने पर किसी न किसी दिन मेना ही किसी के द्वारा पिता से अपने मन की बात अवश्य ही उठायेगी, और यह बात उठते ही सारा मामला बन जायगा।

पुण्डरीकाक्ष सारे दिन, दिन के स्वप्न देखता और आकाश-कुसुम-चयन करता रहता है। उसकी बुढ़िया बुआ बीच-बीच में उससे विवाह करने के लिए तक़ाज़ा कर लेती है। वह कहती है—अब मेरी उम्र बीत आई। कुछ ठीक नहीं, कब मर जाऊँ। तब देख-भाल

कौन करेगा रे पुण्डरीक ? एक कोई सयानी-सी लड़की देखकर विवाह कर ले, जो तेरी गृहस्थी का बोझ सँभाल सके। पुण्डरीक कहता है—ठहरो बुआ, पहले कुछ रुपये-पैसे तो हाथ में आ जायँ, नहीं तो बहू को घर में बिठालकर खिलाऊँगा क्या ? उसकी बुआ अपने ही आप बकने लगती है—हाँ, हाँ, तेरे हाथ में आ चुके रुपये; और कर चुका तू ब्याह। न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।

परन्तु पुण्डरीक निराश नही होता। उसके मन में दृढ़ विश्वास है कि मेना के बी० ए० का नतीजा निकलने के पहले ही या तो वही घुड़दौड़ की बाज़ी में अपार सम्पत्ति पा जायगा और तब स्वच्छन्दता-पूर्वक राजाबहादुर के पास जाकर उनकी कन्या मेना के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रख सकेगा; और नही तो मेना ही स्वयंवरा के रूप में अपने पिता से कहेगी कि पुण्डरीकाक्ष-पूतितुण्ड को वह स्नेह कर बैठी है, उसके अतिरिक्त इस जीवन मे और किसी से वह विवाह नहीं कर सकती।

पुण्डरीकाक्ष अपने मन में इस प्रकार के पागलपन की बात सोचता ही रहता। परन्तु कभी किसी से अपने मन की यह दुराशा प्रकट न करता। उसके मस्तिष्क में इतनी बुद्धि अवश्य थी और मेना की ओर से भी कभी उसे अपनी दुराशा के सफल होने का आभास नहीं मिला। मेना के मुखमण्डल में सदा गाम्भीर्य की छाप लगी रहती है, मानो कोई गम्भीर चिन्ता उसके मन में अंकित हो गई है, मानो कोई विषाद का कारण उसके जीवन में विजड़ित हो गया है। वह महारानी की तरह महीमामान्वित है, मानो वह देवी-प्रतिमा है। न उसके मुँह में हँसी दिखाई पड़ती है, न कोई चञ्चलता, आत्मस्थितता का परम गाम्भीर्य अवश्य दिखाई पड़ता है। उसमें ऐसा अनुपम रूप और लावण्य है कि उसे देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे पूजा करने की इच्छा होती है। उसे देखकर मन में भय का सञ्चार होता है, परन्तु उसे अपने मन में स्नेह करने का साहस नही उत्पन्न हो सकता। मानो ऐसा लगता

है कि नरलोक से उसका कोई सम्पर्क ही नहीं है, वह तो संसार से स्वतन्त्र, विच्छिन्न, स्वयं सम्पूर्ण है।

मेना के पास में ही गाड़ी में एना बैठी रहती है। वह मानो अपनी बहन के गाम्भीर्य का चित्रपट है। मेना की गम्भीरता को वह और भी अधिक परिस्फुट करके प्रकाशित कर देती है। उसकी आँखों में, मुँह में, सारे अवयवों में हँसी की हिलोर और चञ्चलता मौजूद रहती है। मानो वह आनन्द-सरोवर की एक तरङ्ग, शरीरिणी वाणी है। उसकी प्रत्येक अङ्ग-भङ्गी मुखर हो उठती है। उसके समीप होने के कारण ही उसकी बहन की महिमा और गम्भीरता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। और उसके बग़ल में ही उसकी बहन बैठी होती है, इसी लिए वह और अधिक चञ्चल प्रतीत होती है।

पुण्डरीकाक्ष चाहे एना की ओर न देखे, परन्तु एना नित्य पुण्डरीकाक्ष की ओर देखती है और अपनी बहन से चुपके-चुपके कहती है—देखो दीदी तुम्हारा वह लोभी बङ्गाली मुँह बाये खड़ा है।

यह कहकर एना जब हँसते-हँसते अपनी बहन की गोद में लोट जाती है तब उन लोगों की मोटरगाड़ी पुण्डरीकाक्ष के शरीर पर धूल उछालकर बड़ी दूर निकल जाती है। पुण्डरीक को किसी दिन पता नहीं चलता कि उसे देखकर एना कैसा परिहास करती है और मेना एक बार अपनी आँखों की एक कोर से उसे देखकर और गम्भीर बनकर अपनी दीदी से तिरस्कारपूर्वक क्या कहती है। मेना गम्भीर होकर एना से कहती है—छिः एना! तुम क्या लड़कपन करती हो? तुम दिन दिन बच्ची होती जाती हो क्या? उस बेचारे का मकान ही जब वहीं है तब वहाँ न खड़ा होगा तो कहाँ खड़ा होगा?

परन्तु कौन उसकी युक्ति सुनता है? एना प्रतिदिन पुण्डरीकाक्ष को देखकर 'वह देखो दीदी' कहकर बहन की गोद में लोट जाती है। जितने दिन बीतते जाते हैं, एना की बातें उतनी ही संक्षिप्त होती जाती हैं। फिर वह केवल 'दीदी' कहकर ही मेना की गोद में हँसी की

किल्लोल करती हुई लौट जाती है और उसकी दीदी को भी यह समझने में देर नहीं लगती कि क्या देखकर एना को इस प्रकार हँसी का उद्रेक हो आता है। अन्त में ऐसा हो गया कि पुण्डरीक यथास्थान उपस्थित है या नहीं, यह देखने के कौतूहल से मेना भी अब नित्य कटाक्ष के साथ उसे एक बार देख लेती और एना के हँसना शुरू करने पर उसका भी मुँह कुछ-कुछ हँसी की आभा से उद्भासित हो उठने लगा।

इसी प्रकार पुण्डरीक मेना और एना से विशेषरूप से परिचित हो गया था। और पुण्डरीक भी अधिकांश समय मेना और एना के मन में विराजमान रहने लगा। परन्तु उन लोगों की अवस्था का तारतम्य ऐसा विषम था कि वे लोग परस्पर पड़ोसी होने पर भी बराबर अनजान-अपरिचित चले आ रहे हैं। इस जनाकीर्ण नगर में आमने-सामने के मकान के निवासी होने पर भी उन लोगों में से कोई किसी को पहचान कर भी नहीं पहचानता। पड़ोसी होने पर भी एक पक्ष दूसरे पक्ष से बातें करना आवश्यक नही समझता, और दूसरा पक्ष दुर्निवार आकांक्षा होने पर भी बातें करने का साहस नहीं कर पाता।

एक दिन पुण्डरीक दफ़्तर जाने के लिए प्रस्तुत हो रहा था। इतने में उसकी बुआ ने आकर कहा—अरे पुण्डरीक, कल तेरा जन्म-दिन है। आज आफ़िस से लौटते समय अपने लिए कोई भली-बुरी चीज खरीदे लाना। और एक नया वस्त्र भी ले आना। कल एक कपड़ा पहनाकर तुझे खीर खिलाई जायगी। तू पैंतीस वर्ष का हो गया बेटा। अब छत्तीसवें में पैर रक्खेगा। इस बार अपना ब्याह कर ले बेटा। बहू के बिना यह सूना घर क्या अच्छा लगता है? तेरा एक भाई तो संन्यासी होकर कहाँ जाकर रहने लगा है, इसका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। अब क्या तू भी संन्यासी हो जायगा? तेरा यह ढङ्ग न तो संन्यासियों का-सा ही दिखाई पड़ता है और न गृहस्थियों का-सा।

पुण्डरीकाक्ष ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—इस पार अथवा उस

पार, जो कुछ होगा, मैं तुम्हें आषाढ़ के महीने में बताऊँगा बुआ। तब तक गृहस्थी अथवा फ़क़ीरी दो में से एक स्थिर हो जायगी। अब तक जब तुम मेरा स्त्री-शून्य संसार चला लाईं तब और ये कुछ महीने किसी प्रकार चला दो। उसके बाद यदि मैं विवाह कर सका तो अच्छी ही बात है, और नहीं तो तुम्हारी सेवा और सहायता करने के लिए एक नौकरानी रख दूँगा।

बुआ ने सिर हिलाकर कहा—हाय रे मेरा भाग्य? मैं क्या अपनी सेवा करवाने के लिए तुझसे बहू लाने को कहती हूँ? तेरी यह दशा मैं अब अपनी आँखों से देख नहीं सकती।

पुण्डरीक ने बुआ की बात सुनकर भी नहीं सुनी। उसने कोई जवाब नहीं दिया। उस समय वह मन ही मन हिसाब लगा रहा था—आगामी मार्च महीने में मेना की बी० ए० की परीक्षा हो जायगी और जून में नतीजा निकल जायगा। जून के ही महीने में डर्बी स्वीपर की लाटरी का फलाफल ज्ञात हो जायगा। उसके बाद मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा होगा उसका निर्णय हो जायगा, और मेरा भविष्य स्थिर हो जायगा। इस बीच यदि मेना का विवाह हो गया तो सारा मामला ख़त्म समझो। यदि तब तक विवाह न हुआ और मैं घुड़-दौड़ में बाज़ी मार ले गया तो सीधे राजाबहादुर के पास जाकर अपने साथ मेनादेवी के पाणिग्रहण का प्रस्ताव करूँगा। तब तो मेना अथवा राजा-बहादुर कोई भी मुझे अस्वीकार नहीं कर सकेंगे।

पुण्डरीकाक्ष ने अन्यमनस्क-भाव से ही डिबिया से एक पान निकाल-कर मुँह में रख लिया और मा दुर्गा का स्मरण करके अपना छाता हाथ में लेकर दफ़्तर की राह ली। वह अपने मकान के लकड़ी के बेड़े को खोलकर बाहर आ उपस्थित हुआ और चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखने लगा कि मेना की मोटर चली गई है या नहीं। वह उस मोटर के टायर का चिह्न सड़क की धूल में देखकर पहचान लेता था। उसने मेना के मकान की तरफ़ आँख फेरते ही देखा कि मेना की मोटर चली जा रही

हूँ। गाड़ी के पीछे का नम्बर तो उसके सामने ही था। गाड़ी उस पर धूल झोंकती हुई चली गई, यह देखकर वह चकित रह गया और मन ही मन बुआ को गालियाँ बकता हुआ दफ़्तर की ओर बढ़ा। व्यर्थ ही उम्र का लेखा और विवाह की चिन्ता सिर पर लादकर ही उसने देर करा दी। आज का दिन एक-दम निष्फल गया। केवल एक बार चकित दृष्टि से देख लेता था, सो भी आज मेरे भाग्य में नहीं बदा था। आज दफ़्तर में जाकर न जाने कैसी लाञ्छना सहन करनी पड़े। मधुसूदन! मधुसूदन!!

पुण्डरीक बहुत गिरे हुए मन से दफ़्तर को चला।

दूसरा परिच्छेद

भाग्यं फलति सर्वत्र

पुण्डरीकाक्ष दुर्गा-दुर्गा जपता हुआ दफ़्तर जा उपस्थित हुआ। उसके दफ़्तर के बड़े बाबू का नाम वैद्यनाथ था। लेकिन वहाँ के सब बाबू उसके सूने में उसे दैत्यनाथ कहकर पुकारते थे। पुण्डरीकाक्ष दफ़्तर पहुँचकर अपनी चुनी हुई चद्दर को कुर्सी की पीठ पर बाँधता हुआ चारों तरफ़ ताकने लगा। वह सोचने लगा कि दफ़्तर आने में तीन मिनट की देर हो गई है, यह देखकर दैत्यनाथ कहीं से लपका हुआ चला तो नहीं आ रहा है। आ पहुँचा तो आफ़त ही समझो, क्योंकि आज घर से एकदम निष्फल और अशुभ यात्रा करके चला हूँ। परन्तु यह जानकर कि दैत्यनाथ अभी तक दफ़्तर नहीं पहुँचा है उसे थोड़ा धैर्य बँधा और वह अपनी कुर्सी पर एक अख़बार रखकर बैठा। उसके बाद लेजर के पन्ने खोलकर अपने काम में लग गया।

उसका सारा दिन डर के मारे दुर्गा का नाम जप करते-करते ही बीता। उस दिन शनिवार था। दफ़्तर की छुट्टी भी जल्दी ही हो गई। उस दिन न जाने कौन से भाग्य से उसे झिड़की अथवा अपमान नहीं सहन करना पड़ा। यह देख वह कुछ आश्चर्य के साथ दफ़्तर से बाहर हुआ। अब वह प्रसन्नचित होकर सोचने लगा—मैं प्रतिक्षण देवीसूक्त का जो स्मरण करता हूँ, यही मेरा रक्षा-कवच है। दैत्यदलनी मेनादेवी की महिमा से दैत्यनाथ के विष से भरे हुए दाँत भी आज मेरा कुछ न कर सके।

पुण्डरीकाक्ष सिर पर छाता लगाये हुए धीर मन्थरगति से घर वापस जा रहा था। उस समय चारों तरफ़ स्वदेशी-आन्दोलन और विदेशी-बहिष्कार के उत्साह का तूफ़ान उठा हुआ था। रास्ते में बहुत-से

स्त्री-पुरुष दल बाँधकर वन्दे मातरम् की आवाज़ लगाते हुए जुलूस के साथ चल रहे थे। विलायती कपड़े की दूकानों के सामने लड़के-लड़कियों के दल के दल पड़े हुए धरना दे रहे थे। कितने ही लोग शराब, अफ़ीम चरस आदि की दूकानों में धरना दिये पड़े थे। चारों तरफ़ एक तरह का शोरगुल और चंचलता दिखाई पड़ती थी। सत्याग्रही बालक-बालिकायें हाथ जोड़कर और पैर पकड़कर ख़रीदारों से विदेशी चीज़ न ख़रीदने और मादक वस्तु न छूने के लिए विनय कर रही थीं। बहुत-से ख़रीदार लज्जित होकर वापस जा रहे थे। कोई चुपचाप ख़रीद भी लेता था तो उसके मुँह में उदासी का भाव आ जाता था और कोई कोई मूर्खों की तरह चिल्ला-चिल्लाकर तर्क कर रहे थे, नाराज़ी दिखा रहे थे और अपनी स्वाधीनता में बाधा पहुँचते देख थोथे घमंड और क्षमता का ढोंग भर रहे थे। और साथ ही पुलिस के कान्स्टेबुल और सार्जेंट आकर सत्याग्रही धरनेवालों को पीट रहे थे, उन्हें गिरफ़्तार कर रहे थे, तितर-बितर करके भगा रहे थे। इस समय सड़क पर चलना भी निरापद नहीं था। तितर-बितर होकर भागे हुए लोग कब सिर पर आ पड़ें, इसका कुछ ठीक नहीं था। कब सत्याग्रहियों का पीछा करनेवाली पुलिस की लाठी किसके सिर पर आ बैठेगी, इसका भी कुछ ठिकाना नहीं था। चारों तरफ़ से होनेवाली लाठियों की बौछार अपराधी-निरपराधी के निर्णय का अवसर नहीं पाती थी। पुलिस के लोग इस बौछार के अलावा और किसी तरफ़ नहीं देखते थे उनकी केवल यही कड़ी आज्ञा थी कि 'सामने के लोगो, भागो।' सड़क के दोनों तरफ़ के फ़ुटपाथ छोड़कर उसके बीच से चलना भी ख़तरे से ख़ाली नहीं था। वहाँ भी ट्राम के आरोहियों को उस पर न बैठने की प्रार्थना करने के लिए दल के दल लड़के चलती हुई ट्राम पर चढ़ जाते थे और वहाँ सार्जेंट अथवा ट्राम के नौकरों की लाठियों की चोट खाकर गिरते-पड़ते थे। वह शनिवार का दिन था। दफ़्तर की छुट्टी हो जाने पर भी अब तक बहुत-से कालेजों में छुट्टी

नहीं हुई थी। कालेजों के हर एक गेट पर भी बड़ी भीड़ जमी हुई थी। सत्याग्रही बालक-बालिकाये विद्यार्थियो से कालेज छोड़कर स्वदेश के बुरे दिन में उसकी दीनता मिटाने के लिए संलग्न होने का अनुरोध कर रही थीं। वहाँ भी 'पुलिस लाठी ऊँची किये हुए आ रही है' और उसके बाद 'इसी क्षण भागो' का शोर भगी हुई भीड़ में मच रहा था।

निरीह, ग़रीब पुण्डरीकाक्ष अपना पैत्रिक प्राण और निज का शरीर किसी प्रकार बचाकर घर पहुँच जाता तो उसकी जान बचती। जो दशा थी उससे न जाने कब प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाय कि 'काये वचने न सम्बन्धः का कस्य परिदेवना।' इसी लिए वह बहुत सतर्क होकर डर के मारे दोनों तरफ़ के फ़ुटपाथ छोड़कर बीच सड़क से खूब जल्दी-जल्दी चला जा रहा था। जब वह प्रेसीडेन्सी कालेज के नजदीक आया तब उसने देखा कि वहाँ विद्यार्थियों की बड़ी भीड़ जमी हुई है और उनका तमाशा देखने के लिए रास्ते पर चलनेवालों की उससे भी ज्यादा भीड़ जमा हो गई है। इतने में ही कहीं से गाड़ी में भरे हुए पुलिस के कान्स्टेबुल और सार्जेंट वहाँ आकर उतर पड़े और तुरन्त अन्धे होकर चारों तरफ़ से सब पर बिना बिचारे हुए लाठियाँ बरसाने लगे। भीड़ तितर-बितर होकर इधर-उधर जहाँ जगह मिली, और गलियों आदि से भागने लगी। पुण्डरीकाक्ष कोई चारा न देख कालेजस्ट्रीट छोड़ हिन्दूस्कूल के सामने की गली में घुस गया और श्यामाचरण दे स्ट्रीट से होता हुआ हरिसन रोड पार करके एकदम कालेजस्ट्रीट मार्केट के सामने आकर फिर कालेजस्ट्रीट से चलने लगा। पीछे जो काण्ड हो रहा था उसे दूर के निरापद स्थान से देखने का लोभ भी वह रोक नहीं रहा था।

बार-बार पीछे की तरफ़ देखता हुआ वह उत्तर की ओर जा रहा था। उसका मुँह सामने की अपेक्षा पीछे की तरफ़ को ही अधिक फिरा हुआ था। अभी तक वह कालेजस्ट्रीट की सीमा को पार

नहीं कर सका था कि उसने अपने सामने की तरफ़ चटापट दौड़ने की आवाज़ सुनी और डरकर पीछे की ओर मुड़ा हुआ मुँह सामने फिराकर आश्चर्य के साथ देखा कि बहुत-सी छोटी-बड़ी लड़कियाँ भागी चली आ रही हैं। पहले उनके आने की आवाज़ सुनकर वह जिस प्रकार डर गया था, अब उसी प्रकार आश्चर्य में पड़कर अवाक् रह गया और खड़ा होकर देखने लगा कि ये लड़कियाँ कहाँ जा रही हैं। विस्मय से काँप उठने के बाद जब उसकी आँखों के सामने का अँधेरा दूर हुआ तब उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि उन स्त्रियों के दल के बीच मेना और एना मौजूद हैं। वे दोनों राजा राजेन्द्रनारायण राय-चौधरी की कन्यायें हैं, जो कभी गाड़ी के अलावा एक पैर भी पैदल नहीं चलतीं, वे लोग भी आज पैदल चलकर लाठियों के बौछार की तरफ़ जा रही हैं। किस उद्देश्य से वे लोग टूटे बाँध के जलस्रोत की तरह भागी चली जा रही हैं, यह ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण पुण्डरीकाक्ष वहीं खड़ा-खड़ा हतबुद्धि होकर देखने लगा। लेकिन जब उसने यह देखा कि एना उसे छोड़कर चली गई तब उसे होश आया और वह भी उन लोगों के पीछे भागता हुआ चिल्लाने लगा—मेनादेवी, मेनादेवी, उस तरफ़ मत जाना, मत जाना, वहाँ मार-काट मची है, सिर फोड़ दिये जाते हैं।

वे सब बेथून कालेज की छात्रायें थीं। पुलिस छात्रों पर प्रहार कर रही है, यह ख़बर पाते ही वे दल बाँधकर इस यातना से उनकी रक्षा करने अथवा उसे उनके साथ ख़ुद बँटा लेने के इरादे से निकल पड़ीं। बीच सड़क पर नाम लेकर पुकारने की आवाज़ सुनकर मेना ने एक बार मुँह फिराकर पुण्डरीकाक्ष की तरफ़ देखा, साथ ही और भी बहुत-सी लड़कियों ने देखा। लेकिन उस सड़क पर खड़ी होकर कैफ़ियत देने का समय नहीं था। वे लोग कुछ बोले बिना आगे बढ़ गईं। केवल एना पुण्डरीकाक्ष को देखते ही हँस पड़ी—हि हि हि! दीदी! वही........

मेना ज़रा डाँटकर आगे बढ़ती हुई बोली—चुप।

लड़कियों का दल जितना आगे बढ़ता जाता था, भीड़ उसके लिए रास्ता खाली करती जाती थी। लड़कियाँ भीड़ को पार करके आगे बढ़ गई और कौतुकप्रिय जनता से घिरकर वे पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि से ओझल ही गई।

पुण्डरीकाक्ष कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्य होकर एक क्षण तक खड़ा रहा और उसने मन में एक निश्चय कर लिया। उसके बाद वह भी उसी गोलमाल की तरफ़ वेग से दौड़ा। आज मेना से परिचय प्राप्त करने का जो परमसुयोग उपस्थित हुआ था, उसे वह किसी प्रकार खो नहीं सकता था।

लड़कियाँ सुगमता से ही जनता का व्यूह भेद करके भीतर पहुँच गई। सबने आदर के साथ उनके लिए रास्ता छोड़ दिया। परन्तु उस भीड़ की पक्की दीवार को तोड़कर भीतर घुसने में पुण्डरीकाक्ष को बड़ी देर लग गई। पूर्वीपाड़ा के फ़ुटपाथ से होकर प्रेसीडेन्सी कालेज के सामने पहुँचकर उसने देखा कि लड़कियाँ दीवार की तरह आड़ करके छात्रों के सामने खड़ी है, वे लोग पुलिस की लाठियों के निष्ठुर प्रहार के सामने छात्रों का जिरहबख़्तर बन गई हैं। पुलिस लड़कियों का हाथ खींचकर उन्हें दूर हटा देती है और जहाँ उसे ज़रा भी जगह मिली वहीं से लाठी बरसाकर पुरुष पिकेटरों को मारती है और दूर हटाई हुई लड़कियों को गिरफ़्तार कर-करके मोटर-बस में ले जाकर बन्द कर देती है। एक क्षण में ही यह सब हो जाता है, ठीक तरह देखने का अवसर तक किसी को नहीं मिल पाता। पुण्डरीकाक्ष ने व्याकुल दृष्टि से भीड़ में मेना को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा कि एक सार्जेंट मेना का हाथ पकड़ने को उद्यत हो रहा है। पुण्डरीकाक्ष की सारी भीरुता उसी क्षण लुप्त हो गई। वह एक छलाँग में ही रास्ते को पार करके उसकी तरफ़ मन आकृष्ट करने के लिए हाथ का छाता ऊँचा करके सार्जेंट से बोला—टेक केयर, प्लीज़ डोण्ट टच हर।

दूसरे ही क्षण वह सिर पर चोट खाकर आँखों में अँधेरा देखते-देखते जमीन पर गिर पड़ा। होश आने पर उसने अपने को एक अनजान जगह में लेटा हुआ पाया। पहले-पहल ज्ञान होने पर उसने समझा कि वह शायद मेना के मकान में ले आया गया है और स्वयं मेनादेवी उसी प्रकार उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही है, जिस प्रकार आयशा ने जगतसिंह की शुश्रूषा की थी। धीरे-धीरे अधिक सचेत होने पर उसने देखा कि वह अस्पताल में पड़ा है और उसके नजदीक पुलिस कान्स्टेबुल का पहरा खड़ा है। पहले उसका मन निराशा से दुखी हो गया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसके जी में यह बात उठी कि वह अपनी प्रियतमा मेनादेवी को अपमानित होने से बचाने के लिए घायल और गिरफ्तार हुआ है। तब उसका मन खिल उठा। उसने बदले में कोई पुरस्कार पाये बिना केवल त्याग की भावना से यह कष्ट स्वीकार किया था, इससे उसका आनन्द दूना बढ़ गया। पृथ्वी की सृष्टि से लगा कर आज तक कोई वीर सैनिक युद्ध को जीतकर अथवा उसमें आत्मविसर्जन करके इतना प्रसन्न हुआ है कि नहीं, इसमें संदेह है। वह अपने तेज बुखार और सिर के दर्द को भूलकर आनन्द-विभोर होकर आँखें बन्द किये पड़ा रहा। उसने किसी लाभ की आशा रक्खे बिना ही इस निश्चित विपत्ति को अपनाया था, तो भी उसके मन में क्षीण आशा हो रही थी कि यदि मेना मुक्त होगी तो उसके लिए जो अपनी इच्छा से चोट खाकर बन्दी हुआ है, उसे एक बार देखने के लिए अवश्य आयेगी। और इस बहाने से उससे बातचीत तो हो ही जायगी, घनिष्ठता बढ़ने में भी देर न लगेगी। और उसके बाद........

पुण्डरीकाक्ष अपने आहत मस्तिष्क से इसके बाद के आनन्द की सम्भावना की कल्पना न कर सका क्योंकि वह आनन्द सदा ही उसकी कल्पना से परे था।

उपन्यास में जो घटना सहज ही हो जाती है, वास्तव जीवन में

वह हर समय घटित नहीं होती। कोई भी उपन्यास-लेखक इस प्रकार की दैवघटना के अपघात की अवहेलना न करता। यहाँ तक कि विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने भी मोटरगाड़ी की दुर्घटना में अमित और लावण्यलता को मिला दिया था। बंकिमचन्द्र की आयशा तो आहत और बन्दी जगतसिंह की शुश्रूषा करने जाकर उसके प्रेम में आबद्ध हो गई थी।' सर वाल्टर स्काट की रचना में रेबेका भी आइवनहो को इसी प्रकार स्नेह कर बैठी थी। और भी कितने ही लेखकों की पुस्तकों में इसी प्रकार के सस्ते कौशल के अवलम्बन की कहानियाँ है। परन्तु पुण्डरीकाक्ष का भाग्य-विधाता उस प्रकार की लीक पर चलनेवाला व्यक्ति है ही नहीं, उसके भाग्य में इस सहज मिलन के उपाय की वह एकदम उपेक्षा कर गया। भाग्यवश वह वहाँ तक पहुँच गया था, इसी लिए इस कहानी को और थोड़े विस्तार की जरूरत पड़ गई, नहीं तो उसकी क़लम छिः, क़लम नहीं, टाइप करने की मशीन, रोक देनी पड़ती, और पाठक-पाठिकायें बड़ी खुशी से यहीं पर पुस्तक बन्द करके कहानी के निष्कर्ष का अनुमान लगा लेती।

पुण्डरीकाक्ष घायल या गिरफ़्तार हो गया है, यह बात उस भारी गोलमाल मे मेना अथवा एना कोई भी न जान सकी। पुलिस जब उन लोगों को गिरफ़्तार करके नारिकेलभाँगा पार करके गाँव के रास्ते में छोड़कर चली आई तब वे लोग पैदल चलते-चलते बहुत थक गई और अधिक रात बीतने पर घर लौट सकीं। उसके बाद भी उन्हें मालूम नही हो सका कि पुण्डरीक गिरफ़्तार हो गया है या घायल हो गया है।

वे लोग नित्य कालेज जाती थी, परन्तु पुण्डरीकाक्ष उन्हें न दिखाई पड़ता। वे सोचती कि शायद वह कलकत्ते में नही है अथवा बीमार पड़ गया है। मेना उसके विषय में उतनी सचेत नहीं थी, इसलिए उसकी अनुपस्थिति का उसे अधिक ध्यान नहीं था। परन्तु एना

प्रतिदिन यह बात देखती थी। यह देखकर कि एना की गम्भीरता हठात् और अधिक बढ़ गई है, वह उस प्रसंग को उठाने में एक प्रकार का भय और संकोच अनुभव करने लगी।

दस दिन अस्पताल में रहने के बाद पुण्डरीक विचार के लिए अदालत में लाया गया। यह साबित हो गया कि उसने छाता उठाकर पुलिस को मारना चाहा और पुलिस के नियमों की पाबन्दी और शान्ति-रक्षा में बाधा पहुँचाई। उसे छः महीने की कड़ी सज़ा दे दी गई। इससे वह दुखी हुआ अथवा सुखी, यह बात वह स्वयं न सोच सका। वह सोचने लगा कि मैंने मेना के लिए यह कष्ट स्वीकार किया है और देश-सेवा के नाम पर दंड पाने पर वह मेरे लिए और भी अधिक मूल्यवान् वस्तु बन गया है। मर्चेंट आफ़िस के क्लर्कों में ही मैं अपना निष्फल और हेय जीवन व्यतीत कर देता। अकस्मात् मेरे प्रणय को उपलक्ष्य बनाकर भारत-माता ने मेरे दुख को बलि के रूप में स्वीकार किया है, जिससे मैं अब अपने को धन्य मानता हूँ। वह सोचने लगा, मेरी इस अवस्था मे 'सुखम् इति दुःखम् इति वा।'

तीसरा परिच्छेद

दूसरे पक्ष का परिचय

गङ्गानगर के जमींदार खानदानी बड़े आदमी हैं। परन्तु राजा राजेन्द्रनारायण अपने पुरखों की अमीरी चाल की रक्षा करते रहने के कारण बहुत दिनों से अधिक ऋणी हो गये है। इसी लिए वे देश छोड़कर अपने कलकत्ते के घर में आ बसे हैं, परन्तु लोगों से कहते हैं कि लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने के कारण घर छोड़कर परदेश में रहना पड़ता है। यह मकान भी रहन रख दिया गया है। यह भी अब हाथ से निकलने ही को है। बचपन से अपव्यय करते-करते राजाबहादुर को इतना बुरा अभ्यास हो गया है कि अब सर्वस्व नष्ट हो जाने के क़रीब होने पर भी वे अपना हाथ नहीं खींच पाते। आय से अधिक व्यय करते-करते उन्हें ऐसी बुरी आदत पड़ गई है कि हाथ में रुपया आते ही ख़र्च कर डालने के लिए उनका मन मचलने लगता है। वे सच्चरित्र और संयमी हैं। उनके शत्रु भी उन पर यह अपवाद नहीं लगा सकते कि जीवन में उनका भी कभी नैतिक पतन हुआ है। केवल तम्बाकू पीने के अतिरिक्त वे और कोई नशा नही करते। चाय भी बन्धु-बान्धवों के एकत्र होने पर जब-तब ही पी लेते हैं। घुड़दौड़ आदि की बाज़ी लगाने का भी उन्हें शौक़ नहीं है। वे अपने पिता की एकमात्र सन्तान थे। इसी लिए बचपन से ही बढ़ावा पाते रहने के कारण जो जी में आया वही ख़र्च कर डालने का उन्हें अभ्यास पड़ गया। पर अच्छे काम में ख़र्च करने की ओर ही सदा उनकी प्रवृत्ति रही, इसलिए उनके पिता ने कभी उनका हाथ नहीं रोका। बाल्यावस्था में हाथ में रुपया आते ही वे अपने साथ के ग़रीब विद्यार्थियों की आवश्यकतायें मुक्तहस्त होकर पूरी करते थे। बाहर घूमने निकलने

पर यदि उन्हें पता चलता कि उनका कोई पड़ोसी अथवा उनकी प्रजा कष्ट में है तो उसकी सहायता करने की चेष्टा करते। इसी लिए वे छुटपन से ही सबके स्नेहपात्र हो गये थे और उनके मन की इस दुर्बलता का पता पाकर बहुतेरे लोगों ने बिना प्रयोजन के भी सहायता के रूप में उनसे मनमाना रुपया वसूल किया। उसके बाद जब से वे ज़मींदारी के मालिक हुए तब से उनके तीन प्रधान व्यसनों ने निरंकुश होकर उन्हें अपव्ययिता की चरमसीमा तक पहुँचा दिया। एक तो वे पुस्तकें ख़ूब ख़रीदते, दूसरे यदि कोई फेरीवाला अथवा दूकानदार उनके मकान में कोई चीज़ बेचने ले आता तो वे आवश्यकता हो चाहे न हो, प्रचुर परिमाण में ख़रीद अवश्य लेते। तीसरे अपने अथवा देश के नाम पर कोई उनसे सहायता माँगता तो उसकी आवश्यकता आदि के सम्बन्ध में सोच-विचार किये बिना ही एक मोटी रक़म उसे चन्दे में सौंप देते। सहायता माँगनेवाला व्यक्ति विश्वसनीय है अथवा नहीं, उनमें यह सोचने तक की प्रवृत्ति नहीं थी। ज़मींदार राजेन्द्रनारायण ने राजाबहादुर का जो ख़िताब पाया है उसके लिए भी उन्होंने अपव्यय किया है। सरकार के प्रार्थना करने पर अथवा अपनी ओर से देश-हित अथवा साहब बहादुरों के हित के लिए बहुत-सा रुपया दान करते-करते ख़ुद निःस्वता की अन्तिम सीमा तक पहुँचकर उन्होंने यह ख़िताब ख़रीदा है। खुले रूप से और गुप्त दान करते रहने के कारण उनकी ज़मींदारी की प्रायः सारी आय ख़र्च हो जाती है। उसके बाद सरकार को आमदनी जमा करते समय ऋण लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता। तिस पर लगान न जमा करने के लिए कांग्रेस के लोग आज-कल किसानों को समझाते-बुझाते हैं। फलतः उन लोगों ने लगान देना बन्द कर दिया है। ज़ोर-ज़ुल्म अथवा नालिश करने पर वे कहते हैं कि हमारे पास रुपया ही नहीं है। सारे देश में तो दरिद्रता और अकाल फैला है, जब अपने को ही खाने को नहीं मिलता तब ज़मींदार को लगान कहाँ से दें। छोटे-मोटे ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ

लगान न देने के कारण नीलाम होने लगी हैं और बड़े जमींदार क़िस्तों में लगान अदा कर रहे हैं। उनकी जायदाद रहन रक्खी जाने लगी है। गङ्गानगर की भी प्रायः सारी जमींदारी रहन रख दी गई है और अब उधार मिलना भी कठिन हो गया है। जमींदारों के साबिक़ चाल-चलन की रक्षा करनी ही पड़ती है और पास में रुपया है नहीं। इसलिए उनकी अवस्था अधिक शोचनीय हो गई है। इस समय नौकरी पर जीवन बितानेवाले लोग तो एक प्रकार से अच्छे हैं। वे लोग महीने में निश्चित वेतन तो पाते ही हैं। तिस पर सब चीज़ों के सस्ते हो जाने के कारण उन्हें बड़ी सुविधा हो गई है।

अतएव पुण्डरीकाक्ष यद्यपि तीस रुपये महीने का ही क्लर्क है, तथापि उसकी अवस्था गङ्गानगर के राजाबहादुर की अपेक्षा अधिक बुरी नहीं है। और गङ्गानगर के निःस्व राजा भी वृथा अभिमान के कारण ही अपने दरिद्र पड़ोसी से बातचीत करना आवश्यक नहीं समझते। परन्तु अन्दरूनी स्थिति देखने पर इन दोनों में बहुत कम अन्तर रह जाता है।

गङ्गानगर के जमींदार के ऋणी होने की ख़बर सरकार को लग गई। इसलिए रेवेन्यू बोर्ड ने उनके पास प्रस्ताव भेजा कि यदि वे एक साल के भीतर ही अपना सारा क़र्ज़ चुका देने का प्रबन्ध न कर सकेंगे तो उनकी जमींदारी कोर्ट आफ़ वार्ड्स की देख-रेख में कर ली जायगी।

राजाबहादुर यह दुःखपूर्ण संवाद पाते ही अपने सहपाठी सत्यनिधन दे एटर्नी के दफ़्तर में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने हाँफते हाँफते कहा—भाई सत्य, अब तुम हमें बचाओ। अन्त में इस बुढ़ापे में क्या नाबालिग़ अथवा विधवा स्त्री की तरह असहाय अवस्था में दूसरे की दया की भीख पर ही निर्भर होना पड़ेगा? तुम मुझे इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय बताओ।

सत्यनिधन ने बोर्ड की चिट्ठी देखकर कहा—तुम ऐसे फ़िज़ूलख़र्च हो कि यदि अभी से सावधान नहीं होओगे तो तुम्हारे भाग्य में इससे

भी अधिक दुर्गति और अपमान बदा है। तुम एक काम करो। अब कलकत्ते मे तुम्हारे रहने की आवश्यकता नही है। लडकियों का विवाह करके या तो तुम देश में जाकर रहो अथवा किसी ऐसे गाँव में जाकर रहो, जहाँ तुम्हे कोई न पहचानता हो और तुम भी किसी को न पहचानते होओ और न कोई तुम्हे पहचानने ही पाये। शहर मे रहोगे तो ढेरों अनावश्यक चीज़ें ख़रीद-ख़रीद कर रुपया उड़ाओगे। अभी उस दिन दो सो रुपये का इत्र ही ख़रीद बैठे। क्यो, उस इत्र से नहाओगे क्या या फ़िनाइल के बदले दुर्गन्ध मिटाने के लिए मोरी में बहाओगे ?

राजाबहादुर ने शर्मिन्दा होकर उत्तर दिया—तो क्या करूँ भाई, तुम्ही बताओ। लोग मेरे पास यह सोचकर आते है कि उनकी चीज बिक जायगी, इसी लिए लेनी पडती है। उस दिन एक गन्धी आया, बोला, आपका नाम सुनकर बढ़िया इत्र लाया हूँ। इसी लिए कुछ खरीद लेना पड़ा।

सत्यनिधन ने हँसकर कहा—वाह रे तुम्हारा कुछ ! तभी तो कहता हूँ कि तुम गाँव मे जाकर बसो। वहाँ रहने पर तुम्हारा खर्च कम हो जायगा। गाँव में ख़रीदने योग्य वस्तुएँ आँखों के सामने पड़ेंगी ही नही कि जो देखोगे वही ख़रीद लोगे। और वहाँ पर चन्दे का खाता और भिखमगे की झोली भी तुम्हें नहीं चूस सकेगी। देश में जाकर रहने पर तुम्हें अपना कलकत्ते का मकान रखने की ज़रूरत न रहेगी। इस मकान को बेच डालने पर भी तो तुम्हारा पचास-साठ हज़ार रुपये का क़र्ज़ सहज में ही अदा हो जायगा। साथ ही इसी बीच सरकार को इस आशय का एक जवाब लिख दो कि आगे हम बहुत मितव्ययिता से काम चलायेंगे और एक साल के भीतर ही बहुत-सा क़र्ज़ अदा करके प्रमाणित कर देंगे कि हमने मितव्ययिता शुरू कर दी है।

राजाबहादुर ने उत्तर दिया—भाई, मै अपनी तबीअत से कलकत्ते

में थोड़े ही पड़ा हूँ। लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई समाप्त होते ही उनका विवाह कर लेने पर मैं कहीं भी जाकर रह सकता हूँ। मेना इस बार ही बी०ए० की परीक्षा देगी, उसे समझा-बुझाकर इसी साल उसका विवाह कर देना है। लड़का तो मिल ही गया है, वही कुमीरखाली का ज़मींदार कन्दर्पभूषण।

सत्यनिधन ने कहा—यह भी तो अभी बहुत दिनों की बात है। तब तक तुम एक काम करो। तुम्हे एक ऐसे अभिभावक की बड़ी आवश्यकता है जो तुम्हारी स्थिति सुधार कर तुम्हारा काम चला सके। मैं एक ऊँचे खानदान के सच्चरित्र, विद्वान् और बुद्धिमान् लड़के को जानता हूँ। वह इस समय दिनों के फेर में पड़कर नौकरी ढूँढ़ रहा है। उसे अपना प्राइवेट सेक्रेटरी अथवा मैनेजर नियुक्त कर लो। अधिक रुपये भी नहीं देने पड़ेंगे। कोई दो सौ रुपयों पर ही वह अभी राज़ी हो जायगा। इसके बाद क़र्ज़ कुछ अदा हो जाने पर उसका वेतन थोड़ा-बहुत बढ़ा देना।

राजाबहादुर सत्यनिधन का प्रस्ताव सुनते ही उसी क्षण इस बात पर राज़ी हो गये। क्योंकि रुपये खर्च करने का एक नया मार्ग पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। बड़प्पन के एक अङ्ग की शून्यता की ओर अब तक उनकी दृष्टि नहीं गई थी। अपनी इस लज्जा के निवारण का उपाय उन्हें इतना शीघ्र मिल गया। अब वे एक प्राइवेट सेक्रेटरी नौकर रक्खेंगे परन्तु खर्च कम करवाने की सलाह लेने आकर महीने में दो सौ रुपये का खर्च और बढ़ गया, इस ओर राजाबहादुर ने आँख उठाकर देखा तक नहीं।

राजाबहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी का नाम भास्कर है। भास्कर का भी एक इतिहास है, जिसे जान रखना हमारे लिए जरूरी है। वह अपना परिचय किसी को नहीं देता। उसके विषय की बातें उसके अतिरिक्त—केवल उसके पिता के एटर्नी—सत्यनिधन ही जानते हैं। वह भी एक बड़े ज़मींदार का लड़का है। उसने अँगरेज़ी और संस्कृत

में एक साथ एम० ए० पास किया है, बी० एल० की परीक्षा में भी वह सर्वोच्च नम्बरों में उत्तीर्ण हुआ है। वह जमींदार का लड़का ठहरा, नौकरी अथवा वकालत करने की उसे आवश्यकता न थी। शिक्षा प्राप्त करने के बाद देश जाकर अपनी ज़मींदारी के अनेक स्थानों में उसने प्राइमरी स्कूल और नाइट-स्कूल खुलवाकर किसानों में शिक्षा-प्रचार करने का प्रयत्न किया। किसानों में व्याख्यान देकर और छाया-चित्र (मैजिक लैण्टर्न) दिखा-दिखाकर उन्हें स्वास्थ्य-तत्त्व, अर्थनीति, कृषि-तत्त्व, वाणिज्य-तत्त्व आदि समझाने की चेष्टा की। उसने गाँव-गाँव में अखाड़े खुलवाकर हर एक बालक-बालिका का शरीर-मन सुगठित करने के काम में अपने को लगा दिया। परन्तु देश के प्रति इस सेवा के फल-स्वरूप उस पर पुलिस और सरकार की निगाह गड़ गई। सरकार ने उसके पिता को आज्ञा दी कि आपको अपने लड़के की ये सब हरकतें बन्द करने के लिए उस पर अपना प्रभाव डालना पड़ेगा। भास्कर के नाम यह अभियोग था कि वह बड़ा स्वदेश-भक्त है, गाँव-गाँव के किसानों को स्वदेशी चीज़ें ख़रीदने के लिए अनुरोध करता है और मादक द्रव्य ख़रीदने से रोकता है। ज़मींदार के लड़के का अनुरोध तो हुक्म ही है। उसके डर से कोई विलायती वस्तु ख़रीद नहीं सकता और इस प्रकार लोगों की स्वाधीनता में बाधा पहुँचती है। जिन गाँवों में आबकारी की दूकानें हैं, वहाँ की आय बहुत कम होती जा रही है। जिन लोगों ने आबकारी की दूकानों के ठीके लिये हैं उन्हें बड़ा नुक़सान हो रहा है, दूकानदार सरकार से इस बात की शिकायत कर रहे हैं। दूकानदारों के नुक़सान के कारण सरकार की भी आय कम हो रही है। इन सब बातों की जड़ भास्कर ही है। ये सब काम परोक्ष-रूप से कांग्रेस का ही समर्थन करते हैं। गाँव-गाँव में कुश्ती के लिए अखाड़े खोलकर देश के बालक-बालिकायें गुण्डापन और डकैती करने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। इसलिए उसे इन सब आचरणों को छोड़कर भलेमानस की तरह शान्त-शिष्ट बनकर रहना चाहिए। अन्यथा

इसका फल आपको भोगना पड़ेगा, क्योंकि आप ही ज़मींदार हैं। अपनी ज़मींदारी के किसी भी ग़ैरसरकारी आयोजन के लिए आप ही तो जवाबदेह हैं।

सरकार से यह कड़ी आशा और भय का आभास पाकर भास्कर के पिता का मन अस्थिर हो उठा। उन्होंने अपने लड़के को बुलाकर इन उपद्रवों को छोड़ देने का आदेश दिया। भास्कर ने कहा—मैं धर्म और क़ानून के अनुसार जब कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ तब यदि सरकार की लाल-पीली आँखें देखकर ही अपना काम बन्द कर दूँगा तो लोग मुझे कापुरुष और डरपोक कहेंगे। आपका लड़का होकर मैं यह कलङ्क कैसे सहन कर सकूँगा?

भास्कर के पिता पुराने ज़माने के आदमी थे। वे सरकार और पुलिस को यमराज से भी अधिक डरते थे। इसी लिए उन्होंने पहले लड़के को मीठी बातों से समझाने की कोशिश की। परन्तु जब उन बातों का कोई फल नहीं निकला तब अनुनय-विनय से काम लिया। इतने पर भी भास्कर ने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी। अन्त में वे अपने अवज्ञाकारी लड़के पर नाराज़ हो गये और उससे कह बैठे कि "मैं ऐसे कुलाङ्गार लड़के से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। अन्त में इस बुढ़ापे में लड़के के लिए मैं जेल थोड़े ही जाऊँगा, और न सारी ज़मींदारी ज़ब्त करवाकर राह-घाट में भीख ही माँगता फिरूँगा। तेरे जैसे लड़के का मैं मुँह नहीं देखना चाहता। तू मेरे घर से निकल जा। तब जो तेरे जी में आये सो कर।"

भास्कर पिता के तिरस्कार के उत्तर में मंद हँसी से हँसकर वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन ढूँढ़ने पर उसका कोई पता नहीं लग सका। वह जनाकीर्ण कलकत्ते में आ पहुँचा।

कलकत्ते में पहुँचते ही उसकी इच्छा हुई कि वह कांग्रेस के निर्दिष्ट कामों में अपने को उत्सर्ग कर दे। वह मन-ही-मन हँसता हुआ यह भी सोच रहा था कि इस काम में पड़ जाने से कुछ न होगा तो

कम-से-कम छः महीने खाने-पहनने और रहने की चिन्ता तो मिट ही जायगी। सरकार बड़े आदर के साथ लिवा जाकर आश्रय देगी, नित्य नियमित समय पर विटामिन-मिश्रित भूसी मिली हुई पुष्टिकर दाल, मोटे लाल चावल का भात और जड़सहित तरकारी खाने को मिलेगी। वहाँ दोनों वक़्त नियमित परिश्रम और व्यायाम करना ही होगा; साथ ही पहरे पर अर्दली रहेगा। जेलख़ाने का वह जीवन परम सम्मानपूर्ण, निश्चिन्त और निरापद होगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे डर लगा कि यदि पुत्र के अपराध के लिए सरकार उसके पिता को किसी प्रकार का दण्ड दे अथवा उन्हें लाञ्छित करे तो जिस सङ्कोच से वह घर छोड़कर चला आया है और जो बात वह नहीं चाहता, अन्त में वही घटित होगी। आजकल अख़बारों में प्रायः पढ़ने को मिलता है कि लड़के का जुर्माना पिता से वसूल करने की आज्ञा निकाली जाती है और यदि पिता अपने लड़के की यह जिम्मेदारी स्वीकार नहीं करता तो उसे जेल भुगतना पड़ता है। ईसप की कथामाला में एक कहानी है, जिसमें किसी शेर ने अपनी युक्ति से यह साबित कर दिखाया है कि चाहे पिता कोई अपराध करे, चाहे उसका लड़का, दोनों बातें एक ही मतलब रखती हैं। आज भी ब्रिटिश सिंह के अनुचरों के द्वारा उसी शेर की युक्ति का पालन होता हुआ दिखाई पड़ रहा है।

इन्हीं बातों को सोचकर उसने कांग्रेस का काम करने की इच्छा त्याग दी। परन्तु खाने-पहनने के लिए तो अर्थोपार्जन का कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा। इसलिए बहुत सोच-विचार के बाद वह अपने एटर्नी सत्यनिधन से मिलकर अनुरोध कर आया कि मुझे कोई काम दिलवा दीजिए, साथ ही यह भी कह आया कि आप पिता जी को मेरा पता-ठिकाना कदापि न लिखें। सत्यनिधन ने भास्कर की ये दोनों बातें स्वीकार कर लीं। उन्होंने सोचा कि भास्कर के पिता तो बूढ़े हो आये, अब वे ज्यादा दिन तो जियेंगे नहीं। उनके मरने पर भास्कर ही अपनी ज़मींदारी का मालिक होगा। अतएव उसका अनुरोध न

मानकर उसे नाराज़ कर देने पर हानि के अतिरिक्त कोई लाभ ही न होगा। इसलिए उन्होंने भास्कर के पिता को उसकी कोई खबर नहीं दी और सुयोग पाते ही गङ्गानगर के राजाबहादुर से नौकरी के लिए उसकी सिफारिश कर दी।

भास्कर को देखते ही राजाबहादुर ने उसके मुखमण्डल की भव्यता पर मुग्ध होकर उसे नियुक्त कर लिया। उस दिन से भास्कर एक प्रकार से राजाबहादुर के मकान में ही रहने लगा। मकान के सदर दरवाज़े से लाल सुर्ख़ी पड़ा हुआ रास्ता आकर संगमरमर की ऊँची सीढ़ी से मिलकर जहाँ समाप्त हुआ है, उसके ही ऊपर संगमरमर के पत्थरों से छाया हुआ एक लम्बा-चौड़ा बड़ा भारी दोहरा दालान है। उस दालान के एक ओर एक दरबान कमर में चपरास और पगड़ी में तमग़ा लगाये अपनी दाढ़ी को दो भागों में बाँटकर ऊपर को उठाये स्टूल पर बैठा ऊँघता रहता है और बीच-बीच में ज्यों ही राजाबहादुर की घण्टी बजती है, ऊँघते-ऊँघते चौंक पड़ता है, और 'हाज़िर हुज़ूर' कहकर तुरन्त उनके कमरे में जा पहुँचता है। उस दालान के दूसरे बग़ल में ही राजाबहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी भास्कर का दफ़्तर है। उसके दफ़्तर के सामने भी एक चपरासी चपकन पहने सदैव प्रस्तुत रहता है। उसे ऊँघने का अवसर नहीं मिलता। क्योंकि सेक्रेटरी की घण्टी एक-एक क्षण में बज उठती है। वह सबेरे से शाम तक इतना कठिन परिश्रम करता है, मानो किसी सौदागरी दफ़्तर का बाबू हो। उसने एक महीना काम करके ही यह जान लिया कि राजाबहादुर नाम के ही इतने बड़े आदमी हैं। ऐसी राजाबहादुरी किस काम की कि पास में एक पैसे तक का भी बल नहीं है और सारी ज़मीदारी और मकान आज नहीं तो कल बिकने ही वाला है। इसी लिए वह कठिन परिश्रम करके उनके सारे काग़ज़-पत्र और दस्तावेज़ आदि बहुत सतर्कता-पूर्वक देख रहा था कि किसी प्रकार किसी मद के ख़र्च में कमी तो नहीं की जा सकती। एक दिन उसने राजाबहादुर से कहा—मैं देखता हूँ कि आपके

यहाँ बड़ा अपव्यय होता है। यदि वह सब बन्द कर दिया जाय तो बहुत-सा क़र्ज़ चुकाने का उपाय निकल सकता है।

राजाबहादुर ने कुछ हँसकर जवाब दिया—किस प्रकार, बताओ।

भास्कर ने कहा—जैसे आपके मकान में आवश्यकता से अधिक दास-दासियाँ ही हैं, वे निकाल दी जायँ तो बहुत-सा रुपया बच सकता है।

राजाबहादुर हो-हो करके हँस पड़े और बोले—तुम अभी बच्चे हो बेटा भास्कर। कहाँ से इतनी बुद्धि पाओगे? यह तो सरकार का अथवा ढाका-यूनिवर्सिटी का ख़र्च कम करने की-सी कोशिश हुई कि दरबान, बेयरा, मेहतर, भिश्ती आदि जितने ग़रीब आदमी हैं उन सबकी नौकरियाँ छीनकर बचत का उपाय सोच निकाला। वे बेचारे पाते ही कितना हैं! जिन लोगों का वेतन दो-चार हज़ार रुपये मासिक है उनमें से एक के ही वेतन से यदि मुट्ठी भर रुपया निकाल लिया जाय तो इतने ग़रीबों का पेट मारने की आवश्यकता न पड़े। साथ ही समुद्र से एक घड़ा पानी निकाल लेने पर समुद्र का कोई ख़ास नुक़सान हो जायगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। मुझे एक मज़ेदार कहानी याद आ रही है—चार नशेबाज़ एक मुर्दा लिये जा रहे थे। उन लोगों में से एक ने कुछ दूर जाकर कहा—भाई, यह मुर्दा तो बहुत वज़नी मालूम पड़ता है। क्या करना चाहिए? उसी रास्ते से एक नाई चला आ रहा था। उसे देखकर दूसरा बोला—इस नाई को बुलाकर मुर्दे के बाल कटवा दो। इससे उसका बहुत-सा भार कम हो जायगा। उसकी बात सुनकर सब लोग समस्वर से कह उठे—हाँ-हाँ, यह तो पते की बात कही। तुम बड़े बुद्धिमान् हो दादा। तुरन्त ही नाई को बुलाकर उसके बाल कटवा दिये गये। तब उन लोगों ने मुर्दे को कन्धे पर उठाकर कहा—लो अब तो यह बहुत हलका हो गया है! सो तुम भी मुर्दे के बाल कटवाकर उसका भार कम करने की-सी बात कह रहे हो।

यह कहकर राजाबहादुर फिर हा-हा करके हँस पड़े और हुक़्क़े की

नली में मुँह लगाकर दो-एक कश खींचकर कहने लगे—देखो बेटा, वे सब मेरे आश्रय में पड़े हैं। उन्हें मैं कैसे त्याग सकता हूँ ? मैं जानता हूँ कि मेरे मकान में इतने नौकर-चाकरों की ज़रूरत नहीं है, तो भी क्या तुम नहीं जानते कि जब ये लोग आकर कहते हैं कि हुज़ूर, आप हमारी परवरिश कीजिए, तब तो उन्हें रक्खे बिना मन ही नहीं मानता।

भास्कर ने हँसकर उत्तर दिया—पृथ्वी में असंख्य आदमी हैं। उनमें से जो कोई भी आकर आपके मकान में रहना चाहे, आप उसे ही आश्रय दे दें, क्या यह भी सम्भव है ? आपके मकान में इतनी जगह ही कहाँ है और कोई आदमी चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, इतना भार कैसे सहन कर सकेगा ? कहीं तो उसे ठहरना पड़ेगा, कहीं तो कहना पड़ेगा कि 'भाई, अब बस।'

राजाबहादुर फिर हँस पड़े और बोले—तुम ठीक कहते हो, परन्तु यह काम मेरे द्वारा तो होगा नहीं। मैंने कभी किसी को नहीं लौटाया, और न आगे ही लौटा सकूँगा।

भास्कर ने उद्विग्न होकर उत्तर दिया—आप कुछ न करें। मुझे आज्ञा भर दे दें, मैं आपको सूचित किये बिना ही जहाँ तक बन सकेगा, करूँगा।

राजाबहादुर घबराकर कह उठे—न बाबा, तुम यह सब कुछ मत करो। मैं यदि किसी नौकर को पुकारने पर यह सुनूँगा कि वह निकाल दिया गया है तो मुझे बड़ा दुःख होगा। जैसा चल रहा है, वैसा ही बना रहने देकर तुम कोई उपाय निकाल सको तो निकालो।

भास्कर को दुखी और निरुपाय हो जाना पड़ा। परन्तु उस दिन उसने मन ही मन संकल्प किया कि आज से मैं ख़ुद दो सौ रुपये मासिक वेतन न लूँगा। राजाबहादुर के घर में खाता-पीता और रहता ही हूँ। केवल कपड़े-लत्तों के लिए पचास रुपये ले लिया करूँगा। मेरे लिए इतने ही बहुत हैं।

उस दिन से भास्कर ने अपने चपरासी को हुक्म दे दिया कि कोई

भी आदमी मुझसे मिले बिना राजाबहादुर के पास न जा सकेगा। भिक्षुक, प्रार्थी, विक्रेता, नौकरी का उम्मीदवार, जो भी आवे उसे पहले मुझसे मिलना पड़ेगा। उसके बाद यदि मैं आवश्यक समझूँगा तो वह राजाबहादुर के पास जाने दिया जायगा, नहीं तो मेरे ही पास से उसे लौटना पड़ेगा।

भास्कर भी सम्पन्न और खानदानी घराने का लड़का था। उसका मन भी उदार और दयालु था। जब कोई आकर उससे प्रार्थना करता तब उसकी भी इच्छा होती कि वह उसके अभावों को अपनी सहायता से पूरा कर दे, परन्तु वह अपने को कठोर और संयत बनाये रखने की चेष्टा करने लगा, साथ ही राजाबहादुर की वदान्यता की जो ख्याति फैली थी वह एकदम नष्ट न हो जाय, इसलिए जो कोई भी प्रार्थना करता उसे वह कुछ न कुछ दे अवश्य देता। किसी को वञ्चित भी न करता। उसने नये नौकर रखना एकदम बन्द कर दिया। कोई नौकर छुट्टी माँगकर गाँव जाना चाहता तो उसे तुरन्त छुट्टी दे देता और दूसरे नौकरों से कह देता कि उसका काम तुम सबको करना पड़ेगा। उसकी जगह नया नौकर नहीं रक्खा जायगा। कोई फेरीवाला आता तो बरामदे से ही बिदा करवा दिया जाता। उससे कह दिया जाता कि अभी जरूरत नहीं है, ज़रूरत पड़ने पर तुम्हें खबर दी जायगी।

इन्हीं सब कारणों से घर-बाहर के सभी लोग भास्कर से नाराज़ हो गये। वे लोग आपस में काना-फूसी करने लगे कि राजाबहादुर ने न जाने कहाँ के कृपण को लाकर यहाँ बैठा दिया है। इसने तो राजमहल को बनिये की दूकान बना दिया है, हर बात में नाप-जोख से काम लेता है। राजाबहादुर खुद भी यह निश्चय नहीं कर सकते थे कि वे भास्कर पर नाराज़ हों अथवा प्रसन्न। जब दिन पर दिन बीतने लगे और एक भी आदमी कोई प्रार्थना लेकर उनके पास न आता तब उनका मन अस्थिर हो उठता। उनसे बिना कुछ काम किये रहा भी तो नहीं जाता था और इतने दिनों तक चीज़ें खरीदना अथवा दान करना उनके पास

ये ही दो काम थे। अब जब उनमें से एक भी न रह गया तब वे एकदम बेकार हो गये। परन्तु भास्कर के अत्यन्त मधुर स्वभाव के कारण और उसके उद्देश की विवेचना करके उस पर नाराज़ होने का उन्हें कोई कारण नहीं मिलता था। और अपने सदैव के अभ्यास को पूरा न कर पाने के कारण भी वे ऊब गये। अब वे अपने दफ़्तरवाले कमरे में विवशता से बैठे रहते और कान लगाकर आहट लेते रहते कि भास्कर के कमरे में कौन आया और वह उसे भगाये दे रहा है। उसके कमरे में किसी के आने की आहट पाते ही राजाबहादुर किसी किसी दिन अपने कमरे से बाहर निकल आते और बरामदे में खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगते। तब वे लौटाये हुए व्यक्ति को गिरफ़्तार करके अपने कमरे में ले जाते और उसकी प्रार्थना सुनकर भास्कर को बुलाकर उसे पूरी कर देने का आदेश देते। और तब भास्कर को अपने मालिक का आदेश पूरा करना ही पड़ता। परन्तु उसकी मुद्रा गम्भीर हो जाती और उसको गम्भीर होते देखकर ही राजाबहादुर संकुचित हो जाते, वे मन ही मन प्रतिज्ञा करते कि आगे से कभी भास्कर की अनिच्छा से कोई काम करके उसके मन को कष्ट न पहुँचाऊँगा। वह बड़ा सीधा लड़का है, वह जो कुछ करता है, हमारे ही भले के लिए तो करता है। परन्तु अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन वे अधिक दिन नहीं कर पाते, उनका नित्य का अभ्यास उन्हें विवश कर देता।

एक दिन राजाबहादुर को पता लगा कि भास्कर ने किसी एक आदमी को भगा दिया है। पहले तो उनकी इच्छा हुई कि वे उसी क्षण बाहर निकलकर उस आदमी को अपने कमरे में बुला लायें। परन्तु इससे भास्कर व्यर्थ असन्तुष्ट हो जायगा, इस डर से वे चिन्तित मन से बैठे रहे। जब उन्हें पता लगा कि वह प्रार्थी विदा होकर चला गया है तब वे म्लानमुख से भास्कर के कमरे में जा पहुँचे। उन्हें अपने कमरे में आते देखकर भास्कर अपनी कुर्सी छोड़कर आदरपूर्वक खड़ा

हो गया। वह तुरन्त समझ गया कि वे इस समय क्यों आये हैं। इसी लिए मुँह पर हँसी लाकर उनकी ओर ताकता हुआ उनके मुँह से कोई बात अथवा अपना तिरस्कार सुनने की प्रतीक्षा करने लगा।

राजाबहादुर ने म्लान हँसी हँसकर कहा—देखो बेटा भास्कर, इन लोगों को तुम एकदम राक्षस न समझो, ऐसे एक-दो निरीह व्यक्तियों को मेरे पास आ जाने दिया करो। मैं तो बिना काम के रो पड़ा हूँ भाई।

भास्कर राजाबहादुर की कातर प्रार्थना सुनकर अत्यन्त व्यथित हुआ। उसने गम्भीर होकर उत्तर दिया—जो आज्ञा।

परन्तु भास्कर को गम्भीर होते देखकर ही राजाबहादुर डर के मारे तत्क्षण सतर्क हो गये। उन्होंने तुरन्त ही कहा—नहीं-नहीं बेटा, तुम यदि नाराज़ होते हो तो उन लोगों से मेरा कोई मतलब नहीं है। तुम जो ठीक समझो, वही करो।

राजाबहादुर के इस बात से भास्कर ने और अधिक व्यथित होकर कोमल स्वर में उत्तर दिया—आप यह कैसी बात करते हैं। मैं आपका नौकर हूँ, आप मुझे जो आदेश देंगे उसका पालन करने के लिए बाध्य हूँ। उसमें मेरे संतोष-असंतोष की कौन-सी बात है?

राजाबहादुर ने व्यस्त होकर कहा—न-न बेटा, तुम हमारे नौकर नहीं हो, तुम तो हमारे लड़के हो। तुम्हें जो उचित जान पड़े वही करो। मैं यदि कभी कुछ कहूँ तो मत सुनो और उससे अपने मन में भी कोई बात मत लाओ।

राजाबहादुर भास्कर के कमरे से निकलकर अपराधी की तरह भागे जा रहे थे। इतने में ही एक कपड़ेवाला और एक जौहरी आ उपस्थित हुआ। राजाबहादुर उन लोगों को देखकर वहीं खड़े हो गये और उन्होंने भय-चकित दृष्टि से एक बार भास्कर की ओर फिरकर देखा।

भास्कर राजाबहादुर के पीछे-पीछे दालान तक चला आया था।

वह राजाबहादुर की भाव-भंगी देखकर मुस्कराकर वहाँ से अपने कमरे की ओर लौट गया। राजाबहादुर ने भास्कर की मुस्कराहट और उसे जाता हुआ देखकर संतोष की साँस ली। उन्होंने विक्रेताओं को अपने क़मरे में लिवा ले जाकर दोनों लड़कियों के लिए दो दर्जन साड़ियाँ और बहुत-से जड़ाऊ गहने ख़रीद लिये। परन्तु अब सारे ख़र्चों का रुपया भास्कर के पास ही रहने लगा था, अतएव उन्होंने बड़े संकोच-विकोच के बाद उन लोगों को एक स्लिप लिख दी कि उनका जो पावना है, मैनेजर साहब से जाकर ले लें।

वे लोग भास्कर के समीप आये। भास्कर तो यह व्यापार देखते ही अवाक् रह गया। एक क्षण में ही लगभग तीन हज़ार का अपव्यय हो गया था। उसने विक्रेताओं से कहा—हम सब चीज़ों की जाँच करके परसों आप लोगों का रुपया दे आयेंगे, आप लोग अपनी दूकानों का ठिकाना लिख जाइए।

ये व्यापारी आज के पहले भी अनेक बार राजाबहादुर को ठगकर चीजें बेच गये थे, उन चीज़ों के जाँच करने की बात कभी नहीं उठी। आज की इस अप्रत्याशित बात से वे लोग अवाक् रह गये, उन लोगों का मुँह सूख गया। क्योंकि बाज़ार में जिस चीज़ की क़ीमत दस रुपया है, उन्होंने राजाबहादुर से उसके पचास रुपये लिये थे। फिर भी उन लोगों ने विवश होकर कहा—'आपकी जैसी आज्ञा हो।'

उन लोगों के चले जाने पर भास्कर गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गया। थोड़ी देर चिन्ता में व्यस्त रहने के बाद वह कमरे से बाहर निकला और टहलता हुआ फाटक के समीप जा पहुँचा। उसे देखते ही फाटक का पहरेवाला सन्तरी सन्त्रस्तभाव से सीधा तनकर खड़ा हो गया और बायें कन्धे पर बन्दूक़ रखकर सैनिकों के क़ायदे से उसने भास्कर को सलाम किया।

भास्कर ने फाटक के पहरेवाले सतरी को हुक्म दिया कि पहरे

के लोग उसकी आज्ञा लिये बिना किसी आदमी को अन्दर न जाने दें।

उसके बाद वह अन्यमनस्क होकर चिन्ता करता हुआ बगीचे में टहलने लगा। राजाबहादुर की परिस्थिति दिन पर दिन जैसी दरिद्र होती जा रही है, उससे एक दिन उन्हें अपनी लड़कियों को लेकर राह पर खड़ा होना पड़ेगा, भास्कर को एक यही दुश्चिन्ता दुखी और गम्भीर बनाये रहती थी। एक तो वह स्वभाव से ही गम्भीर प्रकृति का युवक था, तिस पर देश की वर्तमान दुरवस्था देखकर कातर रहता था। दूसरे देश के इस दारुण दुर्दिन में वह उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता इसके लिए वह अपने मन में निरन्तर दुःख और ग्लानि का अनुभव करता रहता था और तिस पर वह अपने पिता और गाँव को त्यागकर चला आया था, इस वेदना से भी वह सदा उन्मना बना रहता था। पहले उसकी यह इच्छा हुई कि वह राजाबहादुर का मकान छोड़कर और कहीं चला जाय, व्यर्थ में यहाँ रहकर उनके अधिक ख़र्च का कारण न बने। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने यह सोचा कि मेरे चले जाने पर इस असहाय व्यक्ति को देखनेवाला कोई न रह जायगा और जब मैंने अल्प वेतन लेकर रहने का निश्चय कर लिया है तब मेरे चले जाने से उनका नुक़सान छोड़कर कोई लाभ न होगा। इसके अतिरिक्त राजाबहादुर मुझे अपने नौकर की तरह तो समझते नहीं हैं। वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो मैं उनका कोई आत्मीय होऊँ। मेरे चले जाने पर उनके मन को कष्ट होगा।

वास्तव में राजाबहादुर भास्कर को अपने पुत्र के समान ही स्नेह करते थे और उसके गुण और गम्भीरता के लिए उसका आदर भी करते थे। उसकी विद्या-बुद्धि और सच्चरित्रता का परिचय उन्हें जितना अधिक मिलता जाता था, वे उसका उतना ही अधिक स्नेह और आदर करते थे। बीच-बीच में उनके मन में यह बात भी

उठती थी कि ऐसा ही एक भले, ऊँचे और धनी परिवार का लड़का मिलता तो उसके साथ एना का विवाह कर दिया जाता। भास्कर ऊँचे खानदान का लड़का है, यह बात उन्होंने सत्यनिधन एटर्नी से सुन रक्खी थी। लेकिन वह ग़रीब है, उसके साथ तो राजाबहादुर की कन्या का विवाह हो नहीं सकता था। यद्यपि उनकी कन्यायें अपने पिता की ज़ायदाद पायेंगी, वे ही उसकी उत्तराधिकारिणी हैं, तो भी सम्पत्तिमान् घर न होने से तो राजा राजेन्द्रनारायण रायचौधरी बहादुर के समान ज़मींदार की कन्या का विवाह उसके साथ कैसे हो सकता था। इसके अतिरिक्त भास्कर कौन-से ऊँचे वंश का है, यह बात वह बताता ही नहीं था, बताना भी नहीं चाहता। उसका वंश-परिचय पूछने पर उसके मुँह में केवल मृदुल हँसी दिखाई पड़ने लगती है, इसके अतिरिक्त वह कुछ बोलता ही नहीं था। ऐसी अवस्था में एक अज्ञात कुल के लड़के से कन्या का विवाह कैसे कर दिया जा सकता है? परन्तु राजाबहादुर भास्कर को इतना पसन्द करने लगे थे और उसके प्रति मन में इतनी अधिक ममता बढ़ गई थी कि वे प्रायः उसके साथ एना के विवाह की बात सोचने लगते, और दूसरे ही क्षण यह असम्भव समझकर अपने मन से यह बात निकाल देने की चेष्टा करते। परन्तु वे अपने मन से यह बात निकाल देने की जितनी अधिक चेष्टा करते, उनके मन में वह उतनी ही अधिक दृढ़ होकर जमने लगी।

भास्कर युवक और सुन्दर पुरुष था। स्त्रियाँ अपने स्वामी में जो सब गुण पाना चाहती हैं वे भास्कर में पूरी मात्रा में विद्यमान थे। परन्तु वह अत्यन्त सावधान और अल्पभाषी था, बिना प्रयोजन के कभी मेना अथवा एना के सामने नहीं पड़ता था, बातचीत तो कभी करता ही नहीं था। एक मकान में रहते हुए भी वह इतना सावधान रहता था, इस बात को राजाबहादुर, मेना और एना ने लक्ष्य कर लिया था। इसके लिए वे लोग मन-ही-मन भास्कर की बड़ी प्रशंसा करते थे।

परन्तु बीच-बीच में राजाबहादुर बातों ही बातों में भास्कर से कहते---तुम तो भैया, हमारे लड़के की तरह हो। तुम हमारे मकान में इतने संकोच के साथ पराये आदमी की तरह क्यों रहते हो? इतना परवश होकर कहीं एक साथ रहा जाता है? मेना और एना तो तुम्हारी छोटी बहनों की तरह हैं। तिस पर वे लोग पढ़-लिख रही हैं। उन्हें मैंने घर के एक कोने में छिपकर बैठनेवाली परदानशीन लड़कियाँ नहीं बना रक्खा है। तुम दोनों से जब चाहो, स्वच्छन्दतापूर्वक बोला-चाला करो। इस अनुमति के उत्तर में भास्कर केवल थोड़ा-सा हँस देता। यह अधिकार पाकर वह किसी दिन भी मेना और एना से वार्तालाप करने को अग्रसर नहीं हुआ। मकान की उन दोनों सुन्दरी युवतियों से बातचीत करने के लिए एक दिन भी उसने अपना आग्रह नहीं प्रकट किया। साथ ही वह अपने व्यवहार में इतना सरल था कि वह निर्बोध अथवा संकोची भी नहीं समझा जा सकता था। बल्कि वह काफ़ी प्रतिभावान् दिखाई पड़ता था। भास्कर के इस आत्मसंयम से मेना और एना के मन में विस्मय और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई। बाहर से स्वीकार न करने पर भी उन दोनों के अन्तर में यह भाव छिपा हुआ था कि वे सुन्दर, सभ्य, बुद्धिमती, युवती और सम्पत्तिशाली की कन्यायें होते हुए भी इस युवक को नहीं लुभा सकीं। इसके सम्मुख उनकी आकर्षण-शक्ति को हार स्वीकार करनी पड़ी। इस हार की शर्म उनके मन में गड़ गई थी। इसलिए उन लोगों ने मन-ही-मन सोचकर स्थिर कर लिया कि यदि यह हम लोगों की उपेक्षा कर सकता है तो हम भी इसकी अवहेलना कर सकती हैं। न जाने क्यों इतना गुमान लिये फिरता है? मन में सदैव इस भाव के बने रहने के कारण वे लोग मानो भास्कर को देखती ही न हों, उनके मकान में एक देखने योग्य व्यक्ति रहता है, मानो वे लोग यह बात जानती ही न हों, इस विषय की उन्हें कोई खबर ही न हो। परन्तु वे लोग भास्कर के सम्बन्ध में जितनी ही उदासीनता और उपेक्षा का

भाव दिखाने का बहाना करतीं, उनका मन उसके सम्बन्ध में उतना ही सचेष्ट होता जाता। इस प्रकार दोनों पक्ष के लोग मन का भाव मन में ही छिपाकर अपने चारों ओर कृत्रिम अवहेलना का पर्दा डालकर एक दूसरे से पृथक् और दूर रहने की जितनी चेष्टा करते, दोनों ही पक्षों के मन में एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करने का आग्रह उतना ही बढ़ता जाता। परन्तु किसी ने भी हार मानकर अपना व्यवहार नहीं बदला।

आज भास्कर ने बाग़ में टहलते-टहलते देखा कि बाग़ के दूसरी ओर एक संगमरमर की वेदी पर मेना अकेली बैठी हुई विशेष मनोयोग-पूर्वक कोई पुस्तक पढ़ रही है। उसे देखते ही अपने नित्य के अभ्यास के अनुसार वह वहाँ से चला आया और चिन्ता-निमग्न-भाव से बग़ीचे के दूसरे भाग में चला गया। भास्कर को जाता देखकर मेना ने एक बार मुँह फिराकर पीठ की ओर से उसे देख लिया और दूसरे ही क्षण एक दीर्घ निःश्वास लेकर अपनी आँखें पुस्तक की ओर फेर लीं।

थोड़ी ही देर के बाद एक दरबान ने आकर मेना से कहा—बड़ी दीदी, मैनेजर साहब आपसे मिलना चाहते हैं।

मेना दरबान की बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गई, उसका मुँह अकस्मात् लाल हो उठा। ऐसा लगा मानो वह नौकर की बात ठीक तरह समझ नहीं सकी, यह संवाद उसे असम्भव-सा प्रतीत हुआ। अपनी श्रवणशक्ति पर पूरा-पूरा विश्वास न कर सकने के कारण दुबारा स्पष्टरूप से सुनने के लिए उसने दरबान से पूछा—कौन मिलना चाहता है?

दरबान ने स्पष्ट करके उत्तर दिया—मैनेजर साहब।

इतने पर भी मेना कुछ समझ न सकी। उसने फिर पूछा—मैनेजर साहब, कौन-से मैनेजर साहब?

दरबान ने कहा—सेक्रेटरी साहब, भास्कर बाबू।

अब मेना के मन में कोई संदेह न रह गया। परन्तु विस्मय, लज्जा और एक प्रकार के अस्वीकृत आनन्द से उसका मन भर गया। इस मकान में सब कहीं भास्कर अबाध रूप से आता-जाता है। इच्छा करते ही किसी से कुछ कहे बिना वह उसके पास तक जा सकता था, इसमें आश्चर्य उत्पन्न होने की कोई बात न थी, तिस पर भी उसने दरबान भेजकर मेना से आज्ञा क्यों माँगी है, यह निश्चित न कर पाने के कारण मेना उद्विग्न हो गई। इतने दिनों तक अपेक्षा करते रहने के बाद यदि आज उसे मेना से भेंट करने की इच्छा अथवा आवश्यकता जान पड़ी है तो मेना से उसके आदेश की प्रार्थना क्यों की गई है? क्या यह भी उसकी सावधानता और सच्चरित्रता का ढंग है? नहीं तो फिर आज्ञा क्यों माँगी गई है? मेना विस्मय और कौतूहल से उद्विग्न होकर भास्कर के मिलने का कारण सोचने की चेष्टा करती हुई दरबान से बोली—अच्छा, उन्हें यहीं बुला लाओ।

यदि भास्कर इतनी सावधानता से दरबान के द्वारा सूचना देकर सबकी जानकारी में उससे मिलने आता है तो वही उससे अकेले में छिपकर क्यों मिले? इससे अच्छा है कि दरबान उसे लिवा लाये और सब लोग जान लें कि उन दोनों की भेंट-मुलाक़ात में काम-काज की रूखी बातों के अतिरिक्त रस-वस कुछ भी नहीं है।

भास्कर ने वहाँ पहुँचकर मेना को आदरपूर्वक नमस्कार किया। परन्तु उसके मुँह की गम्भीरता ज़रा भी नष्ट नहीं हुई। वह मेना के समीप जाकर धीमे स्वर में बोला—मैं आपके पिता के सम्बन्ध में आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। क्या आप अपना पाँच-सात मिनट का समय दे सकेंगी?

मेना ने भी गम्भीर स्वर से नमस्कार करके उत्तर दिया—कहिए, इस समय मुझे कोई काम नहीं है।

भास्कर ने कहा—राजाबहादुर ने बहुत-सा क़र्ज़ चढ़ा लिया है, यह शायद आप जानती हैं?

मेना का मुँह अब तक गम्भीर था, तो भी उस गम्भीरता के भीतर से छद्म और गुप्त आनन्द की एक आभा उसके मुँह में लावण्य का विस्तार कर रही थी। पिता के ऋण की बात सुनकर उसकी गम्भीरता और बढ़ गई और मुँह मलिन हो गया। उसने मृदु-स्वर से कहा—हाँ, सुना था, कुछ ऋण हो गया है।

भास्कर बोला—साधारण ऋण नहीं है। लगभग तीन लाख रुपये होंगे। सारी सम्पत्ति और यह मकान तक गिरवी में रख दिया गया है। इतना अधिक ऋण हो गया है कि इस बार का गवर्नमेंट रेवेन्यू सम्भवतः चर गोविन्दपुर ताल्लुका बेंचकर देना पड़ेगा। हाथ में नक़द रुपये बिलकुल नहीं हैं, बन्धक रखकर और ऋण लेने योग्य और कोई सम्पत्ति भी बाक़ी नहीं रही है।

मेना का सुन्दर गुलाबी मुँह एकदम पीला पड़ गया, वह सूखे और मलिन मुँह से बोली—तो मुझे क्या करना होगा?

भास्कर ने कहा—आपको मेरी थोड़ी सहायता करनी होगी। राजाबहादुर का यह ऋण आवश्यकता से अधिक दान और अनावश्यक ख़र्च के कारण हो गया है। मैं कोशिश में हूँ कि उनका अधिक दान करना और अनावश्यक वस्तुएँ ख़रीदना कुछ कम कर सकूँ। परन्तु पहरेवालों की आँखें बचाकर भी जब-तब फेरीवाले अथवा अन्य व्यावसायिक राजाबहादुर तक पहुँच ही जाते हैं और दूने-चौगुने मूल्य में उन्हें तमाम अनावश्यक वस्तुएँ दे जाते हैं। आज ही उन्होंने आप लोगों के लिए दो दर्जन साड़ियाँ और अनेक जड़ाऊ गहने ख़रीद डाले। इन वस्तुओं का प्रायः तीन हज़ार रुपयों का बिल हुआ है। इस समय इतना रुपया ख़र्च करना उनके लिए किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। मना करने पर वे दुखी होते हैं। इसी लिए मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। वे जो वस्तुएँ आप लोगों की आवश्यकता से अधिक ख़रीद लें, उन सबको यदि आप उन्हें सूचित किये बिना चुपचाप मेरे पास लौटा दें, तो मैं उन्हें लौटाकर बहुत-सा रुपया बचा लूँ। इससे

राजाबहादुर के खर्च करने के व्यसन की भी परितृप्ति होगी और उससे उनका नुक़सान भी न होगा। और आप लोगों को जब जिस चीज़ की ज़रूरत पड़े, यदि आप लोग राजाबहादुर से न कहकर अनुग्रहपूर्वक मुझे आज्ञा दे दिया करें तो मैं बहुत सस्ते दामों में उन्हें ख़रीदकर ला दे सकता हूँ। बहुतेरे दूकानदार अपनी चीज़ें लेकर राजाबहादुर को दिखाने आते हैं, और जो कोई भी आगया, आवश्यकता न होने पर भी उसकी वे सब चीज़ें अधिक से अधिक तादाद में ख़रीद लेते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ कहने पर वे कहते हैं—वे बेचारे मेरा नाम सुनकर ही तो मेरे पास आते हैं। यदि मैं न ख़रीदूँ तो उन लोगों के सम्मुख बदनाम हो जाऊँ। वे जितना बढ़ावा देते हैं, दूकानदारों का साहस उतना ही अधिक बढ़ जाता है; और एक दूकानदार से सुनकर सौ दूकानदार उन्हें ठगने को जमा ही जाते हैं। मेना ने गम्भीरता से भास्कर की बातें सुनीं। भास्कर इतनी बात कर गया, परन्तु उसके मन में ज़रा भी सङ्कोच नहीं उत्पन्न हुआ, न उसमें संयम का अभाव ही जान पड़ा। मन-ही-मन यह बात सोचती हुई मेना धीमे स्वर में बोली—हमें तो इन सब बातों का पता नहीं था। आपने हमें सावधान करके सच्चे आत्मीय का काम किया है। आज से हम लोग बहुत सावधान होकर चलेंगी।

मेना की बात समाप्त होने के बाद भास्कर वहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरा। उसने मेना को नमस्कार किया और पीछे की ओर मुँह करके चल दिया।

मेना स्थिर-भाव से खड़ी हुई भास्कर जिस राह से जा रहा था, उस पर अपनी दृष्टि फैलाकर सोचने लगी—यह व्यक्ति इतना अधिक गम्भीर क्यों है? इतने दिनों के बाद यह पहले-पहल मुझसे बात करने के लिए अपनी ओर से याचना करके आया, परन्तु संसार में क्या केवल काम-काज की ही बातें हैं, और कोई बात है ही नहीं? हम लोग मानो उससे बातें करने के योग्य भी नहीं हैं। वह

हमारे मकान में मितव्यय करने आया है, शायद इसी लिए अपनी बातों का भी वह इतना मितव्ययी है, उसकी सभी बातें कृपणता से पूर्ण हैं ! आज इस ज्येष्ठ मास की सान्ध्य-कालीन वर्षा के बाद जुही, बेला और गन्धराज की सुगन्ध चहुँओर परिव्याप्त है, सूर्यमुखी के फूल अपनी सोने की पँखुड़ियाँ फैलाये बग़ीचे को आलोकित कर रहे हैं। ऐसे सुन्दर समय में काम-काज के अतिरिक्त अन्य प्रकार की बातें भी हो सकती थीं। मन में यह बात आते ही मेना ने अपने पिता के अपव्यय और उनके ऋण की बात सोचकर उसे भुला दिया और उसने अपनी भावना भास्कर की ओर से फिराकर दूसरी ओर प्रवाहित कर दी।

मेना स्तब्ध होकर खड़ी हुई अपने पिता के ऋण और भविष्यत् की दशा पर सोच-विचार कर रही थी, इतने में ही एना न जाने कहाँ से दौड़कर आ पहुँची और अपनी बहन को कसकर पकड़कर बोली—दीदी, दीदी, भास्कर से तुम्हारी क्या बातें हुईं ? वे सब मुझसे बतानी पड़ेंगी। भास्कर बाबू तुमसे क्या कहने आये थे ?

मेना अपनी चिन्ता भूलकर कुछ हँस पड़ी और एना के गाल में एक हलकी-सी चपत जड़कर बोली—भास्कर बाबू मुझसे यह कहने आये थे कि वे एणाक्षी एना की काली आँखों के कटाक्ष-बाण से घायल हो गये हैं; और उससे करुणा की भीख माँगने आये हैं।

एना हँसकर अपनी दीदी की देह से एकदम चिपटकर बोली—समझ गई, भास्कर बाबू क्या कहने आये थे। लेकिन दीदी, तुमने इस प्रकार के बैनामे का कारबार कब से शुरू कर दिया ? किस पर तुम्हारे प्राणों का ऋण एकत्र हो गया है—जो बैनामा करके तुम्हें अपनी सम्पत्ति छिपानी पड़ रही है ? फिर हमारे उस भोले बाबू की क्या दशा होगी ?

मेना स्वभाव से ही गम्भीर थी। ऋण की बात उठते ही वह बहन से अधिक राग-रङ्ग न मना सकी और पिता के ऋण की बात स्मरण करके पुनः गम्भीर हो गई।

मेना के मुँह की हँसी अकस्मात् विलुप्त होते देखकर और उसे चुप होते देखकर एना ने फिर हँसी में कहा—कोई डर नहीं है दीदी, मैं किसी से नहीं कहूँगी कि तुमने बैनामे का कारबार प्रारम्भ कर दिया है। तुम स्वच्छन्दता-पूर्वक मेरा नाम लगाकर भास्कर बाबू से प्रेम कर सकती हो।

मेना इस बार भी नहीं हँस सकी। उसने थोड़ी देर एना के मुँह की ओर गम्भीरतापूर्वक ताककर उससे कहा—एना, पिता जी बहुत ऋणी हो गये हैं, उनकी सारी ज़मींदारी और यह मकान तक बंधक रख दिया गया है, अब चर गोविन्दपुर परगने के बिकने की ही बारी आगई है। पिता जी का मन राजाओं की तरह उदार और पृथ्वी की तरह विशाल है। अतएव उनसे जो कोई भी आकर प्रार्थना करता है उसे वे निराश नहीं लौटा पाते, चाहे वह भिखारी हो, चाहे चीज़-वस्तु बेचनेवाला फेरीवाला हो। आज उन्होंने हम लोगों के लिए दो दर्जन साड़ियाँ और तमाम जड़ाऊ गहने ख़रीद डाले, परन्तु इन वस्तुओं का मूल्य कहाँ से चुकाया जायगा, इसका कोई निश्चय नहीं है।

जिसके मुँह में सदा हँसी और आँखों में अजस्र प्रसन्नता विराजमान रहती थी, जिसका प्रत्येक अङ्ग-विक्षेप चंचलता और प्रत्येक वाक्य रसिकता से परिपूर्ण रहता था, वह एना भी अपनी दीदी के मुँह से यह भय की बात सुनकर गम्भीर हो गई। मेना के मुँह के विषाद की छाया एना के मन और मुँह पर दिखाई पड़ने लगी। उसने अपनी दीदी को दोनों हाथों से कसकर चिपटाकर भयार्त स्वर से कहा—फिर अब क्या होगा दीदी?

मेना ने बहन का भय देखकर उसे प्रफुल्ल करने के लिए ज़ोर लगाकर अपने मुँह में हँसी लाकर आश्वासनपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—ऊँह, होने को क्या रक्खा है। हम लोगों के लिए ही तो पिता जी इतनी अधिक वस्तुएँ ख़रीदते हैं। हमें अपनी विलासिता छोड़नी पड़ेगी। नहीं छोड़ सकोगी क्या एना?

एना बड़ उत्साह से कह उठी—क्यों नहीं छोड़ सकूँगी दीदी, ज़रूर छोड़ सकूँगी। मैं तो खद्दर के ही कपड़े पहनना चाहती हूँ, पिता जी ढेरों रेशमी साड़ियाँ ख़रीद लाते हैं, इसी लिए पहननी पड़ती हैं। परन्तु पिता जी को तो मोटे कपड़े पहनने में बड़ा कष्ट होगा दीदी? यदि उनके हाथ में रुपये न रहेंगे तो वे बड़े दुखी होंगे।

मेना ने लम्बी साँस छोड़कर उत्तर दिया—तो हम लोग पिता जी को कष्ट ही क्यों सहन करने देंगी? उन्होंने हम लोगों को पढ़ा-लिखा दिया है, शिल्प-कार्य सिखला दिया है। हम लोग लड़कियाँ हैं, इसलिए क्या पिता जी के किसी काम नहीं आयँगी? हम दोनों लड़के होते तो क्या करते? अब भी हम वही चेष्टा करेंगी।

एक प्रकार के नये जीवन के आस्वाद और आनन्द से उत्साहित होकर एना कह उठी—यह तो बड़ी सुन्दर बात होगी दीदी।

इतने में राजाबहादुर वहाँ आ पहुँचे। उनके पीछे-पीछे दो नौकर बहुत-से कपड़ों और गहने रखने के चमड़े के सूटकेस लादकर पहुँचे।

पिता को आते देखकर ही मेना ने गम्भीर होकर एना से कहा—देख एना, पिता जी के ऋण और कष्ट की जो बातें हमें ज्ञात हो गई हैं उन्हें उनसे कह मत बैठना। वे जान जायँगे तो मन में बड़े दुखी होंगे।

राजाबहादुर ने कन्याओं को देखकर हँसते हुए कहा—बेटियो, तुम दोनों यहाँ बैठी हो। देखो, तुम लोगों के लिए क्या लाया हूँ!

सङ्गमरमर की जिस वेदी पर पहले मेना बैठी थी, राजाबहादुर हर्ष-गद्गद होकर उस पर बैठ गये और नौकरों के हाथ से कपड़े और गहने लेकर उन सबको खोल-खोलकर दिखलाने लगे।

उन सब चीज़ों को देखकर एना की दोनों आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं, परन्तु दूसरे ही क्षण मेना के गम्भीर मुँह की ओर ताककर वह भी म्लान हो गई।

मेना ने कहा—पिता जी हम लोगों के पास तो इतने अधिक कपड़े

हैं कि वे आलमारियों और ट्रङ्कों तक में तो समाते नहीं; अब और अधिक कपड़ों का क्या होगा? और हम लोग तुम्हारी बाबाआदम के जमाने की लड़कियाँ तो हैं नहीं, जो ढेरों गहने लादकर अपने को गुड़ियों की तरह सजाकर घूमेंगी।

राजाबहादुर ने कहा—यह कोई न कह सके कि राजा राजेन्द्रनारायण की कन्यायें पुराने और उतारे हुए कपड़े पहनती हैं। यह भी तो हमें देखना होगा। तुम लोग मेरी कन्यायें होकर पुराने और उतरे कपड़े पहनोगी? संसार क्या कहेगा? उससे मेरी मान-इज्जत नष्ट न हो जायगी?

मेना दुःख की म्लान हँसी हँसकर बोली—आपने हम लोगों को जो कपड़े खरीद दिये हैं, उन्हें रोज बदल-बदलकर ब्रह्मा का वर्ष भी बिताया जा सकता है मनुष्यों के ३६५ दिन का वर्ष तो अत्यन्त संक्षिप्त है।

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर हो-हो करके हँस पड़े और बोले—तुम लोग लिख-पढ़ गई हो। तुमसे बातें करके कौन पार पा सकता है? खूब कहा बेटी! खूब कहा। हा-हा-हा! ब्रह्मा का वर्ष!

मेना ने पिता को साधारण बात पर भी बच्चों की तरह हँसते देखकर आनन्दित और व्यथित होकर कहा—हम लोगों के पास तो ढेरों गहने हैं। इतने अधिक गहने लेकर हम लोग करेंगी क्या? इन सबको नित्य बदल-बदलकर पहनने पर लोग हम पर थू-थू करके हँसेंगे, अभिमानी बताकर हमारी निन्दा करेंगे। सब लोग सोचेंगे कि हम लोग अपने पिता के ऐश्वर्य का विज्ञापन कर रही हैं। जिस प्रकार व्यावसायिक लोगों को किराये में बुलाकर उनके पेट में, पीठ में, अगल-बग़ल में सब कहीं विज्ञापन की तख्तियाँ टाँगकर सड़कों पर घुमाते हैं, उस प्रकार हमें देखकर भी लोग समझेंगे कि हमारे पिता ने लोगों को अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए हम लोगों को उसी प्रकार की सेण्डूबिच गर्ल अथवा मेनिकिन बना दिया है।

राजाबहादुर ठहाका मारकर हँस पड़े और हँसते-हँसते बोले—बी० ए० पास करके क़ानून पढ़ ले। तू तो बड़ी अच्छी वकील बन सकती है। तुझमें बातें करने की बड़ी सुन्दर क्षमता है। खूब कहा बेटी! परन्तु ये सब गहने केवल तेरे पिता का ऐश्वर्य दिखाने के लिए नहीं हैं। तुम लोगों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए भी थोड़े-बहुत अलङ्कारों की आवश्यकता है!

एना ने फिर हँसकर उत्तर दिया—हिश! आवश्यकता नहीं है! क्या हम लोग काली-कलूटी हैं, जो गहनों से सज-धजकर सुन्दर दिखाई पड़ेंगी। हम गहनों के बिना ही बहुत सुन्दर हैं—"किमिव हि मधुरता मण्डनं नाकृतीनाम्"।

मेना ने बहन की वाचालता से प्रसन्न होकर कहा—छिः एना, पिता जी के सामने जो जी में आता है वही बक रही है! तू क्या हमेशा अबोध ही बनी रहेगी? अपने ही मुँह अपने रूप का इतना गर्व न करना चाहिए।

एना ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—अपने रूप का गर्व क्यों न करें? हम लोगों को जो देखता है वही कहता है 'सुन्दरी क्यों न हों, राजपुत्री ही ठहरीं! हम लोग कैसे सुन्दर व्यक्ति की कन्यायें हैं?

राजाबहादुर ने हँसते हुए कहा—तुम लोगों का पिता सुन्दर है अथवा नहीं सो मैं नहीं जानता। परन्तु तुम्हारी मा अवश्य सुन्दरी थी। ऐसा अलौकिक रूप मनुष्यों में दिखाई नहीं पड़ता।

राजाबहादुर जोर से हँस पड़े, परन्तु परलोकगत पत्नी की स्मृति से वह हँसी करुण हो उठी। एना की वाचालता से पिता-पुत्री का जो कथोपकथन आनन्द से परिपूर्ण हो गया था वह भी इस समय विषादाच्छन्न हो गया। मेना और एना भी मा का स्मरण करके गम्भीर हो गईं। और राजाबहादुर की हँसी भी अधिक देर तक नहीं ठहर सकी। उन्होंने हँसना बन्द करके कहा—देखो बेटी, चाहे अभी तुम्हें गहनों

की जरूरत न हो, परन्तु जब विवाह होगा तब तो ज़रूरत पड़ेगी ही। इसी लिए मैं थोड़ा-थोड़ा करके ख़रीदकर रक्खे दे रहा हूँ।

एना के मुँह से फिर बात निकल पड़ी, उसने कहा—अपने विवाह के समय हम लोग ये सब पुराने गहने पहन चुकीं! उस समय हम लोग नये गहने लेंगी।

राजाबहादुर ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—अच्छा बेटी, अच्छा, ऐसा ही होगा, तेरे लिए नये गहने ही बनवा दूँगा।

मेना ने कहा—तो इस समय हम लोग इन सब गहनों को क्या करेंगी? अभी इन सबको वापस कर दीजिए, हमें जब ज़रूरत पड़ेगी तब आपसे बतायेंगी।

राजाबहादुर ने व्यस्त होकर उत्तर दिया—न न, अब कैसे वापस किया जा सकता है? जब मैं ख़रीद चुका तब अब वापस करने से दूकानदार समझेंगे कि राजाबहादुर दिवालिये हो गये हैं। इसके अतिरिक्त जौहरी कह रहा था कि उसने यह हार नैपाल के महाराज के लिए बनवाया था। एक ही हार बनवाने से कहीं उसमें कोई त्रुटि न रह जाय, इस विचार से उसने एक साथ दो बनवाये। उसमें से एक हार नैपाल के महाराज ने ले लिया और दूसरा वह मेरे लिए ले आया। कूचबिहार के महाराज के लिए भी उसने गत वर्ष ठीक ऐसा ही हार बनवा दिया था।

मेना ने दुखी होकर कहा—दुनिया भर के दग़ाबाज़ आकर इसी प्रकार की झूठी बातें बनाकर आपको ठग ले जाते हैं, आप क्या यह बात नहीं जान पाते? यों ही कह दिया, नैपाल के महाराज और कूचबिहार के महाराज के लिए बनवाया था। ज़रूर बनवाया होगा—उसकी सब बातें भी तो बनाई हुई हैं। भास्कर बाबू के द्वारा आप इन्हें लौटा दीजिए।

राजाबहादुर आश्चर्य में पड़ गये—उन्होंने सोचा, क्या यहाँ भी वह भास्कर विद्यमान है। परन्तु उन्होंने अपने मन का भय छिपाकर

कहा––भास्कर ग़रीब ठहरा, वह इन सब हीरा-जवाहिरों का मर्म क्या जाने? परन्तु लड़का बड़ा अच्छा है। वह यदि ग़रीब न होता तो एना से उसका विवाह कर देने से बड़ा सुन्दर होता! मेना का वर तो निश्चित ही हो गया है––कुमीरखाली का ज़मींदार कन्दर्पकुमार। अब एना के लिए भी पात्र पा जाऊँ तो निश्चिन्त होऊँ।

एना कह उठी––हाँ, मैं उस चुप्पा भास्कर बाबू से अपना विवाह कर चुकी! उसके साथ मेरा विवाह कर दिया जाय तो मैं तो कुछ बोले बिना साँसें ले-लेकर ही मर जाऊँगी। अच्छा पिता जी, भास्कर बाबू बोलना जानते हैं?

एना का प्रश्न सुनकर राजाबहादुर हो-हो करके हँस पड़े, और मेना का भी गम्भीर मुँह हँसी से खिल उठा। राजाबहादुर ने कहा––भास्कर लड़का बड़ा गम्भीर है। दुःखी, ग़रीब ठहरा, शायद इसी लिए ऐसा विमर्ष रहता है। उसका परिचय पूछने पर कुछ उत्तर ही नहीं देता, केवल हँसने लगता है। तो भी सत्यनिधन ने मुझसे कहा था कि वह बड़े ऊँचे वंश का लड़का है। इस समय ग़रीब हो गया है, इसी लिए अपना परिचय देने में लज्जित होता है। तुम लोग अब अपने कमरे में चलो, कपड़े और गहने रखवा दूँ।

मेना ने उत्तर दिया––आप जाइए पिता जी, हम लोग थोड़ी देर ये सब चीज़ें देख लें।

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर मन-ही-मन बड़े ख़ुश हुए। वे उठकर जाते हुए सोचने लगे––स्त्रियों को भी कभी गहने-कपड़ों से अरुचि उत्पन्न होती है। गङ्गा जी जिस प्रकार शव की उपेक्षा नहीं करतीं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी गहने-कपड़े की उपेक्षा नहीं करतीं। अभी तो मुँह से इन्हें लेने से इनकार कर रही थीं और अब बैठकर गहने-कपड़े देखेंगी!

राजाबहादुर के चले जाने पर मेना ने नौकर को बुलाकर कहा––रतन, भास्कर बाबू को तो बुला दे।

कुछ ही क्षणों के बाद भास्कर ने वहाँ आकर पूछा—आपने मुझे बुलाया था ?

भास्कर को देखते ही एना को स्मरण हो आया कि उसके पिता इस व्यक्ति से उसका विवाह करने के सम्बन्ध में सोच-विचार कर रहे थे। वह तुरन्त खी-खी करके हँसने लगी। मेना ने उसे डाटकर दबे हुए स्वर से कहा—छि: एना ! यह क्या कर रही है ?

एना मुँह में कपड़ा दबाकर हँसती हुई वहाँ से भाग गई और बगीचे के एक किनारे जाकर एक बेदी पर हँसती हुई लोट गई।

मेना ने भास्कर को सब गहने-कपड़े देकर कहा—आप ये सब वस्तुएँ वापस कर दीजिएगा। और हम लोगों के पास जो और नये गहने-कपड़े हैं, यदि हो सके तो उन्हें भी लौटा दीजिएगा, मैं आपको दूँगी। और उस दिन पिता जी ने दो सौ रुपये का इत्र और गुलाबजल खरीद लिया था वह तो मकान में ही सड़ेगा अथवा उसे नौकर-चाकर लगायँगे; गन्धी को बुलाकर यदि वह भी लौटा दे सकें तो बड़ा सुन्दर हो।

भास्कर केवल 'अच्छा' कहकर चला गया।

आज से मेना से भास्कर की लुका-छिपी का कारबार शुरू हो गया। मेना पिता से छिपाकर भास्कर से मिलने-जुलने और चीज-वस्तु लौटाने लगी।

चौथा परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष का पासपोर्ट

पुण्डरीकाक्ष जेल में पड़ा था और उसकी बुआ घर में उपवास कर रही। वह हर महीने कमाता था और उसी से अपना खर्च चलाता था। उसके पास कोई पूँजी नहीं थी। इसी लिए पुण्डरीकाक्ष के एक महीने जेल में रहने के बाद ही उसकी बुआ को अन्न-कष्ट रहने लगा। कुछ दिन उसने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किये, परन्तु उसके बाद उसे ऐसा कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ा जिससे उसके छः महीने के लम्बे दिन बीत जाते। उसने राजाबहादुर को अपनी कष्ट-कथा सुनाकर उनसे कुछ याचना करने की चेष्टा की, परन्तु फाटक के पहरेदार संतरी ने उसे किसी प्रकार भीतर नहीं जाने दिया। उसने राजमहल के नौकरों और दासियों से अनुनय-विनय करके प्रवेशाधिकार पाना चाहा। उन सबने उसके दुःख से सहानुभूति प्रकट करते हुए विषण्ण मन से उत्तर दिया—अब वह समय नहीं रह गया माई, जाने कहाँ से एक कंजूस छोकड़ा आ पहुँचा है। वह राजाबहादुर को नजरबन्द रखता है। उनके समीप किसी को जाने तक नहीं देता। कहता है, राजाबहादुर दान करते-करते दिवालिया हो गये हैं।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ के अभाग्य से देश में दुर्भिक्ष भी फैल गया और दाता भी दिवालिया हो गया। क्या करे और क्या न करे, यह निश्चित न कर पाने के कारण उसे आँखों के सामने अँधेरा दिखाई देने लगा। एक दिन एक दासी ने पुण्डरीकाक्ष की बुआ को युक्ति बताई कि दीदियाँ प्रतिदिन स्कूल जाती हैं, यदि किसी दिन उनकी मोटर रोककर उनसे कह सको और उन्हें दया आ जाय तो कोई न कोई रास्ता

निकल आये। और कोई उपाय नहीं है। मैनेजर बाबू का हुक्म है कि कोई किसी व्यक्ति की प्रार्थना के सम्बन्ध में राजाबहादुर से अथवा उनके मकान के किसी व्यक्ति से चर्चा न करे। यदि कोई ऐसा करेगा तो नौकरी से निकाल दिया जायगा। दीदियों से तुम्हारी दशा बताकर आख़िर अपनी चाकरी थोड़े ही खोऊँगी माई?'

पुण्डरीकाक्ष की बुआ राजकन्याओं से मिलकर उनसे कुछ सहायता पाने की नित्यप्रति चेष्टा करती। परन्तु उनकी मोटर-गाड़ी सरसराती हुई आकर दरवाज़े के भीतर घुस जाती और उसे उन लोगों का मन अपनी ओर आकृष्ट करने का अवसर ही न मिलता।

पन्द्रह-सोलह दिन की चेष्टा के पश्चात् एक दिन उस बुढ़िया के और उसके साथ पुण्डरीकाक्ष के भाग्य जाग गये। उस दिन मेना और एना कालेज से लौट रही थीं। उनकी मोटर-गाड़ी फाटक के भीतर घुसना ही चाहती थी कि इतने में ही उसके सामने एक बड़ा भारी साँड़ आकर खड़ा हो गया। शोफ़र जितना हार्न बजाता, साँड़ अपने सींगों को सामने करके उतना ही अधिक भँकरता। यह देखकर पहरे का सन्तरी अपनी सङ्गीन उठाकर दौड़ा, परन्तु साँड़ वहाँ से तिल भर भी नहीं हटा। जिस समय उस साँड़ के हटाने का प्रयत्न हो रहा था, उसी समय पुण्डरीकाक्ष की बुआ मोटर के समीप आ पहुँची और उसका दरवाज़ा पकड़कर मेना से बोली—मैं एक महीने से तुम्हें अपनी विपत्ति-कथा बताने की कोशिश में हूँ बेटी, परन्तु सन्तरी मुझे भीतर जाने नहीं देता और तुम्हारी मोटरगाड़ी भी कभी फाटक के बाहर एक क्षण के लिए खड़ी नहीं होती, जो तुमसे कुछ कह पाती।

इतनी देर में साँड़ कुछ ढेले खाकर मन्थर गति से चलता हुआ थोड़ा आगे बढ़ गया। शोफ़र ने मोटर का हार्न बजाकर गाड़ी चलाने का संकेत किया। मेन ने उससे कहा—ज़रा ठहरो, अमर। तब वह पुण्डरीक की बुआ से बोली—कहिए, आप क्या चाहती हैं?

पुण्डरीक की बुआ ने कहा—मैं भिखारिनी नहीं हूँ बेटी। मेरा

भतीजा नौकरी करता था। एक दिन किसी कालेज के सामने पुलिस लड़कियों को गिरफ़्तार कर रही थी। मेरा भतीजा पुण्डरीकाक्ष सम्भवतः पुलिस के इस काम में बाधा पहुँचाकर पुलिसवालों को मारने को तत्पर हो,गया। अतएव उसे छः महीने की सज़ा हो गई है। इस समय मैं बड़े अर्थ-कष्ट में पड़ गई हूँ। वह महीने में जो पैदा करता था•उसी से घर का ख़र्च चलता था। हम लोगों के पास कोई पूँजी इकट्ठी ही नहीं होती थी। अब मैं किससे भीख माँगने जाऊँ? आप लोग हमारे मकान के सामने ही रहती हैं, सदा दान-धर्म करती रहती हैं, इसलिए मैं सोच रही थी कि यदि आपसे. अपनी स्थिति बता दूँ तो मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

एना ने तुरन्त पुण्डरीकाक्ष के मकान की ओर एक बार ताककर बुढ़िया से पूछा—आप लोग क्या इसी सामने के मकान में रहती हैं?

बुढ़िया ने उत्तर दिया—हाँ बेटी, मेरे भतीजे के पास यही एक मकान है। उसके और कोई नहीं है, मेरे भी कोई नहीं है। इसी लिए मैं उसके साथ रहती हूँ और उसके लिए दो रोटियाँ बना देती हूँ।

रास्ते में खड़े होकर अधिक देर तक बात करना उचित न समझ-कर मेना ने कहा—आप हमारे साथ मकान में चलिए। वहीं हम आपकी सारी बातें सुनेंगी।

मेना ने मोटर का दरवाज़ा खोल दिया। बुढ़िया उस प्रकाण्ड रोल्स-रायस कार में जा बैठी। जिस समय बुढ़िया परम सम्मान के साथ इन राजकन्याओं की कार में बैठी उनके महल को जा रही थी उस समय तीस रुपये महीने पर क्लर्की करनेवाला उसका भतीजा जेल में बन्द था। इसी को भाग्य कहते हैं!

बुढ़िया के मोटर में बैठ जाने पर वह फाटक के भीतर जा

पहुँची। बुढ़िया को अपने साथ लेकर ऊपर के कमरे में चढ़ते-चढ़ते एना ने उससे पूछा--आपने अपने भतीजे का क्या नाम बताया? पुण्डरीकाक्ष? पुण्डरीकाक्ष का क्या मतलब है?

बुढ़िया बोली--पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड।

यह नाम सुनते ही एना खिलखिलाकर हँस पड़ी।

मेना ने उसे आँखें दिखाकर सावधान करती हुई कहा--एना, तू जा कपड़े बदल ले।

एना नहीं गई, तो भी उसने अपनी हँसी दबाकर अपनी आँखों और मुंह को लाल कर लिया और पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड की कथा सुनने की उत्सुकता में मेना और बुढ़िया के समीप मौजूद रही।

बुढ़िया ने अपने प्रति थोड़ी सहानुभूति की भावना देखकर अपने ही आप पुण्डरीक का और अपना जीवन-वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

बुढ़िया बकते-बकते थककर ज्यों ही साँस लेने को क्षण भर को रुकी, त्यों ही मेना वहाँ से उठ गई और बग़ल के कमरे से दस रुपये का एक नोट लाकर उसके हाथ में देती हुई बोली--ऐसा लगता है आपके भतीजे पुण्डरीक बाबू हम लोगों को बचाने जाकर ही जेल गये हैं। आप प्रति महीने हमारे पास आकर ये रुपये ले जाया करें।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ नोट को हाथ में लेकर इस आशातीत लाभ की प्रसन्नता में गद्‌गद स्वर से बोली--तुम लोग राजकन्या हो बेटी, तुम्हारे रोम-रोम में दया है। मैंने साक्षात् लक्ष्मी के द्वार पर हाथ फैलाया है। मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की जरूरत नहीं पड़ी। तुम लोगों को क्या कहकर आशीर्वाद दूँ बेटी। तुम लोग राजरानी तो बनोगी ही, तो भी स्वामी-पुत्र लेकर सुखी होओ, मेरी तरह के बुढ़ापे की उम्र में सौभाग्य-सिन्दूर लगाओ, मेरी तरह की सैकड़ों दुखी-दरिद्रों को मुक्तहस्त होकर दान-दक्षिणा देती रहो। तुमने मुझे ये दस रुपये नहीं दिये हैं, दस लाख रुपये दिये हैं, मुझे प्राण-दान दिया है, मेरी

मान-रक्षा की है, नहीं तो मैं न जाने किस राह-घाट की भिखारिन बनी फिरती बेटी।

एना को प्रत्येक बात में अकारण ही हँसी आ रही थी। वह अपने मुँह में कपड़ा दबाकर हँसी से फूलती हुई समीप के कमरे में जाकर लोट गई। जब मेना बुढ़िया को विदा करके उस कमरे में पहुँची तब एना ने उससे हँसते-हँसते कहा—दीदी, इतने दिनों के बाद तुम्हारे उस भोंदूराम का नाम मालूम हुआ। कैसा बढ़िया दाँतफोड़ नाम है—पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड। शायद माता-पिता को और कोई नाम ढूँढ़े नहीं मिला।

मेना ने भी हँसकर उत्तर दिया—खैर, इतने दिनों के बाद अब तो तेरी चिन्ता मिट गई। जप करने योग्य एक नाम मिल गया। अब तक तो यों ही मरी जा रही थी।

एना ने हँसते-हँसते कहा—हिश! मुझे उस भोंदू का नाम जप करने की परवा नहीं है। मैं तो तुम्हारे ही लिए यह नाम ढूँढ़ रही थी। अच्छा दीदी, तुम्हें तो अब तीन-तीन नाम जप करने को मिल गये—कन्दर्प, पुण्डरीकाक्ष और भास्कर, एकदम ट्रिनिटी। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव।

मेना हँसकर बोली—तुझे यदि ईर्ष्या होती है तो तू इनमें से दो स्वच्छन्द होकर ले सकती है। मैं निःस्वत्व होकर दान किये दे रही हूँ।

एना ने कहा—तो दीदी, यह तो बताओ कि तुमने कौन-से दो को दान में दे दिया और किसे अपने लिए रख लिया।

मेना ने हँसकर उत्तर दिया—अपनी यह 'गुप्त बात' तुम्हें कैसे बताऊँ?

एना ने हँसकर कहा—यह तो मैं बता सकती हूँ। कन्दर्प तो है नहीं, क्योंकि वह पिता जी का पसन्द किया हुआ वर है। पुण्डरीकाक्ष भोंदूराम हैं, वे भी नहीं हैं। स्वयंवर हुआ है, भास्कर बाबू के साथ। क्यों, है न यही ठीक?

मेना का सुन्दर मुख लज्जा से लाल हो उठा, परन्तु उसने प्रतिवाद में कहा—क्या व्यर्थ बकती है ! छिः !

परन्तु उसका प्रतिवाद ज़ोर न पकड़ सका। उसका स्वर अत्यन्त क्षीण सुनाई पड़ा।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ को रुपये लेकर जाते हुए फाटक के समीप भास्कर ने देख लिया और आश्चर्यान्वित होकर पूछा—आप भीतर कैसे पहुँच गई ?

बुढ़िया भय और लज्जा से सकपकाकर बोली—मैं अपने आप नहीं आई हूँ बेटा। राजकन्याये मुझे अपनी गाड़ी में बिठाकर ले आई थी। उन्होंने ये दस रुपये दिये हैं और प्रतिमहीने आकर ये रुपये ले जाने की बात कही है।

भास्कर और कुछ कहे बिना वहाँ से चला गया। बुढ़िया ने भी वहाँ से भागकर अपने प्राण बचाये।

शाम को जब मेना और एना बग़ीचे में टहल रही थी, तब एक दरबान ने आकर मेना से कहा—मैनेजर साहब एक बार आपसे मिलना चाहते हैं।

मेना का मुँह विवर्ण हो उठा, वह एना की ओर देख तक न सकी। वह दरबान से बोली—यहीं बुला ला।

दरबान के जाते ही एना खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—दीदी, यह तो नित्य का अभिसार प्रारम्भ हो गया।

मेना ने मुँह में हँसी दबाकर लाल आँखें दिखाती हुई बहन से शासन के स्वर में कहा—चुप पगली, जो मुँह में आता है वही बकने लगती है, जानती नहीं, मैं तुझसे बड़ी हूँ ?

भास्कर को दूर पर आता देखकर एना वहाँ से जाती हुई मेना से कह गई—मैं भागूँ भाई, टू इज़ कम्पनी, थ्री इज़ नन; और मैं हँसी रोककर चुपचाप ठहर भी न सकूँगी।

भास्कर ने आकर नमस्कार करके कहा—आज राजाबहादुर ने

इकट्ठी छः मृगनाभियाँ ख़रीद ली हैं। ख़ुद ही एक भूटानी को कहीं से मोटर में बैठाकर ले आये थे। उसके पास जितनी मृगनाभियाँ थीं, उन्होंने सबकी सब ख़रीद लीं। इतनी मृगनाभियाँ तो सारे कलकत्ता शहर के मुमूर्षु प्राणियों को बचा लेने के लिए भी यथेष्ट हैं। अतएव इनमें से कम से कम पाँच मुझे वापस कर दीजिएगा। मैंने उस भूटानी को बुलाया है, उसे लौटा दूँगा।

मेना ने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता से उत्तर दिया—अच्छा, मैं उन्हें चुराने का प्रयत्न करूँगी।

मेना अपनी गम्भीरता की रक्षा न कर सकी। चोरी करने की बात कहते हुए उसके मुँह में हँसी की आभा विकीर्ण हो गई।

उसकी बात सुनकर और हँसी देखकर भास्कर ने भी हँसते हुए कहा—सुना है, आज तो आप भी एक बुढ़िया को अपने मोटर में बैठाकर ले आई और मकान के भीतर ले जाकर उसे दस रुपये दान में दिये। पहरेवाले ही जब चोर हों तब तो किसी प्रकार रक्षा नहीं हो सकती।

मेना कुछ मुस्कराकर रह गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। और कोई बात कहने को न होने के कारण भास्कर नमस्कार करके वहाँ से चला गया।

भास्कर के जाते ही एना तुरन्त आ पहुँची और मेना से बोली—भास्कर बाबू से तुम्हारी क्या-क्या बातें हुईं दीदी? मैं ऊपर की खिड़की से सब देख रही थी। खूब हँस-हँसकर कौन-सी बातें हो रही थीं? उस मूक आदमी के मुँह में तुमने हँसी ला दी, तुम सीधी स्त्री नहीं हो दीदी।

मेना ने हँसकर कहा—इतनी ईर्ष्या है तो तू भी तो ठहर सकती है। भागकर आड़ से देखने की कौन-सी आवश्यकता है? मेरी अपेक्षा हँसने में तो तू ही अधिक पटु है। तेरे ठहरने पर तो दोनों की बातें हँसते ही हँसते होतीं।

एना कृत्रिम गम्भीरता दिखाती हुई ओंठ बिचकाकर बोली—न बाबा, अन्त में तुम दोनों ही मन-ही-मन मुझे कोसोगी। जो स्थिति

देख रही हूँ उससे तो ऐसा लग रहा है कि कन्दर्प बाबू के भाग्य में तुम खटाई घोल रही हो।

मेना ने हँसकर कहा—कन्दर्प बाबू के लिए यदि तेरे में इतना दर्द है तो तू तो उसकी मन की व्यथा मिटाने को मौजूद है।

एना गम्भीरता दिखाती हुई ही बोली—नहीं भाई, मुझे तुम्हारे कन्दर्प की ज़रूरत नहीं है। मैं तो ये सब युक्ताक्षर-संयुक्त उलटे-टेढ़े नाम स्मरण तक न रख सकूँगी, और न इन नामों का उच्चारण ही कर सकूँगी। पुण्डरीकाक्ष! कन्दर्प-कान्ति! भास्कराचार्य! एक से एक बढ़िया नाम हैं।

मेना ने कहा—अच्छा, इनमें से जो तुझे पसन्द हो उसे छाँट ले। उसका नाम बदलकर ललित अथवा अधर-सधर कुछ भी रख दिया जायगा। नाम बदलते कितनी देर लगती है।

दोनों बहनों की यह रंग-रसिकता कितनी देर तक चलती, यह बताना कठिन है। वे दोनों बहनें होने पर भी सगिनी के अभाव में परस्पर सहेली बन गई थीं। परन्तु इतने ही में एक नौकर ने आकर कहा—गाना सिखानेवाले उस्ताद जी आये हैं।

दोनों बहनें गाना-बजाना सीखने चली गईं।

उसके दूसरे दिन मेना कालेज से लौटते समय एक कपड़े की दूकान से दो जोड़े सादी धोतियाँ ख़रीद लाई।

एना ने कार में पूछा—इन सादी धोतियों का क्या होगा दीदी?

मेना ने कहा—पुण्डरीकाक्ष बाबू की बुआ के पास भेज दूँगी। कल जो रुपये दिये हैं उनसे वह धोतियाँ ख़रीदेगी तो खायगी क्या?

एना हँसकर अपनी बहन की गोद में लिपट गई और बोली—तब तो उस भोले बाबू पर ही तुम्हारा अधिक आकर्षण दिखाई पड़ रहा है। उसका नाम क्या है दीदी, पुण्डरीकाक्ष अथवा पिण्डखजूर। काक्ष अथवा राक्षस। यरलवक्ष।

एना इसी प्रकार की ऊलजलूल बातें बकती हुई अपनी बहन की गोद में हँसती हुई लोट-पोट हो गई।

मेना उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—एना, तुझमें चिर-काल तक ऐसा ही लड़कपन बना रहे, तेरी अजस्र हँसी का कभी ह्रास न हो, तेरा प्रफुल्ल मन कभी म्लान न हो।

एना हँसी रोककर उठ बैठी और गम्भीर होकर बोली—तुमने इतनी गम्भीर होकर ब्राह्मसमाज के आचार्य की भाँति सर्मन देना प्रारम्भ कर दिया, पुरातन काल के ऋषि-मुनियों की तरह आशीर्वाद और वरदानों की झड़ी लगाने लगीं। दीदी, तुम्हारे कारण तो एक क्षण के लिए जी खोलकर हँसने का भी मौक़ा नहीं मिलता। बात-बात में तुम्हारे इतने गम्भीर हो जाने पर मेरे प्राण तो ऊबने लगते हैं भाई!

इसी प्रकार के आनन्द और आमोद-विनोद में दोनों बहनों के दिन बीतते। वे दोनों प्रत्येक महीने में एक दिन पुण्डरीकाक्ष के द्वार पर मोटर रोककर उसकी बुढ़िया बुआ को बिठा लातीं और रुपये और आश्वासन देकर उसके दुखों की कहानी सुनतीं तब उसे बिदा करतीं।

इसी प्रकार उन लोगों ने पुण्डरीकाक्ष की बुआ से बातें कर-करके उसके विषय की सारी बातें जान लीं।

पुण्डरीकाक्ष के विषय की बातें जानने के लिए एना के मन में भी कम आग्रह नहीं था। वह एकान्त मन से बुढ़िया की बातें सुनती और उस समय उसे हँसी भी न आती।

एक दिन पुण्डरीकाक्ष की बुआ के चले जाने पर एना ने मेना से कहा—दीदी, रवि बाबू ने कहा है कि साधारण मनुष्यों के बीच भी भीष्म और द्रोण जैसे वीर विद्यमान हैं। यह बात मिथ्या नहीं है। ये बम्भोलानाथ देखने में पागलों के-से हैं तो क्या हुआ, परन्तु इनमें भी त्याग और स्वेच्छा से कष्ट को अपनाने का वीरत्व मौजूद है!

मेना ने भी मुग्धभाव से कहा—प्रत्येक मनुष्य में महत्त्व निहित

है, उसके प्रकाशित होने का अवसर आने पर ही लोगों को उस महत्त्व का परिचय मिलता है। पुण्डरीकाक्ष बाबू केवल हम लोगों के लिए ही तो जेल भोग रहे हैं।

एना की चंचलता फिर जाग्रत् हो उठी। उसने हँसते-हँसते कहा—तुम्हारे लिए वह अपने प्राण दे सकता है दीदी, छः महीने जेल में रहना कौन-सी बड़ी बात है? देखती नहीं थीं नित्य मुंह बाये ताकता हुआ खड़ा रहता था। ऐसा लगता था मानो राहु चन्द्रमा के समीप पहुँचकर उसे निगल लेना चाहता है।

मेना ने हँसकर कहा—वह मुझे देखा करता था अथवा तुझे, यह तूने कैसे जाना?

एना ने कहा—उसकी आँखों की दृष्टि-रेखा देखकर जान गई थी, ठीक तुम्हारे मुँह पर आकर पड़ती थी।

मेना बोली—अच्छा वह लौट आये, उससे बात-चीत करके उसकी दृष्टि-रेखा को तेरी ओर ही बदलवा दूँगी। क्यों, तब तो तू संतुष्ट हो जायगी?

एना तुरन्त कह उठी—न न दीदी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मैं उस भोलानाथ से बात-चीत न कर सकूँगी, मेरा तो हँसत-हँसते इतना पेट फूल जायगा कि मैं मर ही जाऊँगी।

दोनों बहनें एक-दूसरे की ओर देखकर हँसने लगीं।

चौथे महीने एक दिन उनकी मोटर पुण्डरीकाक्ष के मकान के सामने मेना के आदेश से खड़ी हुई और शोफ़र भोंपू बजाने लगा।

आवाज़ सुनकर उसकी बुढ़िया बुआ तत्क्षण बाहर निकल आई और हँसमुख होकर मेना से बोली—बेटी, तुम लोगों की कृपा से आज मेरा पुण्डरीकाक्ष छोड़ दिया गया है, शायद जेलखाने में अधिक स्थान नहीं है, इसी लिए पुराने क़ैदियों को छोड़कर नये क़ैदियों के लिए जगह बनाई जा रही है। अब तुमसे मुझे कुछ लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। तुम लोग राजराजेश्वरी बनो बेटी, तुम्हारा सौभाग्य-

सिन्दूर अटल रहे, स्वामी और बाल-बच्चों के साथ सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक गृहस्थी का आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारी कृपा-करुणा की प्रत्येक बात मैंने पुण्डरीकाक्ष से बताई है। वह सुनकर बड़ा ख़ुश हुआ, बोला—उनमें दया क्यों न हो, वे देवी ही जो ठहरीं! वे साक्षात् लक्ष्मी, मूर्त्तिमती श्री और शरीरिणी वाणी हैं। पुण्डरीक इस समय मकान में नहीं है, नहीं तो वह स्वयं आकर तुमसे ये बातें कहता। जाने कितनी बार उसने मुझसे ये सब बातें कही हैं। सुनते-सुनते ये मुझे मुखाग्र हो गई हैं। परन्तु मैं मूर्ख उन सबका अर्थ क्या जानूँ? उच्चारण तक तो कर नहीं पाती।

पुण्डरीकाक्ष आकर कहीं देवीसूक्त का पाठ न शुरू कर दे इस डर के मारे मेना ने तुरन्त कहा—अच्छा, तो अब हम लोग चलें। कोई असुविधा अथवा आवश्यकता आ पड़े तो हमें बताइएगा।

एना-मेना की मोटर उनके मकान के फाटक के भीतर जा पहुँची। बुढ़िया के मुंह से वे तमाम संस्कृत के शब्द सुनकर मेना को भी हँसी आ रही थी। एना तो हँसती हुई बहन की गोद में लोट-पोट होकर बोली—दीदी, दीदी, तुमने देवी-वन्दना सुनी न। स्वयं लक्ष्मी, मूर्त्तिमती श्री, शरीरिणी वाणी! वाह रे भोलानाथ! तुममें कवित्व भी है, संस्कृत-स्तोत्र-पाठ भी कर लेते हो। तुम्हारा ऐसा गम्भीर स्वभाव है कि यह प्रशंसा सुनकर तुम्हारा अहंकार और अधिक बढ़ जायगा।

मेना हँसकर बोली—तेरी सभी बातों में प्रतिहिंसा है। यह वन्दना और स्तव क्या केवल मेरे लिए है; तेरा भी तो उसमें आधा भाग है।

एना ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—बिलकुल नहीं, ज़रा भी नहीं। यदि सजीव हँसी का फ़व्वारा कहता तो मैं अवश्य समझती कि यह केवल मेरे लिए कहा गया है। उन विशेषणों का प्रयोग मेरे लिए तो किसी प्रकार किया ही नहीं जा सकता।

मेना गाड़ी से उतरकर मकान में घुसती हुई बोली—जब भावों

का आतिशय्य होता है तब इस प्रकार के न जाने कितने निरर्थक प्रयोग हो जाते हैं री पगली। और शरीरिणी वाणी से तेरे अतिरिक्त मेरा परिचय तो मिलता ही नहीं। तेरी नाक से, मुंह से, सब कहीं से वाणी फूटी पड़ती है।

एना ने कहा—यह कैसा प्रयोग है, जानती हो, इसे फ़िगरेटिव स्पीच—रूपक कहते हैं। तुम विदुषी, विद्यावती हो न, इसी लिए तुम्हें शरीरिणी वाणी कहा है उसने।

मेना ने हँसकर कहा—बातों में तो मैं तुझसे जीत नहीं सकती। एक दिन पुण्डरीकाक्ष बाबू को बुलाकर इस बात की मीमांसा करके संदेह निवृत्त कर लिया जाय।

एना बोली—नहीं दीदी, मैं उस भोलानाथ के सामने निकल भी न सकूँगी। बड़ी-बड़ी आँखों से एकटक ताकता रह जाता है, मानो पूरा राक्षस है! नाम भी तो राक्षसों से मिलता-जुलता हुआ ही है—पुण्डरीकाक्ष, पिण्डभोजी राक्षस!

मेना ने कृत्रिम भर्त्सना के स्वर में कहा—छि: एना, भले आदमी के नाम को इस प्रकार विद्रूप करना उचित नहीं है।

एना वैसे ही विस्मय के स्वर में बोल उठी—ओहो, इतना दर्द है, नाम बिगाड़ना तक आप से सहा नहीं जाता! अच्छा, तब आज से अत्यन्त आदरपूर्वक कहूँगी—परम सम्मान्य श्रीमान् पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड महोदय।

मेना ने कृत्रिम क्रोध दिखाकर कहा—चल हट, तुझसे कोई नहीं जीत सकता!

उसके दूसरे ही दिन कालेज जाते समय मेना और एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपने मकान के दरवाजे पर वही धूसर वर्ण का छाता हाथ में लिये आफ़िस की पोशाक पहने हुए खड़ा राह देख रहा है। इस बार उसकी दृष्टि पहले की तरह अर्थहीन और भाव-शून्य नहीं थी, आज उसमें कुछ हँसी की झलक दिखाई पड़ रही थी और कृतज्ञता-पूर्ण आनन्द का भाव प्रकट हो रहा था।

पुण्डरीकाक्ष जेल से छूटते ही अपने जीवन के एकमात्र अवलम्ब नौकरी की ममता से दफ़्तर भागा गया था। यह जानने के लिए उसके मन में अवश्य आग्रह था कि उसकी नौकरी छूट गई अथवा अभी है। इसी लिए कल जिस समय मेना और एना का मोटर उसके मकान के सामने खड़ा हुआ था, उस समय वह मकान में नहीं था और इस प्रकार वह अपने जीवन का परम सुयोग शायद चिरकाल के लिए खो बैठा। कल यदि वह उस समय मकान में होता तो वह अपने मुँह से मेना के प्रति धन्यवाद और कृतज्ञता का भाव व्यक्त करता और उससे वार्तालाप करके अपने जीवन को धन्य और सार्थक बना लेता। पागल पुण्डरीक पारस पत्थर ढूँढ़ता फिरता था, परन्तु जिस समय वह पारस पत्थर उसके जीवन और मन को सुवर्णमय बना दे सकता था, उस परम मुहूर्त में वह अपने दफ़्तर के बड़े बाबू वैद्यनाथ की गाली-गलौज सुनकर साहब के श्रीमुख से सुन रहा था कि उसकी नौकरी का अन्त हो गया है। जो लोग कांग्रेस के दल के आदमी हैं, उन विद्रोहियों के लिए इस दफ़्तर में स्थान नहीं है। पुण्डरीक ने बहुत अनुनय-विनय करके अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की। उसका यह फल हुआ कि वह तुरन्त नौकरी से बरख़ास्त नहीं किया गया, बल्कि उसे एक महीने की नोटिस दे दी गई और जितने दिन वह काम करके जेल गया था, दयापूर्वक उसे उतने दिनों का वेतन भी दे दिया गया।

पुण्डरीकाक्ष सोच रहा था कि एक दिन वह राजाबहादुर से मिल-कर उनसे उनकी कन्याओं की कृपा-करुणा की बात बता आये और यदि सुयोग से स्वयं मेनादेवी के दर्शन का सौभाग्य उसे मिल जाय तो उन्हें भी वह अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके उनसे वार्तालाप करके अपने जीवन की साध पूरी कर आये। परन्तु दफ़्तर में जाकर जब उसने मालूम किया कि एक महीने के बाद उसकी नौकरी नहीं रह जायगी तब उसके मन से मेना से मिलने का संकल्प विलीन हो गया। उसने

सोचा कि यदि मैं ऐसे समय में राजाबहादुर अथवा मेनादेवी से मिलने जाऊँगा तो वे लोग सोचेंगे कि मैं अपनी दरिद्रता व्यक्त करने के लिए याचक के रूप में उनके द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ। शायद मेनादेवी सोचेंगी कि बेचारा हम लोगों को बचाते हुए जेल चला गया और नौकरी खो बैठा, अतएव उसे प्रतिमास कुछ सहायता दे दिया करूँ। यह बात मैं किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकूँगा। मैं अपने प्राणोपम स्नेह को अन्त में भला कहीं इस प्रकार बेच सकता हूँ? कदापि नहीं। यह सब सोच-समझकर उसने मेना के दर्शन अथवा उससे वार्तालाप करने की आशा और चेष्टा को बिलकुल त्याग दिया और पहले जिस प्रकार दूर से मेना को एक निमेष के लिए देखकर सुखी हो लेता था, उसी प्रकार अपने अभ्यास के अनुसार यथासमय अपने मकान के सामने खड़ा रहने लगा। किसी दिन वह मेना को देख पाता और किसी दिन न देख पाकर अपने हृदय में एक दीर्घ निश्वास दबाये हुए निरुत्साहित गति से दफ़्तर चला जाता। अब उसके जीवन में कोई उत्साह नहीं रह गया था। परन्तु तिस पर भी उसके मन के निभृत कोण मे एक क्षीण आशा बनी हुई थी कि यदि डर्बी की घुड़-दौड़ के रुपये मिल जायँ तो मेरे सारे अभाव क्षण भर में ही न जाने कहाँ विलीन हो जायँगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

दरिद्र का मनोरथ

पुण्डरीकाक्ष की नौकरी के केवल दस दिन बाक़ी थे। उस दिन सवेरे से ही आषाढ़ की झड़ी लगी थी। पुण्डरीकाक्ष उस वर्षा में अपना छाता लगाये अपने निश्चित स्थान पर खड़ा भीग रहा था। पड़ोस के एक व्यक्ति ने दफ़्तर जाते जाते उसे इस प्रकार खड़ा भीगता हुआ देखकर पूछा—क्यों पुण्डरीक बाबू, ऐसी वर्षा में क्यों खड़े हो?

पुण्डरीकाक्ष ने दाँत निकालकर अप्रतिभ हँसी से हँसते हुए कहा—यों ही एक आदमी की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ।

वर्षा ख़ूब जोरों से होने लगी। उसके सारे कपड़े भीग गये, तो भी वह पहरेदार सैनिक की तरह अपने पहरे के स्थान से हट नहीं सकता था। थोड़ी देर के बाद मेना का मोटर निकलकर चारों तरफ़ कीचड़ उछालता और भों भों करता हुआ चला गया। बाद को वह भी उस मोटर के पीछे-पीछे चलने लगा।

मोटर के पीछे की ओर की काँच की छोटी खिड़की से देखकर एना मेना से बोली—आहा, दीदी, तुम्हें एक बार देखने के लिए बेचारा इतने पानी और कीचड़ में खड़ा भीग रहा था, अब मोटर के पीछे-पीछे धीरे-धीरे चला आ रहा है। उसे देखकर हँसूँ अथवा रोऊँ, कुछ ठीक नहीं कर पा रही हूँ। सचमुच उसे देखकर मुझे बड़ी दया आती है। दीदी, या तो उससे अपना विवाह कर लो, और नहीं तो एक दिन उसे बुलाकर साफ़-साफ़ कह दो कि इस प्रकार की बक-वृत्ति त्याग दो।

मेना ने गम्भीर होकर कहा—तुझे यदि इतनी पीड़ा होती है तो तू ही एक दिन बुला भेज।

पुण्डरीकाक्ष पानी से सराबोर होकर दफ़्तर पहुँचा। वह अपने भीगे जूतों से पानी बहाकर और कोट के कोने निचोड़कर कुर्सी पर बैठना ही चाहता था, इतने में उसने देखा कि बड़े बाबू वैद्यनाथ उसकी तरफ़ आ रहे हैं। उसने तत्क्षण घड़ी की ओर दृष्टि फेरकर देखा कि उसे दफ़्तर पहुँचने में पन्द्रह मिनट का विलम्ब हो गया है। वह मन ही मन कहने लगा—वैद्यनाथ आकर बक-झक करना ही चाहता है। आने दो। अब किसे उसकी परवा है? नौकरी के कुल दस ही दिन तो बाक़ी रह गये हैं। आज मैं उसका मुँह बिगाड़ना नहीं सह सकूँगा। मैं भी अच्छी तरह सुनाऊँगा। दस दिन के पश्चात् तो उपवास करना ही पड़ेगा, कुछ दिन पहले से ही शुरू कर दूँगा। और क्या होगा?

वैद्यनाथ विश्वास की एक आँख अधिक भेंगी थी। वह ताकता दूसरी तरफ़ था और देखता दूसरी तरफ़ था। उसके शरीर का रङ्ग आबनूस के कुंदे को भी मात करता था। उसकी काले अलपाके की चपकन उसके शरीर के रंग की समता में हलके और फीके रङ्ग की जान पड़ती थी। उसके अधीनस्थ बाबू लोग कहते—दूर से यह जाना नहीं जा सकता कि वे महाशय आ रहे हैं अथवा जा रहे है; और कोई कपड़ा पहने हैं अथवा नङ्गे बदन आ रहे हैं, यह जानना तो एकदम सामर्थ्य से परे है। एकदम काला-कलूटा रूप देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो उसके शरीर में अलकतरा पोत दिया गया हो। इतना सब होते हुए भी उसका शरीर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण था, ऐसा लगता था कि किसी ने उसका सारा रस निचोड़ लिया है, केवल ढाँचा बच रहा है। वह कभी किसी बाबू से हँसकर बात नहीं करता था, मुँह बनाये बिना वह किसी से एक शब्द तक नहीं कह सकता था। कड़वी बातों को कर्कश बनाकर कहने की उसमें ईश्वरदत्त असाधारण

क्षमता थी। सब लोग शनि-दृष्टि की अपेक्षा भी उसकी दृष्टि से अधिक डरते थे।

ऐसी ओछी प्रकृति के बड़े बाबू को अपनी ही ओर आते देखकर पुण्डरीकाक्ष की बुद्धि जाती रही। जिस समय वैद्यनाथ कुछ दूर था, उस समय यद्यपि उसने अपने मन में यह साहस कर लिया था कि वह आज वैद्यनाथ की उपेक्षा कर जायगा। मरा हुआ व्यक्ति किसी से क्यों डरे? परन्तु अभ्यास ऐसी बुरी वस्तु है कि साधारणरूप से उससे पिण्ड नहीं छूट सकता। पुण्डरीकाक्ष अपने अब तक के अभ्यास के अनुसार ही वैद्यनाथ के भय से संत्रस्त होकर तुरन्त लेजर का कोई पन्ना उलटकर किसी विषय पर अपनी दृष्टि गड़ाकर इस प्रकार झुक गया, मानो वह हिसाब जाँचने में इतना ‌ त है कि वैद्यनाथ के शुभागमन तक का उसे पता नहीं लग सका। परन्तु वह मन ही मन सोच रहा था—'अद्य प्रातरेव अनिष्टदर्शनं जातम्, न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति।' भाग्य की रेखा भला कौन मेट सकता है, मेरे अदृष्ट में विधाता ने यह कष्ट भी लिखा था कि मरणकाल में भी उस व्यक्ति की बातें सुनकर मुझे जाना पड़ेगा। मधुसूदन, मधुसूदन! दैत्यनाथ को दूसरी ओर खींच ले जाओ भगवन्!

वैद्यनाथ धीरे-धीरे पुण्डरीकाक्ष के पीछे आकर खड़ा हो गया और बोला—कहो पुण्डरीक बाबू, नमस्कार।

पुण्डरीक चौंक पड़ा। आज उसे वैद्यनाथ की बातें दैत्यनाथ की बातों की तरह कर्कश नहीं सुनाई पड़ीं। पुण्डरीकाक्ष चकित होकर दोनों आँखें फैलाकर पीछे फिरकर वैद्यनाथ की ओर ताककर अवाक् रह गया। वैद्यनाथ खड़ा हँस रहा था। यह कैसा अद्भुत व्यापार है! ऐसा तो न कभी भूतो न भविष्यति। बड़े बाबू साधारण क्लर्क से हँसकर बातें कर रहे हैं, वह भी ऐसे मृदुल स्वर में!

पुण्डरीकाक्ष विस्मय और भय से अभिभूत होकर तुरन्त कुर्सी छोड़कर आदरपूर्वक खड़ा होगया।

वैद्यनाथ ने कहा--बैठिए, बैठिए पुण्डरीक बाबू, मैं आपके पास ही बैठता हूँ।

आज तो आप बड़ी जल्दी दफ़्तर आ गये। पुण्डरीकाक्ष ने तिरछी निगाह करके तुरन्त ही घड़ी की ओर देखा, उस समय सवा दस बज चुके थे। आज के पहले यदि कोई इतने विलम्ब से दफ़्तर पहुँचता तो उसकी नौकरी के लेने के देने पड़ जाते! और आज तो ये महाशय कह रहे हैं कि आप बड़ी जल्दी दफ़्तर आ गये! पुण्डरीक का मुँह सूखकर एकदम पीला पड़ गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि वैद्यनाथ उसके विलम्ब से आने के कारण व्यङ्ग्य करके उसका तिरस्कार कर रहा है। वह कुछ स्थिर न कर पाने के कारण किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह वैद्यनाथ के मुँह की ओर भयार्त दृष्टि से देखकर सिमटा हुआ खड़ा रहा।

वैद्यनाथ ने पुण्डरीकाक्ष के बैठने की कुर्सी के समीप और एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठते हुए कहा--बैठिए, आप भी बैठिए, पुण्डरीक बाबू, आप खड़े क्यों हैं?

पुण्डरीकाक्ष वैसा ही सिमटा हुआ खड़ा रहा। वह समझ नहीं पा रहा था कि मामला क्या है? दैत्यनाथ कभी अपने सामने किसी साधारण क्लर्क से मृदुल स्वर से बैठने का अनुरोध कर सकता है, इस बात की वह कल्पना तक नहीं कर पा रहा था। इस दफ़्तर में आने के दिन से आज तक पुण्डरीकाक्ष ने उसके सामने कभी किसी बाबू को बैठा हुआ नहीं देखा था। सब कोई एक किनारे खड़े होकर उसकी आज्ञायें और बातें सुनते थे। वैद्यनाथ को कभी किसी बाबू की मेज़ पर आकर बैठते हुए भी उसने नहीं देखा था। वह किसी भले आदमी से बैठने को नहीं कहता था और न किसी भले आदमी के अपने समीप आने पर वह उठकर खड़ा ही होता था।

वैद्यनाथ ने कहा--पुण्डरीक बाबू, देख रहा हूँ, आपके कपड़े एकदम भीग गये हैं। वर्षा के ज़रा कुछ रुक जाने पर आप आ सकते थे।

पुण्डरीकाक्ष को अब अपनी इन्द्रियों पर भी विश्वास नहीं हो रहा था। वे सब अपना काम ठीक-ठीक कर रही हैं अथवा नही, इस विषय में उसे सन्देह होने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा कि वह सपना देख रहा है, उसका मस्तिष्क विकृत हो रहा है। दिमाग़ ख़राब होने में आश्चर्य की बात भी नहीं थी। रोटियों की चिन्ता बड़ी बुरी होती है। नौकरी छूटने की फ़िक्र में पिछले एक महीने से ही उसका दिमाग़ ठीक नहीं था। यदि ऐसी बात नहीं है तो उसे जान पड़ा, मानो यह सुनाई पड़ रहा है कि वैद्यनाथ कह रहा है--जब ज़रा ज़रा वर्षा होते देखा था तभी आप आ सकते थे। अन्त में क्या नौकरी की चिन्ता से उसे उन्माद हो गया ?

पुण्डरीकाक्ष को निर्वाक् खड़ा देखकर वैद्यनाथ ने पूछा--पुण्डरीक बाबू, आपकी डर्बी का क्या हाल है ?

पुण्डरीक अब प्रकृतिस्थ हुआ। उसने सोचा, नहीं इसका मतलब यह है कि वैद्यनाथ मुझसे मीठी बातें कदापि नहीं कर रहा है, बल्कि व्यङ्ग्य करने के ही लिए आया है।

पुण्डरीकाक्ष को इस समय भी चुपचाप खड़ा देखकर वैद्यनाथ ने दुबारा पूछा--आपको डर्बी का कोई संवाद मिला ?

पुण्डरीकाक्ष ने इस बार लज्जित होकर और सकुचाकर अपना माथा नीचा कर लिया और कुण्ठित स्वर से बोला--ये सब पागलपन की बातें छेड़कर आप मुझे व्यर्थ क्यों लज्जित करते हैं ? वह मेरी निरी मूर्खता है यह क्या मैं नही जानता ? तिस पर भी दरिद्रता के कष्ट को भुला देने के लिए यह मेरा एक आशा का नशा है। दुख भुलाने के लिए लोग शराब पीते हैं, गाँजा पीते है और न जाने कितने दुष्कर्म करते हैं। मैं अपने इस डर्बी के नशे से ही दुख-दरिद्रता की बिभीषिका को भूले रहने की चेष्टा करता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की बात सुनकर वैद्यनाथ के मन में भी कुछ करुणा उत्पन्न हुई। उसने अपना कण्ठस्वर यथासम्भव कोमल करने की

चेष्टा करते हुए कहा——अच्छा, यही बताइए कि यदि आपको ऐसा एक टिकट मिल जाय जिससे आपको एक लाख रुपये मिलना निश्चित हो जाय तो आप उनका क्या करेंगे? यह बात जानने की मेरी बड़ी इच्छा है, इसी लिए पूछ रहा हूँ।

जो वैद्यनाथ किसी बाबू को बातें करते अथवा बाहर जाते देख लेता तो बड़े ज़ोरों से बिगड़ता हुआ पहुँचता था, वही आज अपने मन से आकर गप लड़ा रहा है और दफ़्तर के काम का कितना नुक़सान हो रहा है इसकी उसे रत्ती भर भी परवा नहीं है, यह देखकर पुण्डरीकाक्ष को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। वैद्यनाथ के अनुरोध से अत्यन्त लज्जित और अप्रतिभ होकर उसने कहा——देखिए बड़े बाबू, जो पक्के नशेबाज़ होते हैं उनके सामने भी उनके नशे की बात उठाने पर उन्हें लज्जा आती है। आप दयापूर्वक मुझे अधिक शर्मिन्दा न कीजिए।

वैद्यनाथ ने कहा——नहीं, मैं आपसे तमाशा अथवा हँसी नही कर रहा हूँ। आज हम सब लोगों के टिकट के नम्बर साहब के पास आये हैं। यह सुनते ही मैं साहब के पास सबके टिकटों के नम्बर देखने की इच्छा से पहुँचा था। आपके टिकट का क्या नम्बर है, जानते हैं? कितना सुन्दर राउण्ड नम्बर है——दस हज़ार! दस हज़ार! यह एक बढ़िया 'लकी' नम्बर है! क्यों, आप क्या यह समझ नहीं पा रहे हैं? मेरा मन तो पुकार-पुकार कर कह रहा है कि आप इस बार एक प्राइज़ फ़र्स्ट अथवा सेकेण्ड, अवश्य पायेंगे। इतनी ही बात नहीं है कि यह नम्बर लकी है। मैं यह बात बिलकुल नहीं जानता था कि आज हम लोगों के नम्बर आयेंगे। तिस पर भी कल रात को मैंने सपने में क्या देखा, आप जानते हैं? मैंने देखा कि आपके नाम के टिकटवाले घोड़े ने ही बाज़ी जीती है और आप कई लाख रुपये पा गये हैं। आपने अपने मकान के स्थान पर सङ्गमरमर का महल बनवा लिया है और उसमें हम सबको बड़े समारोह के साथ भोज दे

रहे हैं। दफ़्तर में आते ही मैंने सुना कि टिकटों के नम्बर आ गये हैं। इन सब योगों को क्या आप निरर्थक समझते हैं? मैं तो इनमें एक गम्भीर अर्थपूर्ण इङ्गित देख रहा हूँ। आपके भाग्यविधाता आपको भविष्य का स्पष्ट आभास करा रहे हैं। आपके टिकट का नम्बर दस हज़ार है—समूचे मुक्ता के समान एक राउण्ड फ़ीगर। न एक नम्बर कम है, न अधिक—पूरे दस हज़ार। यह नम्बर देखते ही मुझे अपने सपने की बात याद आ गई और ऐसा जान पड़ा कि इस बार भाग्य खुल गये। सपना, टिकट, दस हज़ार नम्बर, इन तीनों में क्या आपको कार्य-कारण का एक सम्बन्ध और एक शुभ इङ्गित नहीं जान पड़ता? इस बार आपके भाग्य और दैव आप पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये हैं। इसी लिए मैं पूछ रहा हूँ कि यदि आप सचमुच कई लाख रुपये पा जायँ तो उन रुपयों का आप क्या करेंगे?

वैद्यनाथ की बात सुनकर पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो उठा था। फिर भी उसने अप्रतिभ भाव और कुण्ठित स्वर से कहा—मैं अपनी उन सब पागलपन की बातों और हवा में पुल बाँधने की कल्पना को स्पष्ट रूप से समझ कर स्वयं लज्जित हूँ। आप मुझे और अधिक लज्जित क्यों करते हैं? मुझे क्षमा कीजिए, मैं इस सम्बन्ध में कभी कोई बात नहीं सोचता। क्योंकि न नौ मन तेल इकट्ठा होगा, न राधा नाचेंगी। न मैं रुपये पाऊँगा, न उनके उपयोग की बात ही सोचता हूँ।

वैद्यनाथ पुण्डरीक के पीछे पड़ गया; उसने दुबारा उससे कहा—आप मुझे पराया क्यों समझते हैं? मैं सदैव आपका मित्र रहा हूँ। किस बात से आपका हित होगा, किस बात से आपकी उन्नति होगी, किस बात से आप पर साहब प्रसन्न होंगे, मैं बराबर यही चेष्टा करता रहा हूँ। तिस पर भी मेरा स्वभाव ऐसा नहीं है कि मेरे द्वारा किसी का भला होता हो तो मैं यह बात उसे अपनी बातों अथवा व्यवहार से व्यक्त करता फिरूँ। मैं किसी का कोई हित करता हूँ तो उस सम्बन्ध में उसे कुछ बताते हुए मुझे खुद ही शर्म लगती है। आपकी नौकरी

तो जा ही चुकी थी। साहब का कहना है कि जो व्यक्ति ला और आर्डर को डिफ़ाई करके जेल गया हो उसे तुरन्त डिसमिस कर दो। मैंने उससे बहुत कहा-सुना तब वह आपको एक महीने की नोटिस पर रखने को राज़ी हुआ। उसके बाद जब आज आपके टिकट के नम्बर की बात उठी तब सुयोग पाकर उसी प्रसङ्ग में मैंने साहब से कहा कि आपके समान आनेस्ट और एफ़िशिएण्ट क्लर्क दफ़्तर में बहुत कम हैं। तब साहब ने आपका काम देखना चाहा। मैंने आपके हाथ का सब काम ले जाकर उसे दिखाया और उसकी ख़ूबी समझाई, इससे साहब ने आप पर सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा है कि मैं आपके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की ओर दृष्टि रक्खूँ। आप केवल एक अण्डर्टेकिंग दे दें कि भविष्य में कभी आप विद्रोहियों के दल में योग न देंगे। इसके बाद पहला अवसर आते ही मैं आपके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की व्यवस्था कर दूँगा। यह आप निश्चित समझिए।

पुण्डरीकाक्ष अवाक् रह गया। यह हो क्या गया? दस दिन के बाद तो नौकरी छूटने की बात थी और आज अकस्मात् उसके प्रोमोशन और वेतन-वृद्धि की बात सुनाई पड़ रही है और उसे आशा दी जा रही है। और यह बात सुनाकर आशा बँधा रहा है स्वयं वैद्यनाथ विश्वास, जिसका नाम दफ़्तर के सब लोगों ने दैत्यनाथ अविश्वास रख दिया है। उसी दैत्यनाथ ने आकर अपनी ओर से यह आशा दिलाई है। और साहब की भी यही सम्मति है। पुण्डरीकाक्ष यह स्थिर नहीं कर पा रहा था कि किस पुण्यफल से उसका यह भाग्योदय हुआ है। वह मन-ही-मन सोचने लगा—यह भी शायद मेनादेवी की कृपा और करुणा का ही फल है।

पुण्डरीकाक्ष को निरुत्तर देखकर वैद्यनाथ ने उससे फिर कहना प्रारम्भ किया—देखिए, हमारे राजेन्द्र बाबू इसी जुलाई के महीने में रिटायर हो रहे हैं। यदि उनका स्थान आप पसन्द करें तो आज ही उस स्थान के लिए मैं आपको नियुक्तिपत्र दे दूँ। इस प्रकार

आपका वेतन प्रायः दूना हो जायगा। इतने पर यदि आप डर्बी की लाटरी जीतकर बहुत-सा रुपया पा जायँ तो उन रुपयों का क्या करेंगे, यही मैं जानना चाहता हूँ। क्यों ? आप मुझे बता दीजिएगा न ?

पुण्डरीकाक्ष अकस्मात् आशातीत लाभ की सम्भावना से आनन्द के मारे फूला न समाया। कहाँ तो उसकी नौकरी जाने की बात थी और कहाँ वह अपने से दूने वेतन की नौकरी पा रहा है। यदि यह बात सच्ची हो तो फिर डर्बी के टिकट के रुपये मिलें चाहे न मिलें। परन्तु वैद्यनाथ ऐसे मृदुल स्वर से उसके पा जाने की आशा के सम्बन्ध में बातें कर रहा था कि पुण्डरीकाक्ष को इस बात के सत्य होने में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश ही नहीं दिखाई पड़ रही थी। इसी लिए उसने बार-बार वैद्यनाथ का अनुरोध सुनकर थोड़ी देर चुप रहने के बाद सङ्कोच के साथ कहना प्रारम्भ किया—देखिए बड़े बाबू, आपकी आज्ञा है, अतएव मैं उसे अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु मेरे पागलपन की बातें सुनकर दयापूर्वक हँसिएगा नहीं। मेरे इस पागलपन में एक विषम दुःख छिपा हुआ है।

वैद्यनाथ ने व्यस्त होकर कहा—नहीं, नहीं, आप मुझे अपना अभिन्न मित्र ही समझें। आपके सुख-दुःख की बातों की मैं हँसी थोड़े ही उड़ा सकता हूँ ? आप स्वच्छन्द होकर मुझसे अपने मन की बात खोलकर कह दें। मैं आपके लाभ के लिए ही आपके मन की कल्पनाओं को जानना चाहता हूँ।

वैद्यनाथ की बातें सुनकर पुण्डरीकाक्ष का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। उसने मस्तक नीचा करके थोड़ी लज्जा और सङ्कोच के साथ अपनी दरिद्रता की दुराशाओं को कहना प्रारम्भ किया:—मैं यदि आपके अनुग्रह से अच्छी नौकरी पा जाऊँ तो सबसे पहले अपने इन फटे कपड़ों, जूतों और छाते को बदल दूँ और हो सके तो एक बरसाती वाटरप्रूफ़ कोट ख़रीद लूँ।

बेचारा आज अभी-अभी भीगता हुआ दफ़्तर पहुँचा था,

इसी लिए उसका मन एक नया छाता और बरसाती खरीदने को चल पड़ा।

वैद्यनाथ ने उसे उत्साहित करके कहा—यह तो आपकी अत्यन्त सामान्य अभिलाषा है, इसे तो आप सरलतापूर्वक ही पूरी कर सकेंगे। परन्तु यदि हठात् नौकरी की अपेक्षा भी बहुत बड़ा लाभ हो जाय तो आप क्या कीजिएगा, यही सुनने के लिए मैं इतना आग्रह कर रहा हूँ।

अपनी आकांक्षाओं को बताना प्रारम्भ करने के लिए पुण्डरीकाक्ष के मन में कुछ साहस उत्पन्न हो आया था। वह कहने लगा:—यदि मैं लाख-दो लाख रुपये पा जाऊँ तो अपने पिता के बनवाये मकान को रेहन से छुड़ा लूँ और उसकी मरम्मत करवाऊँ। एक चहारदीवारी से उसे घिरवा लूँ। और........ और..... एक मोटरकार खरीदूँ...... ।

प्रतिदिन मैना के मोटर को अपने सामने से जाते हुए देखकर पुण्डरीकाक्ष के मन में आता था कि मेरे पास एक मोटर होता तो मैं भी मैना के मोटर के पीछे-पीछे अथवा बगल में उसके साथ-साथ ही चल सकता। मैना का अनुसरण करने के लोभ के कारण ही मोटर खरीदने की इच्छा प्रबल होकर उसके मन में छिपी थी। इस समय पहले-पहल उस इच्छा के मुँह से निकल पड़ने के कारण वह लज्जित होकर वाक्य समाप्त करने के पहले ही चुप हो गया।

पुण्डरीकाक्ष को चुप होते देखकर वैद्यनाथ ने कहा—बस इतना ही! यह तो अत्यन्त साधारण इच्छा है। इसे तो आप चाहें तो कल ही पूरी कर सकते हैं। आपकी इच्छा भर होनी चाहिए।

पुण्डरीकाक्ष अवाक् रह गया! वैद्यनाथ यह कह क्या रहा है? इच्छा होते ही मेरे इस पागलपन की दुराशा का स्वप्न पूरा हो सकता है!

पुण्डरीकाक्ष को अवाक् होकर अपनी ओर ताकते हुए देखकर

वैद्यनाथ ने कहा---आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है! आप समझते हैं कि मैं आपकी हँसी कर रहा हूँ। लेकिन यह बात नहीं है। वास्तव में आपके नाम डर्बी का जो टिकट निकला है उसे यदि आप अभी बेंच डालें तो आपको इसी क्षण चार लाख रुपये मिल सकते हैं। सोच लीजिए, यदि आप टिकट बेंच डालने को प्रस्तुत हों तो मैं अभी आपको चार लाख रुपये का चेक लाकर दे सकता हूँ ...।

वैद्यनाथ ने कुछ देर रुककर फिर कहना प्रारम्भ किया---वह चेक ऐसे-वैसे आदमी का दस्तखत किया हुआ न होगा, खुद मेसर्स बेग बर्ड एण्ड स्टील कंपनी के बड़े साहब का दस्तखती चेक....................।'

पुण्डरीकाक्ष एकदम निर्वाक् होकर विस्फारित नेत्रों से वैद्यनाथ के मुँह की ओर ताक कर रह गया, मानो उसकी चेतना नष्ट होती जा रही थी।

पुण्डरीकाक्ष अभी तक खड़ा ही था। बड़े बाबू के सामने वह कुर्सी पर कैसे बैठ सकता था? वैद्यनाथ की बातें सुनते-सुनते उसे ऐसा लगने लगा मानो उसके शरीर के निम्न भाग से उसके दोनों पैर लुप्त कर दिये गये हों, उसके पैरों के नीचे से किसी ने पृथ्वी को एकदम हटा दिया हो। वह धीरे-धीरे झुककर जमीन पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया।

उसे गिरते देखकर वैद्यनाथ तुरन्त उठ खड़ा हुआ और नजदीक के दूसरे बाबुओं को बुलाकर उसे पकड़वाकर एक टेबुल पर लिटा दिया और चपरासियों से तुरन्त पानी और बर्फ़ मँगवाया। पानी, पङ्खा और बर्फ़ आ गया। कुछ देर शुश्रूषा करने पर पुण्डरीकाक्ष सचेत हो उठा और आँखें खोलकर ताकने लगा। परन्तु उसकी चेष्टा-विहीन आँखें उस समय बड़ी भयावह और रक्तिम दिखाई पड़ने लगीं।

वैद्यनाथ पुण्डरीकाक्ष से बोला---और थोड़ा-सा विश्राम कर लीजिए, इस समय उठने की चेष्टा न कीजिएगा। मैं आपके समीप ही बैठा हूँ।

दफ़्तर के सभी बाबुओं को बड़ा कौतूहल हो रहा था कि वैद्यनाथ पुण्डरीकाक्ष से फुस-फुस करता हुआ कौन-सी बाते कर रहा है और वह मूर्च्छित क्यों हो गया ? वे सब लोग अनुमान कर रहे थे कि वैद्यनाथ ने अवश्य पुण्डरीकाक्ष से कुछ कहकर उसके हृदय में आघात पहुँचाया है। नहीं तो उसे मूर्च्छा कैसे आजाती ? शायद उसे आज ही नौकरी से बर्खास्त कर दिया है ! दस दिन के बाद तो उसकी नौकरी ख़त्म होने को थी ही। परन्तु शायद आज ही सरकार से कड़ी आज्ञा मिली है कि सिविल डिसओबीडिएन्स के अपराध में सजा पाये हुए व्यक्ति नौकरी पर एक क्षण भी न रक्खे जायँ। कोई सन्देह कर रहा था कि पुण्डरीकाक्ष शायद दुबारा जेल भेजा जायगा अथवा आर्डिनेन्स के अनुसार उसकी गिरफ़्तारी का वारण्ट आया है। ऐसा ही कोई संवाद पाकर बेचारे का मस्तिष्क चकरा गया होगा। नौकरी खोकर बेकार बैठे रहने की अपेक्षा आर्डिनेन्स का क़ैदी होना हज़ारगुना अच्छा है। एलाउन्स कम हो जाने पर भी अभी एक रुपया रोज़ मिलता है, उसमें जेलखाने के लोगों के कुछ ले-लिवा लेने पर भी आठ-दस आने रोज़ मिल ही जाते हैं। हम लोगों के ख़ून-पसीना एक करके क्लर्की-द्वारा उपार्जित आय से यह कौन बुरा है ? बाबुओं का कौतूहल बहुत बढ़ गया था, परन्तु दैत्यनाथ के वहाँ उपस्थित होने के कारण उन लोगों को अपने मन की उत्सुकता मन में ही छिपाकर रह जाना पड़ा।

थोड़ी देर के बाद ही पुण्डरीकाक्ष टेबुल पर उठकर बैठ गया।

वैद्यनाथ ने पूछा—अब कैसा लग रहा है ?

पुण्डरीकाक्ष बोला—अब अच्छा हूँ। आप दयापूर्वक मुझे सब बातें समझाकर बताइए। मेरा मस्तिष्क चेतना-विहीन क्यों हो गया था ?

वैद्यनाथ ने कहना प्रारम्भ किया—सो तो हो ही जाना चाहिए था, हठात् मन पर हर्ष अथवा विषाद का धक्का लगने से सारी चेतना नष्ट हो जाती है। इसी लिए मैंने धीरे-धीरे इतना घुमा-फिराकर आपके आकस्मिक लाभ की चर्चा चलाई थी। मैंने पहले आपकी नौकरी

बहाल करने की सम्भावना बताकर आपका मन प्रफुल्लित कर लिया, उसके बाद अधिक वेतन की नौकरी पाने की बात बताकर आपको कुछ और अधिक प्रसन्न कर लिया, और तब डर्बी के टिकट में आपका जो नम्बर आया है वह आपके भाग्योदय की सूचना देता है, यह बताकर आपको आशान्वित कर लिया, उसके बाद अन्त मे उस टिकट के बेच डालने पर आपको हाथों ही हाथ चार लाख रुपये पा जाने की बात बताई। क्यों, मैंने यह अच्छा किया न? पहले ही सहसा लाभ की बात बता देने पर या तो आप पागल हो जाते, या हार्ट फ़ेल हो जाने के कारण शायद आपकी मृत्यु हो जाती। ऐसा अनेक व्यक्तियों को हो चुका है।

पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त क्षीण स्वर से बोला—आप सदा मुझ पर ऐसी ही कृपा करते आये हैं। बड़े साहब मेरा टिकट क्यों ख़रीदना चाहते हैं? वे भी तो प्रतिवर्ष बहुतेरे टिकट ख़रीदा करते हैं?

वैद्यनाथ कहने लगा—आज साहब के पास ख़बर आई है कि आपके टिकट के नम्बर में एक बड़ा अच्छा घोड़ा आया है। उसका नाम सिलवर बुलेट है। अधिक सम्भव है कि वह फ़र्स्ट अथवा सेकेण्ड आयेगा। यह भी सम्भव है कि वह न भी जीते। यह सब तो चान्स की बात है। कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। यह भी हो सकता है कि वह घोड़ा दौड़ ही न सके अथवा कोई प्लेस न पा सके। परन्तु यदि वह जीत गया तो आप दस-बारह लाख रुपये पा सकते हैं और यदि न जीता अथवा न दौड़ा तो सब मृग-मरीचिका हो जायगा। अतएव आप मेरी सलाह मानें तो मैं कहूँगा कि यह दाँव किसी प्रकार न चूकिए। चार लाख रुपये! 'चार ही लाख सही। ये चार लाख रुपये भी तो आप मुफ़्त ही पाये जा रहे हैं। लोग कहते हैं—शस्यञ्च गृहमागतम्—पड़े मिल जायँ तो चौदह आने ही भले हैं!

वैद्यनाथ ने अब जाने का उपक्रम करते हुए कहा—आज तो आप दफ़्तर का कोई काम कर नहीं सकेंगे। आज आपको छुट्टी है,

आप घर जाइए। घर जाकर अपने बन्धु-बान्धवों से अच्छी तरह सलाह-मशविरा करके कल आकर मुझे अपने निश्चय की सूचना दीजिएगा। आप खूब सोच-विचार कर अपना मत स्थिर कर लीजिए। फिर भी यदि आप मेरा परामर्श मानें तो मेरा कहना है कि उस टिकट को बेच डालना ही उत्तम है। आप समझे न ?

यह कहकर वैद्यनाथ चला गया।

पुण्डरीकाक्ष के आस-पास के बाबू अधीर हो उठे थे। वे वैद्यनाथ के चले जाने की प्रतीक्षा में छटपटा रहे थे। उसे जाता देखकर वे लोग चञ्चल हो उठे और उसके आँख की ओट होते ही सब लोगों ने आकर पुण्डरीकाक्ष को घेर लिया और प्रश्नों की झड़ी लगाना प्रारम्भ कर दिया।

पुण्डरीकाक्ष शून्य दृष्टि से एक ओर ताकता हुआ जिस प्रकार बैठा था, वैसा ही बैठा रहा। वह किसी की किसी बात का उत्तर न दे सका।

सब लोगों ने अपने मन में समझा कि पुण्डरीकाक्ष पर कोई दारुण विपत्ति आ गई है, इसी लिए वह हतप्रभ हो गया है, उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है।

पुण्डरीकाक्ष उस समय बैठा हुआ सोच रहा था। उसके मन में नाना प्रकार की चिन्ताओं की उत्ताल तरङ्गें उठ रही थीं। ऐसे समय में उसे उन सब लोगों की बातों पर ध्यान देने का अवकाश अथवा क्षमता नहीं थी।

वह सोच रहा था—मेरे भाग्य में क्या यह भी कभी सम्भव है कि अकस्मात् इच्छा होते ही चार लाख रुपये हाथ में आ जायँ। वैद्यनाथ शायद मेरा उपहास कर रहा था। परन्तु वह तो बार-बार कह रहा था कि मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ। तो फिर मैं अपनी जिह्वा से एक शब्द निकालते ही इसी क्षण अपनी मुट्ठी में चार लाख रुपये का चेक पा जाऊँगा! और मैं इसी क्षण इम्पीरियल बैंक जाकर उस चेक

को कैश करके नक़द चार लाख रुपये सन्दूक़ों में भर कर अथवा मोटर-लारी में लादकर अपने घर ले जा सकूँगा या मार्ग में उन्हे लुटाता हुआ जा सकता हूँ। और यदि मैं अपना टिकट अभी न बेचूँ तो या तो दस-बारह लाख पा सकता हूँ अथवा यह आशा मिट्टी में भी मिल जा सकती है। तब तो समूलेन विनश्यति का प्रश्न उपस्थित हो जायगा! और यदि मैं अधिक रुपये ही पा जाऊँ तो भी उसके लिए मुझे दो-तीन महीने आशा लगाये बैठा रहना पड़ेगा। इतने दिनों राह देखते-देखते यदि मेना का और कही विवाह हो गया तो मैं उन रुपयों को लेकर क्या भाड़ मे झोकूँगा अथवा उनसे अपनी चिता का स्मारक बनवाऊँगा? इस समय हाथ में रुपये आ जाने पर विवाह आदि की चेष्टा करके देख सकता हूँ।

यह बात मन मे आते ही पुण्डरीकाक्ष का सङ्कल्प दृढ़ हो गया। वह कुर्सी छोड़कर सीधा बड़े बाबू के कमरे में जा पहुँचा।

दफ़्तर के सभी लोग आश्चर्य से उसका यह तमाशा देखने लगे और उसके सम्बन्ध मे सैकड़ों क़िस्म की बातें सोचने लगे।

पुण्डरीकाक्ष को देखते ही वैद्यनाथ बाबू आदरपूर्वक कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए और नमस्कार करके बोले---आइए आइए, कहिए, क्या आज्ञा है पुण्डरीक बाबू? आपका प्रफुल्ल और दृढ़ मुखमण्डल देखकर मैं समझ रहा हूँ कि आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। क्यों, है न यही बात?

पुण्डरीकाक्ष ने रात की नींद में परेशान व्यक्ति की तरह अचेत अवस्था में कहा---क्या कहा आपने---जी हाँ।

वह अधिक देर तक खड़ा न रह सका, एक कुर्सी पर धम्म से बैठ गया। वैद्यनाथ के कमरे में आज ही पहले-पहल वह कुर्सी पर बैठा था।

वैद्यनाथ ने उल्लसित होकर कहा---यही तो बुद्धिमानों की-सी बात है। अँगरेज़ी में एक कहावत है---वन बर्ड इन हैण्ड इज़ वर्थ टू

इन दि बुश ! अर्थात् हाथ में आया हुआ एक पैसा उन दो पैसों की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी है, जिनके लिए आशा लगाये बैठा रहना पड़े।

पुण्डरीकाक्ष पागलों की तरह स्तम्भित होकर चुपचाप कुर्सी पर बैठा रहा, उसके मुँह से कोई बात न निकल सकी।

वैद्यनाथ ने पुण्डरीकाक्ष के मुँह की ओर एक क्षण ताककर कहा—तो आइए पुण्डरीक बाबू, साहब के समीप चलिए और चेक ले आइये। चलिए—

वैद्यनाथ के अग्रसर होते ही पुण्डरीकाक्ष भी उसके पीछे-पीछे मशीन के द्वारा ढकेली जानेवाली किसी जड़ वस्तु के समान चला। वैद्यनाथ ने आगे बढ़ते हुए कहा—आइए। पुण्डरीकाक्ष हिपनोटाइज़्ड (सम्मोहित) व्यक्ति की तरह वैद्यनाथ के पीछे-पीछे चलता गया। वह कहाँ और क्यों जा रहा है, इस सम्बन्ध में मानो उसे कोई ज्ञान नहीं था।

वैद्यनाथ के पीछे-पीछे पुण्डरीकाक्ष को कमरे में प्रवेश करते देखकर साहब तुरन्त कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और उसकी ओर हाथ बढ़ाता हुआ बोला—हलो मिस्टर पूटिटुण्डा, माई हार्टिएस्ट कांग्रेचुलेशन्स टु इयू ! वेरी गुड लक !

उस समय पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड का सिर चकरा रहा था, उसे अपनी आँखों के सामने अँधेरा दिखाई पड़ रहा था। अभी तक उसे रुपये मिले नहीं थे, मिलेंगे अथवा नहीं यह भी निश्चित नहीं था। रुपये पाने की सम्भावना भर हुई थी। इसी लिए मेसर्स वेगबरो एण्ड स्टील कंपनी के बड़े साहब ने खुद उठकर उससे हाथ मिलाकर नमस्कार किया ! तब रुपये मिल जाने पर क्या मेना का हाथ अपने हाथ में पा लेना उसके लिए एकदम दुर्लभ होगा ?

पुण्डरीकाक्ष साहब से कोई बात न कह सका। उसकी ओर से सब बातें वैद्यनाथ ने कीं।

वैद्यनाथ से जब साहब ने सुना कि पुण्डरीकाक्ष अपना टिकट बेच डालने को प्रस्तुत हो गया है तब उसने कहा—मैं यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ मिस्टर पूटिटुण्डा ! आप बड़ी बुद्धिमानी का काम कर रहे हैं। मैं सोच रहा हूँ कि जब आप इतने सहज में अपना टिकट बेच डालने को तैयार हो गये हैं तब आपको कुछ और देना चाहिए। मैं समझ रहा था कि आपसे बहुत मोल-भाव करना पड़ेगा, इसी लिए मैंने मिस्टर विश्वास से कुछ कम करके टिकट का मूल्य बताने के लिए कहा था। मैं आपको पूरे पाँच लाख रुपये दे सकता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द से और अधिक विह्वल हो उठा। उसे गिरता देखकर वैद्यनाथ ने तुरन्त उसे सँभालकर एक कुर्सी पर बिठा दिया।

थोड़ी देर के बाद पुण्डरीकाक्ष ने धीमी आवाज़ से कहा—आप मे अन्नदाता हैं। मुझ पर यदि आप न कृपा कीजिएगा तो और कौन करेगा ?

साहब बोला—ऐसी स्थिति में टिकट बेचने की लिखा-पढ़ी करने के लिए हम लोगों को एक बार अपने एटर्नी के मकान में जाना होगा। चलिए मिस्टर विश्वास, आपको मेरी ओर से अपनी गवाही देनी होगी और मिस्टर पूटिटुण्डा, आप यदि किसी को गवाह बनाना चाहें तो उसे भी ले चल सकते हैं।

पुण्डरीकाक्ष ने अत्यन्त दीन-कातर भाव से कहा—मेरे गवाह आदि सब कुछ हुज़ूर ही हैं। आपकी कृपा से ही मेरा यह भाग्य-परिवर्तन हो रहा है। हुज़ूर के ऊपर ही मेरा सब कुछ निर्भर है।

थोड़ी देर के बाद दफ़्तर के सभी बाबुओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड बड़े साहब के मोटर में उनके शरीर से शरीर भिड़ाये बैठा हुआ कहीं जा रहा है।

लिखा-पढ़ी सब ठीक हो गई। साहब ने पुण्डरीकाक्ष को पाँच लाख रुपये का चेक काट दिया। तब पुण्डरीकाक्ष ने साहब से अनुरोध किया कि आप ही इन रुपयों को मेरे नाम से इम्पीरियल बैंक

में जमा करा दीजिए, क्योंकि बैंक में किस प्रकार रुपये जमा किये जाते हैं, यह मैं नहीं जानता। उसने बैंक में चार लाख निन्नानवे हज़ार रुपये जमा किये और एक हज़ार रुपये के फुटकर नोट भुनाकर ख़ुद ले लिया।

पुण्डरीकाक्ष साहब को धन्यवाद देकर घर जाने के लिए उनसे बिदा हुआ।

पुण्डरीकाक्ष के बिदा होते समय वैद्यनाथ विश्वास ने हँसकर कहा—पुण्डरीक बाबू, कब मुँह मीठा कराइएगा, बनाये जाइए। तीन दिन भूरिभोजन चाहता हूँ, समझे। एक दिन इतने अधिक नक़द रुपये पाने के लिए लक्ष्मीपूजन के उपलक्ष्य मे निमन्त्रण हो, दूसरे दिन नये गृह-प्रवेश के और तीसरे दिन इन सबकी अपेक्षा अधिक आनन्द के आयोजन—आपके विवाह के बाद—बहू आने के समारोह-उत्सव के उपलक्ष्य में। हाँ, यह तो बताइए, अब कब अपना विवाह कीजिएगा। अब तक तो क्या खिलायेंगे, यह सोचकर बहू को घर नहीं लाये। अब तो भगवान् की इच्छा से वह चिन्ता रह नहीं गई है। कहिए तो मैं मध्यस्थ बनूँ। मेरे मध्यस्थ बनने की क्षमता देखकर आप चकित रह जायँगे। एक क्षण में आपके प्रति विमुख लक्ष्मी का केवल मन ही आपकी ओर नहीं आकृष्ट कर दिया, बल्कि सहसा आपका उनसे मिलन करा दिया। ऐसे समय में एक गृहलक्ष्मी जुटा देना कौन-सी बड़ी बात है?

विवाह की बात उठते ही पुण्डरीकाक्ष के मन के सम्मुख मेना का विवाह के समय के वस्त्र पहने हुए नववधू के वेश में अवगुण्ठित व्रीडा-वनत सुन्दर मुखमण्डल नाचने लगा। उसने एक लम्बी साँस लेकर कहा—बड़े बाबू, आपको दो दिन का न्योता तो अभी दिये देता हूँ। परन्तु तीसरे न्योते के सम्बन्ध में बड़ा भारी सन्देह है। विवाह तो केवल वर की इच्छा से नहीं होता, उसके लिए कन्या की भी तो इच्छा होनी चाहिए, कन्या मुझे नहीं भी पसन्द कर सकती है।

वैद्यनाथ ने हँसकर कहा—बङ्गाल में ऐसी कौन-सी कन्या है जो

पाँच लाख रुपये के मालिक को पसन्द न करे ! आपकी पसन्द के योग्य लाखों ऐसी कन्यायें हैं जिन्हें मै खूब जानता हूँ। आपकी पसन्द के अनुसार कन्या चुनकर मध्यस्थ बनकर विवाह स्थिर कराने का भार मुझ पर रहा। फिर भी यदि किसी कन्या-विशेष के प्रति आपका पक्षपात चला आ रहा हो तो बात और है। इस प्रकार का कोई रोमान्स आदि तो नहीं है ? यदि हो, तो भी विश्वासपूर्वक आप मुझसे कह सकते हैं। मैं एक बार उन लोगों से भी चेष्टा करके देख सकता हूँ। मेरा नाम वैद्यनाथ विश्वास है !

मेना के प्रति पुण्डरीकाक्ष का जो प्रणय और आकर्षण था वह उसकी दृष्टि मे अत्यन्त पुनीत और गोपनीय साधना के धन के रूप में था। इसी लिए उसने कभी किसी के सामने इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करना तो दूर रहा, स्वप्न मे भी इस सम्बन्ध में एक शब्द तक निकालना नहीं चाहा। यह उसकी अत्यन्त छिपी हुई निधि थी। उसने वैद्यनाथ के प्रश्न से संकुचित होकर कहा—न, न, चटाई के लहँगे को परियों का शौक़ कहाँ से आयेगा ? तीस रुपये के क्लर्क के जीवन में कैसा रोमान्स !

वैद्यनाथ ने कहा—परन्तु अब तो आप ग़रीब नहीं हैं।

पुण्डरीकाक्ष ने म्लान हँसी हँसकर कहा—अब ग़रीब नही हूँ, परन्तु आज साढ़े दस बजे तक तो ग़रीब था, नि.स्व ही था।

वैद्यनाथ ने कहा—जो भी हो, आपको यदि विवाह स्थिर कराने के लिए मध्यस्थ की आवश्यकता पड़े तो आप अपने इस मित्र को स्मरण कीजिएगा। मैं शायद उसमें भी अपने हाथ का यश प्रमाणित करके दिखा सकूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने म्लान मुँह से कुछ हँसकर अपना मस्तक अवनत करके वैद्यनाथ को नमस्कार किया, कहा कुछ नहीं। उसके बाद एक टैक्सी मँगवाकर उसमें वह बैठ गया। टैक्सी में बैठकर जाते जाते वह सोचने लगा—मेना के प्रति मेरा जो अनुराग है वह केवल मेरे गोपनीय मनोराज्य का व्यापार है। उसे मै किसी से कैसे बता सकता हूँ ? यदि मेनादेवी ही किसी दिन बताने का अधिकार मुझे देंगी तो बताऊँगा, नहीं तो यह बात मेरे मन में ही छिपी रह कर मेरी चिता में विलुप्त हो जायगी।

छठा परिच्छेद

कायापलट

पुण्डरीकाक्ष बैङ्क से निकलकर सीधे चाँदनी चौक के बाज़ार में गया। वहाँ जाकर उसने अनेक दूकानों से अनेक प्रकार की साज-सज्जा की वस्तुएँ पसन्द करके ख़रीदना प्रारम्भ किया। उसने एक मयूरकण्ठी रङ्ग की कमीज़ ख़रीदी, सिल्क का एक चमचमाता हुआ पजाबी कोट खरीदा। उस कोट से अनेक प्रकार के रङ्गों की चमक निकल रही थी। एक जोड़ा पेटेण्ट लेदर का पम्प शू ख़रीदा। वह भी काफ़ी चमकदार था। एक छड़ी ख़रीदी। उसके बेंट में सुनहरी मूँठ लगी हुई थी और छड़ी मे अनेक प्रकार के रंगों की लकीरें कटी हुई थीं। एक छाता खरीदा। उसका बेंट हाथीदाँत का था और उसमें अत्यन्त सूक्ष्म पच्चीकारी का काम था। बेंट में पुष्प-लता-पत्तियों के बीच में एक नङ्गी स्त्री अपना शरीर शिथिल किये पड़ी थी। इन वस्तुओं के अतिरिक्त उसने रङ्गीन मोज़े, रङ्गीन रूमाल, एसेन्स, साबुन, ब्रुश आइना, जीलिट का नये क़िस्म का सुनहरा सेफ़्टी रेज़र, क्रीम, बार्बासोल आदि बाबू साहबी के ठाठ की वस्तुएँ ख़रीद कर अपनी आज तक की आशाओं की परितृप्ति की। उसके बाद आभूषणों की दूकान में जाकर एक अत्यन्त सुन्दर हीरे की अँगूठी, एक सोने की कलाई की घड़ी और सोने का पट्टा ख़रीदा।

इन सब वस्तुओं को ख़रीदकर पुण्डरीकाक्ष अपने घर पहुँचा और अपने कमरे के किवाड़ बन्द करके उन सब वस्तुओं से सुसज्जित होने में निमग्न हो गया। वह जब अपने कमरे के किवाड खोलकर बाहर निकला तब उसकी बुआ उसके चेहरे और पोशाक का यह परिवर्तन देखकर अवाक् रह गई।

पुण्डरीकाक्ष ने अपनी बुआ की विस्मय-विस्फारित आँखें देखकर हँसते हुए कहा—देखती क्या हो बुआ ? तुमने मेरी वर्षगाँठ के दिन नये कपडे खरीदकर पहनने की बात कही थी। याद है न ? उसी दिन मैं उपद्रव में पड़ जाने से पुलिस के द्वारा गिरफ़्तार कर लिया गया और जेल भेज दिया गया। उसके बाद के चार महीने तो जेल में ही बीत गये। वहाँ से लौट आने पर झंझटों में फँसे रहने के कारण तुम्हारा अनुरोध स्मरण न रख सका। हठात् आज मुझे याद आया कि बुआ ने मेरी वर्षगाँठ के दिन नये वस्त्र पहनने को कहा था। तुम्हारी बात को याद करके ही कुछ बढ़िया कपड़े ख़रीद कर मैंने पहन लिये हैं। देखो बुआ, मैं कैसा लगता हूँ। अब राजा के दामाद सरीखा दिखाई पड़ता हूँ न ? अब तुम्हारी साध को भी पूरी करने की चेष्टा करूँगा। जिसके साथ मैं अपना विवाह करना चाहता हूँ, यदि वह भी राज़ी हो गई तो मैं अपना विवाह करूँगा। तुम नज़दीक की बस्ती में एक बार पता लगाकर देखो। शायद वहाँ कहारी और नौकर आदि का काम करने को लोग मिल जायँ। तुम एक महरी, एक नौकर, एक रसोइया अथवा मिसरानी तो आज ही तय कर लो। तुम केवल घर-गृहस्थी की देख-भाल करना। तुम बूढ़ी हो गई हो, दोनों समय भोजन बनाना और बर्तन मलना आदि सब तुमसे कैसे हो सकेगा ? और लोग भी मेरी बुआ को रसोई बनाते देखकर मुझसे क्या कहेंगे, और तुम्हीं से क्या कहेंगे ?

पुण्डरीकाक्ष की बुआ इतनी चकित और चिन्तित हो उठी कि वह कोई उत्तर न दे सकी। वह सोच रही थी कि अवश्य पुण्डरीकाक्ष का मस्तिष्क विकृत हो गया है। जिस आदमी की नौकरी कुल दस दिन में छूटनेवाली हो, अकस्मात् उसका यह नवाबी ठाट प्रकृतिस्थ अवस्था में कैसे बदल सकता है ? आह ! नौकरी की फ़िक्र में ही लड़के का दिमाग़ बिगड़ गया है।

पुण्डरीकाक्ष अपनी बुआ को विस्मय में डालकर उसे कुछ कहने

का अवसर दिये बिना ही तुरन्त घर के बाहर निकल पड़ा। मकान के बाहर टैक्सी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह उसमें बैठ गया और मार्टिन कम्पनी के दफ़्तर में जा पहुँचा। मकान बनवाने के ठेकेदार मार्टिन कम्पनी के मैनेजर से मिल कर उसने कहा कि आपको मेरा वर्त्तमान मकान गिरवाकर उस स्थान पर एक नये फ़ैशन का सुन्दर, परम रमणीय भवन बनवाने का ठीका लेना होगा और नये फ़ैशन के अनुसार जितने प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था की जा सकती है, उस मकान में उन सबका प्रबन्ध करना होगा। यदि सम्भव हो तो आप श्रीश चटर्जी से नवभारतीय पद्धति के स्थापत्य के अनुसार मकान का नक़्शा तैयार करवा लीजिए। परन्तु यदि ऐसा करने में देर लगे तो उनसे नक़्शा बनवाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप ही अपने आदमियों से देशी ढङ्ग का नक़्शा बनवाकर तुरन्त मकान बनवाना प्रारम्भ कर दें। मेरा यह मकान जितनी जल्दी सम्भव हो, उतनी ही जल्दी तैयार हो जाना चाहिए। इस काम के लिए मैं अधिक रुपये व्यय करने को प्रस्तुत हूँ। यदि सम्भव हो और रातोंरात काम करके मकान बनाने का काम समाप्त कर दे सकें तो मैं बाज़ार की दर की अपेक्षा दुगुने रेट का कंट्राक्ट देने को भी प्रस्तुत हूँ। मार्टिन कम्पनी में अनेक इंजीनियर, और न जाने कितना माल-मसाला सदा मौजूद रहता है, इसी लिए आपके पास मैं सबसे पहले आया हूँ, जिससे हाथों ही हाथ आप मकान तैयार कर दे सकें। यदि आपकी कम्पनी का इंजीनियर अभी मेरे साथ चलकर जगह देखकर नाप-जोख कर ले और रातोंरात प्लान तैयार करके कल सवेरे से ही पुराना मकान तोड़कर नया बनाना प्रारम्भ करवा सके तो मैं आपको किसी भी शर्त पर कंट्राक्ट देने को प्रस्तुत हूँ। पुण्डरीकाक्ष मन-ही-मन सोच रहा था—हाय! हाय! यदि मेरे पास अलादीन का आश्चर्य-प्रदीप होता तो मैं रातोंरात अपनी इमारत तैयार करवा के मेना को दिखा देता।

पुण्डरीकाक्ष की बात सुनकर, तुरन्त मकान तैयार करवाने की

व्यग्रता देखकर और उसकी वेष-भूषा को लक्ष्यकर मार्टिन कम्पनी के मैनेजर को सन्देह हुआ कि शायद यह व्यक्ति पागल है। तो भी उसने स्वीकार कर लिया कि हमारी कम्पनी एक महीने में ही आपकी इमारत तैयार कर देगी। उसने उसी समय अपने एक इंजीनियर को बुलाकर उससे पुण्डरीकाक्ष के साथ जाकर ज़मीन देख लेने और इण्डियन स्टाइल की इमारत का बढ़िया नक़्शा तैयार करके उसे पसन्द करवा लेने को कहा।

पुण्डरीकाक्ष इंजीनियर को टैक्सी में बिठालकर अपने मकान की ओर चल दिया। इस व्यस्त और उदाराशय धनी आदमी के पास निज का एक मोटर भी नहीं है, यह देखकर इंजीनियर को आश्चर्य हुआ और उसे भी सन्देह होने लगा कि मैं कहीं पागल के पल्ले तो नहीं पड़ गया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने यह सन्देह निवृत्त करने का प्रबन्ध कर लिया। उसने अपनी धनशालिता प्रमाणित करने के लिए मार्टिन कम्पनी के नाम पाँच हज़ार रुपये का एक चेक पेशगी काट दिया। उसके बाद वह अपने उस महाजन के पास गया, जिसके यहाँ उसका मकान गिरवी रक्खा था। उसने उससे कहा—मै क़र्ज़ का रुपया अदा करके अपना मकान छुड़ा लेना चाहता हूँ। मै चेक काटे दे रहा हूँ, दयापूर्वक मेरे गिरवीनामे की पीठ पर रुपये पाने के दस्तख़त कर दीजिए और वह मुझे वापस कर दीजिए।

उसके महाजन ने पुण्डरीकाक्ष की वेष-भूषा देखकर और बातचीत सुनकर समझा कि वह पागल हो गया है। जो व्यक्ति क़र्ज़ के रुपयों का सूद तक नहीं दे सकता था, जो उसके कितने ही तकाज़े और गालियाँ चुपचाप सुन लेता था, वह आकर कहता है कि कुल सूद और असल रुपये का चेक काटे दे रहा हूँ! पागलों के अतिरिक्त क्या और कोई ऐसी बात कह सकता है? परन्तु जब पुण्डरीकाक्ष ने अपनी जेब से चेकबुक बाहर निकाली तब तो वह अवाक् होकर देखने लगा। फिर भी उसका सन्देह निवृत्त नहीं हो सका। यद्यपि उसने देखा कि चेकबुक पर पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड का ठीक-ठीक नाम-ठिकाना लिखा हुआ है, तो भी उसने

सोचा कि शायद वह चुराकर अथवा बिना बताये किसी की चेकबुक उठा लाया है। पागल और चोर-बदमाश क्या नही कर सकते ? इसलिए उस महाजन ने बड़ी सावधानी से उत्तर दिया—यह जानकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ पुण्डरीक बाबू कि आप मेरा सब रुपया अदा कर देंगे। आपका गिरवीनामा यहाँ मेरे पास नहीं है। मेरी गद्दी मे रक्खा है। यदि आप कल सवेरे आने की कृपा करें तो मैं उसे गद्दी से लाकर रख लूँ। अथवा यदि आप ग्यारह बजे के समय गद्दी पर आने की कृपा करें तो मैं वहीं आपको दे सकता हूँ। एक बात है पुण्डरीक बाबू, आप अपने मन में कोई बात न लाइएगा, मुझे कुछ रुपयों की कल ही बड़ी आवश्यकता है। ऐसे कुसमय में आपने रुपये देकर मेरी जो सहायता की है उसके लिए मैं आपका उपकृत हूँ। यदि आप नक़द रुपये दे दें तो मुझे बड़ी सुविधा हो, नहीं तो बैंक में चेक भेजकर रुपये मँगाने में बड़ी देर हो जायगी, मुझे उससे कुछ असुविधा होगी....

पुण्डरीकाक्ष महाजन का सन्देह ताड़ गया। उसने मुसकिराकर कहा—आपको सन्देह हो रहा है कि कल का दरिद्र पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड हठात् आज धनपति बनकर कैसे आ खड़ा हुआ। ऐसा सन्देह आपको होना ही चाहिए....

महाजन ने लज्जित होकर कहा—न, न, ऐसी बात नही है, किन्तु...

पुण्डरीकाक्ष गम्भीर होकर बोला—मै कल नक़द रुपये लेकर ही ग्यारह बजे के लगभग गद्दी पर आकर आपसे मिलूँगा। आप दयापूर्वक मेरा गिरवीनामा ले जाकर गद्दी में रख छोड़ें। क्योंकि कल से ही मैं अपना पुराना मकान तुड़वाकर उसमें नई इमारत बनवाना प्रारम्भ कर दूँगा, मैं मार्टिन कम्पनी को कंट्राक्ट दे आया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष को विश्वास नहीं हुआ कि महाजन की गद्दी में गिरवीनामा रक्खा है। अतएव उसने महाजन से उसे गद्दी में ले जाकर रखने को कहा। इसका प्रतिवाद करके अपनी मिथ्यावादिता को छिपाने की महाजन ने कोई चेष्टा नहीं की। पुण्डरीकाक्ष की लम्बी-चौड़ी बातें

सुनकर वह अवाक् हो गया था। वह केवल यही सोच रहा था कि पुण्डरीकाक्ष कह क्या रहा है? एकदम मार्टिन कम्पनी को मकान बनवाने का कंट्राक्ट!

पुण्डरीकाक्ष उठकर खड़ा हो गया। उसने महाजन को नमस्कार करके उसे फिर याद दिलाई कि मैं कल ग्यारह बजे आपका कुल नक़द रुपया लेकर आपकी गद्दी में आऊँगा और अपने गिरवीनामे में रुपयों की प्राप्ति की स्वीकृति लिखाकर उसे ले जाऊँगा। मुझे कल ही गिरवीनामा मिल जाना चाहिए और यदि वह कल न मिल सके तो आप इस आशय की एक पक्की रसीद लिख दीजिएगा कि आपको सूद-सहित कुल रुपये मिल गये हैं, क्योंकि मेरे पास अधिक समय नहीं है। कल ही मार्टिन कम्पनी के आदमी मकान गिराना प्रारम्भ कर देंगे।

पुण्डरीकाक्ष वापस आते ही अपने मकानवाली गली में ही किराये की जगह लेने की चेष्टा मे निकला। उस सड़क पर एक मकान के द्वार पर बहुत दिनों से एक नोटिस लटक रही थी—'यह मकान किराये को ख़ाली है। नं० ३६, बेचाराम पोद्दार की गली में पूछिए।' वह मकान पुण्डरीकाक्ष के मकान के उस ओर ही था, जिस ओर मेना का मोटरकार नित्यप्रति जाया करता था। यदि ऐसा न होता और वह मकान उसकी विपरीत दिशा में होता तो पुण्डरीकाक्ष उसे किराये पर लेने के लिए कदापि न तत्पर होता। यदि वह पक्का मकान न पाता तो खपरैल का मकान लेकर ही कुछ दिन बिता देता, परन्तु दूसरी सड़क पर या उसी रास्ते के दूसरी ओर किसी मकान में न रहता।

पुण्डरीकाक्ष उस मकान-मालिक की खोज में निकल पड़ा और उससे भेंट करके उसे एक महीने का पेशगी किराया देकर उस मकान को तय कर आया।

मेना जिस रास्ते से नित्यप्रति आती-जाती थी, पुण्डरीकाक्ष सौभाग्यवश किराये पर उसी सड़क के किनारे का मकान पा गया। मेना को नित्य देखने के सौभाग्य से वह वञ्चित नहीं हुआ। उसने जो

मकान किराये पर लिया वह उसके निज के मकान की अपेक्षा बहुत बड़ा और सुन्दर था, तो भी उसके मन में यह सङ्कोच बना ही रहा कि यह मकान उतना चमक-दमक-पूर्ण नहीं है जिससे लोग समझ सकें कि उसकी अवस्था अब कितनी परिवर्तित हो गई है।

दूसरे दिन सवेरे ही उसने उस मकान में अड्डा जमा लिया। उसके पास सामान ही ऐसा कितना अधिक था! थोड़ी ही देर में वह स्थानान्तरित हो गया। जब उसके मकान से फटी चौकी, उखड़े पाये और टूटी पीठ की कुर्सी, कितनी ही मैली और काली हाँड़ियाँ और सामान रखने के मोरचा लगे हुए टीन के ट्रङ्क और केम्बिस का सूटकेस बाहर निकलने लगा तब लज्जा से पुण्डरीकाक्ष का मस्तक अवनत हो गया। थोड़ी देर में मेना को देखने के लिए उसे प्रतीक्षा करनी थी, इस समय बाजार जाकर नई वस्तुएँ खरीदने का उसे अवकाश नहीं था। आज के पहले वह अपने नियमित स्थान पर खड़ा हुआ मेना के दर्शन के लिए प्रतीक्षा किया करता था, परन्तु आज वह नये स्थान पर खड़ा रहेगा, मेना अपने अभ्यास के अनुसार उसी पुराने स्थान की ओर दृष्टिपात करेगी और उसे देख न पाकर हताश हो जायगी और सम्भव है, वह इस नये स्थान की ओर दृष्टिपात ही न करे। जाने कितने दिनों के बाद मेना इस स्थान से परिचित हो सकेगी? परन्तु इस स्थान में उसका परिचय घनिष्ट होते न होते ही वह अपने नये मकान में उठ जायगा। तब मेना इस स्थान में उसे न देख पायेगी और उस पुराने स्थान में ही हठात् एक दिन देखेगी। इस प्रकार कितने ही दिन वृथा जायँगे, मेना से उसका दृष्टि-विनिमय न हो सकेगा। इससे वह अत्यन्त दुःखित हो उठा था। परन्तु सहसा उसके मन में यह बात आई कि इससे मेना का मन उसके प्रति सचेष्ट हो जायगा, उसके लिए मेना के मन में अनुसन्धान की इच्छा और चेष्टा जाग्रत् होगी, उसके प्रति मेना का अनुराग बढ़ने और मन आकृष्ट होने का सुयोग

प्राप्त होगा। अतएव इन सब बातों को सोचकर वह मन-ही-मन अत्यन्त उत्साहित और प्रफुल्लित हो उठा।

दस बजे के पहले से ही पुण्डरीकाक्ष अपने नये वेश से सुशोभित होकर एना-मेना की मोटरगाड़ी की प्रतीक्षा में सड़क के किनारे आ खड़ा हुआ।

पुण्डरीकाक्ष जो आशा कर रहा था, भाग्यवश वही हुआ। एना-मेना की मोटरगाड़ी ज्यों ही उसके मकान के सामने पहुँची, त्यों ही मेना और एना ने उसके नित्य प्रतीक्षा करने के स्थान की ओर दृष्टिपात किया, और दोनों ने देखा कि आज उस स्थान पर पुण्डरीकाक्ष नहीं है। परन्तु किसी ने एक-दूसरे से इस सम्बन्ध में कोई बात न पूछी। एक अपरिचित आदमी नित्य अपने मकान के सामने खड़ा रहता है, आज वह नहीं है, न रहे, उससे उनका कोई मतलब तो है नहीं, यह भाव दिखाने के लिए उन लोगों ने कोई बात नहीं उठाई, परन्तु दोनों ने मन में सोचा कि आज पुण्डरीकाक्ष गैरहाजिर क्यों है, वह कहाँ चला गया?

गाड़ी के थोड़ी दूर बढ़ते ही एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष सड़क के किनारे पर खड़ा है। उसे देखते ही एना उत्साहित होकर व्यग्र स्वर से कह उठी—दीदी, दीदी, देखो तुम्हारे पूतितुण्ड महाशय आज किस प्रकार मयूरपुच्छ-भूषित कौवे की तरह खड़े हैं! उसने आज अपनी नई साज-सज्जा बना ली है! परन्तु यह सब वह पा कहाँ गया?

पुण्डरीकाक्ष पर निगाह पड़ते न पड़ते ही मोटर आगे निकल गया। एना चकित दृष्टि से ही उसका जो आभास पा सकी थी, उसी से वह हँसते-हँसते अपनी दीदी की गोद में लोट-पोट हो गई। मेना ने भी अपनी बहन की बात सुनकर गाड़ी की पिछली खिड़की से झाँककर पुण्डरीकाक्ष को देखा और कुछ हँस पड़ी।

पुण्डरीकाक्ष का आनन्द उसके हृदय में समा न सका। मेनादेवी मोटर से झाँककर उसे देखकर हँस पड़ी और वे उससे अपना परिचय

और प्रीति का सम्बन्ध स्वीकार कर गईं, ऐसे परम सौभाग्य का आनन्द भला उसके हृदय में कैसे समा सकता है! उसकी इच्छा हो रही थी कि वह सारे विश्व से चिल्ला-चिल्लाकर कहे कि 'श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः, मेरे जीवन-मन को आज अमृत-लाभ हुआ है, मेरी देह मेना-देवी के पावन दृष्टिपात से पवित्र हो गई है!' उसकी इच्छा हो रही थी कि वह सड़क की धूल में लोट जाय और मेनादेवी के मोटर के पहिये से चिह्नित स्थान को अपने हृदय से चिपटा ले। इस बार पुण्डरीकाक्ष भली-भाँति समझ सका कि भक्त लोग कीर्त्तन के समय भावावेश में किस प्रकार मिट्टी में लोटपोट हो जाते हैं, उनकी दशा कैसी हो जाती है।

तीसरे पहर कालेज से मकान लौटते समय मेना और एना ने आश्चर्य से देखा कि बहुत-से मज़दूर मिलकर दम दम दुड़ दुड़ करते हुए पुण्डरीकाक्ष का पुराना मकान गिराये दे रहे हैं। उन दोनों के मन में बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। उनके मन में यह जानने की इच्छा प्रबल हो उठी कि क्या अन्त में उसका मकान क़र्ज़ के कारण बिक ही गया? जिस महाजन ने ख़रीदा है, क्या वह इसे तुड़वाकर नये सिरे से बनवा रहा है? अथवा पुण्डरीकाक्ष की अवस्था में ही ऐसा कोई परिवर्तन हो गया है जिससे वह स्वयं अपना मकान नये रूप से तैयार करवा रहा है? परन्तु दूसरों के सम्बध में इस प्रकार का कोई कौतूहल उत्पन्न करना संगत नहीं है, यह विचारकर दोनों में से किसी ने कोई बात नहीं उठाई। एना मन-ही-मन सोचने लगी कि अब तो पुण्डरीकाक्ष की बुढ़िया बुआ कभी हमारे घर बैठने भी नहीं आती जो उससे कोई बात जान ली जाती। वह बुढ़िया भी अजीब औरत है। इतने दिनों दीदी ने उसे सहायता दी; परन्तु उसके बाद अब वह कभी सूरत तक नहीं दिखाती।

दूसरे दिन सवेरे कालेज जाते समय एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपने नये मकान के सामने नई पोशाक पहने हुए खड़ा है। उसे

दूर से ही देखकर एना ने अपनी दीदी से कहा--दीदी, दीदी, पूतितुण्ड बाबू अपनी पुरानी झोपड़ी छोड़कर इस बड़े और नये मकान में आकर बस गये हैं। अब उन्होंने नई पोशाक ख़रीद ली है। अहा! अपनी इतनी बढ़िया दफ़्तर जाने की पोशाक का उसने क्या किया? उसे अवश्य ही उसने किसी एक्ज़िबीशन में भेज दिया होगा अथवा किसी म्यूज़ियम में रख दिया होगा। वाञ्छाराम का चाव कितना सुन्दर और अनोखा है! बाज़ार से एक कोट ख़रीद लिया है! कमीज़ सिल्क की है! उसके इन कपड़ों से जल-तरङ्ग की-सी चमक झिलमिला रही है। हाथ में अँगूठी और घड़ी पहनकर ये महाशय एक-दम नव-कार्तिकेय के रूप में सज्जित हो गये हैं। गँवार और किसे कहते हैं! गँवार कहीं वृक्षों में थोड़े ही फलते हैं, अथवा वे किसी देश-विशेष में थोड़े ही निवास करते हैं? जिसको ज़रा भी शऊर नहीं है, जिसमें साधारण बुद्धि भी नहीं है, वही तो गँवार है।

पुण्डरीकाक्ष का मकान बनना शुरू हो गया। बहुत-से राज और मिस्त्री काम करने लगे। बात की बात में मकान ऊँचा उठने लगा। पुण्डरीकाक्ष अब सवेरे-शाम देख-भाल करने के लिए और मेना को यह दिखाने की आकांक्षा से कि यह उसका ही नया मकान बन रहा है, उसके सामने खड़ा रहने लगा। उसे नित्य उसी मकान के सामने खड़ा देखकर एना ने अपनी दीदी से कहा--दीदी, पुण्डरीकाक्ष अपना पुराना मकान तुड़वाकर उस पर नया मकान बनवा रहा है। यह बढ़ कैसे गया? यह तो एक-दम उँगली के फूलकर केले के वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाने की-सी बात हुई! अब तो यह निश्चय अपना विवाह करेगा।

मेना अपनी बहन का मन्तव्य सुनकर कुछ व्यङ्ग से हँसी और परिहास से बोली--तुझे शायद इससे डर लग रहा है अथवा ईर्ष्या हो रही है? तू जिस प्रकार मनोनियोगपूर्वक नित्य-नित्य इसकी जीवन-यात्रा की ओर निगाह डालती चली आ रही है उससे मुझे

बड़ा सन्देह हो रहा है कि तू उसके प्रेम-पाश में आबद्ध हो गई है। देख, यदि वह तुझे बहुत पसन्द आ गया हो तो चुपचाप मुझसे बता दे। मैं पिताजी से कहकर तेरे साथ ही उसके विवाह की बात चलाऊँ।

दीदी की बात सुन कर एना लज्जित हो गई और हँसकर बोली—हट, उससे मैं क्यों अपना विवाह करने लगी। उसकी दुलहिन आयेगी, शरीर में देहाती ढंग से साड़ी, नाक में बेसर और कान में झुमके पहने हुए। वह होगी नौ वर्ष की अबोध लड़की और पूतितुण्ड महाशय लोगों से अत्यन्त सम्भ्रमपूर्वक उसका परिचय देंगे—ये मेरी स्त्री हैं।

यह बात समाप्त करते ही एना हँसती हुई अपनी दीदी की गोद में लोट पड़ी। इस बार मेना ने भी चुपचाप अपनी बहन के विनोद में योग दिया।

पुण्डरीकाक्ष नित्यप्रति मेना को एक बार एक क्षण के लिए दूर से देख पाने की आशा से सड़क के किनारे पर आशा बाँधे खड़ा रहता था। परन्तु वह कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सका कि उसके विषय में इन दोनों बहनों में कोई आलोचना होती है अथवा वह उनके कौतुक का विषय बनकर उनके लिए हास्यजनक हो गया है। उसे देखकर एना की आँखों और मुँह से बातें और हँसी निकलने के क्षण तक उनकी मोटर-गाड़ी उसकी दृष्टि से बाहर पहुँच जाती और उसके सम्बन्ध की उनकी आलोचनायें तथा हँसी-मजाक की बातें उसके परोक्ष में ही होतीं।

देखते-देखते पुण्डरीकाक्ष का मकान तैयार होगया। मकान की सामने की दीवार में सफ़ेद पत्थर के टाइल और प्रत्येक कमरे के फ़र्श पर सफ़ेद पत्थर लगाये गये। कमरे की दीवारों में बेल-बूटों का काम किया गया। छत के निचले भाग में अजन्ता की-सी चित्रकारी और पुष्प-लताओं, पत्तियों और पक्षिओं के विचित्र चित्र अंकित किये गये। हर एक कमरा बिजली के पंखों और प्रकाश के अत्यन्त मनोहर झाड़ों से सुशोभित किया गया। जगह कम होने के कारण मकान चौतल्ला बनाया गया। हर एक तल्ले में दो बड़े कमरे और उन

कमरों के बग़ल में एक चौकोर ड्रेसिंग रूम और एक बाथरूम रक्खा गया। उनमें भी बिजली के पंखों और प्रकाश की कृपणता नहीं की गई। मकान के एक किनारे जीना रक्खा गया और दूसरे किनारे एक लिफ़्ट (आरोहण-यंत्र) लगाया गया। पाख़ाने और बाथरूम शंख-शुभ्र पोर्सिलेन के टाइल से आच्छादित किये गये। दीवारों पर भी उसी प्रकार के टाइल और उन पर रंगीन बेल-बूटों की पंक्ति लगाई गई। मकान के उत्तर की ओर भी तितल्ला कमरा बनाया गया—उसका एकतल्ला नौकर-नौकरानियों के रहने के लिए रक्खा गया, दूसरे तल्ले में गैस और बिजली के चूल्हों का रसोईघर और भोजनालय बनाया गया और तीसरे तल्ले में भाण्डारगृह। दीवारों के काली हो जाने के भय से कोयले की आवश्यकता ही मिटा दी गई। मकान का विस्तार यद्यपि बहुत थोड़ा था तो भी यथासम्भव उसे सुन्दर बनाने और उसके लिए रुपयों के ख़र्च में कमी नहीं की गई। पुण्डरीक के मकान के बग़ल में एक खपरैल के घरों की बस्ती थी। उस ज़मीन को ख़रीदने की कोशिश करके जब वह विफल हो गया तब उसने दूनी क़ीमत देकर उसे ख़रीदा और उसमें मनोरम उद्यान और मोटर-गैरेज बनवाना प्रारम्भ कर दिया। इस तीन काठा ज़मीन में मकान बनवाने में पुण्डरीकाक्ष के पचास-साठ हज़ार रुपये ख़र्च हो गये।

पुण्डरीकाक्ष के मकान की नित्यप्रति उन्नति देखकर एना ने अपनी दीदी से विस्मयपूर्वक कहा—दीदी, इस बेशऊर पागल को हो क्या गया है? इसने तो एकदम अभ्रंलिह महल ही तैयार करवा लिया। देखो तो कितना सुन्दर मकान बनवा लिया। इसकी अभिरुचि तो देखो! अगला हिस्सा केवल सफ़ेद पत्थर और पोर्सिलेन से बना है। इसने इस मकान पर जो रुपये ख़र्च किये हैं, मानो उन्हें गलवाकर उनके रूप से ही मकान को यह रूप दिया है। अपना सर्वस्व खोकर इसने यह मकान तो तैयार करवा लिया, परन्तु क्या खाकर इसमें रहेगा, मेरे मन में यह दुश्चिन्ता उत्पन्न हो गई है।

एना की बात सुनकर मेना ने हँसकर उत्तर दिया—बेचारे ने गृहलक्ष्मी का आवाहन कर सकने के लिए उसके चरण रखने को शतदल तो विकसित कर दिया। इसके बाद लक्ष्मी के उसमें पदार्पण करने पर जिससे भाण्डार रिक्त न हो, इस ओर लक्ष्मी ही अपनी पूर्ण दृष्टि रक्खेगी। पहले मकान में तो पधारने की कृपा करो, फिर और सब सोच लेना।

एना ने भ्रूकुञ्चित करके कहा—हिश! मेरी बला जाय उसके घर में! बलिहारी है उसके रूप और रुचि की।

मेना ने हँसकर उत्तर दिया—इसके लिए तुम न डरो। रुचि उसकी अब ऐसी भूल कदापि न करेगी और यदि वह ऐसा कर भी बैठी तो मैं उसकी भूल सुधारकर ऐसी व्यवस्था करूँगी जिससे वह उपयुक्त पात्री ही चुने।

एना ओंठ बिचकाकर बोली—पहले तुम किसी के घर जाओगी तब तो मैं कहीं जाऊँगी! तब तुम्हीं क्यों न उसके घर चली जाओ, लक्ष्मी का-सा तुम्हारा रूप भी है। कुमीरखाली में रहने की अपेक्षा कलकत्ते में रहना तुम्हारे लिए अत्यन्त सुविधाजनक और उत्तम होगा।

इस परिहास से मेना का मुँह सहसा लाल हो गया और उसकी आँखों की कोरों पर आँसू की बूँदें छलछला आईं। वह एक क्षण ठहरकर आत्मसंवरण करके विषण्ण स्वर से बोली—मैं पिताजी को छोड़कर कहाँ जाऊँगी! कहीं चली गई तो इस बूढ़े शिशु की देख-भाल कौन करेगा? मैं उनके समीप रहकर भी तो कुछ नहीं कर पाती हूँ, तो भी....

मेना के शब्द मानो आँसुओं के सरोवर से स्नान करके भीग उठे। उसकी बातों से आँसू विगलित हो पड़े। इस विषण्णता के आघात से एना के मुँह की हँसी भी विलुप्त हो गई। उसने अपनी दीदी के मुँह की ओर म्लान दृष्टि से ताक कर एक लम्बी साँस ली।

सातवाँ परिच्छेद

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण

पुण्डरीकाक्ष अपने दफ़्तर की नौकरी से इस्तीफ़ा देकर मकान में ही रहने लगा। उसे अपने नये मकान के लिए अनेक आयोजन करने थे, फ़र्नीचर ख़रीदकर मकान सजाना था, दफ़्तर जाकर दूसरे की नौकरी में अपना समय गँवाने से भला उसका काम कैसे चल सकता था!

पुण्डरीकाक्ष अपना शर्ट और सिल्क का कोट पहन कर अपने नये मकान के सामने इस प्रकार छड़ी घुमाता हुआ खड़ा रहता कि लोग उसकी उँगली की बहुमूल्य अँगूठी और घड़ी देख सकें। वह मेना के मोटर के निकलने पर सतृष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगता। वह सोचता, मोटरगैरेज के तैयार होते ही वह अपना निज का मोटर ख़रीद लेगा और मेना की गाड़ी के पीछे-पीछे उसे भी दौड़ाया करेगा। वह राजाबहादुर के समान रोल्सरायस कार नहीं ख़रीद सकेगा, डेम्लर अथवा मिनर्वा कार में से कोई एक ख़रीद लेगा।

जब पुण्डरीकाक्ष का प्रासाद बनकर नित्य नये ऐश्वर्य-सज्जा से विभूषित हो रहा था तब गङ्गानगर के प्रतिष्ठित ज़मीदार राजाबहादुर राजेन्द्रनारायण रायचौधरी के कलकत्ते के मकान, उनका सब असबाब और रोल्सरायस कार के बेचने के उपक्रम में दलाल लगा हुआ था।

एक ओर एक दरिद्र का अभ्युदय और उसके समीप ही दूसरी ओर एक वैभवशाली का निःस्व होना देखकर ही कदाचित् कवि कालिदास ने लिखा था—

जात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्
आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।।

अर्थात्—एक ओर औषधिपति चन्द्रमा अस्ताचलगामी हो रहे हैं और दूसरी ओर अरुणसारथि सूर्य उदय हो रहे हैं; पूर्णिमा के प्रभात-काल में दोनों तेजोमय ज्योतिष्कों का एक साथ ही पतन और अभ्युदय देखकर लोग अपने दशा-विपर्यय के सम्बन्ध में शिक्षा-लाभ करते हैं।

एक दिन राजाबहादुर ने अपने काग़ज़-पत्र का निरीक्षण करते करते देखा कि भास्कर ने कई महीने से अपने वेतन के रुपये लिया ही नहीं है। यह देखकर उन्होंने भास्कर को बुला भेजा और उससे पूछा—बेटा भास्कर, मैं देख रहा हूँ कि तुम कई महीने से अपना वेतन नहीं ले रहे हो। क्या बात है ?

भास्कर ने लज्जित और दुःखित भाव से कहा—आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आपके मकान में ही रहता हूँ, खाता हूँ, धुलाई आदि के लिए भी मुझे कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। ऐसी दशा में रुपयों की मुझे क्या आवश्यकता है ?

राजाबहादुर बोले—तुम्हें अपने कपड़ों आदि के लिए भी तो रुपयों की जरूरत पड़ती ही होगी।

भास्कर ने अप्रतिभ भाव से उत्तर दिया—मैं मासिक पत्रों में लेख लिखता हूँ, उससे प्रतिमास कुछ आय हो जाती है, उसी से मेरा जेब-खर्च चल जाता है।

राजाबहादुर ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—तुम मासिक पत्रों में लेख लिखते हो ? परन्तु तुम्हारा नाम तो किसी पत्रिका में शायद मैंने कभी देखा नहीं।

भास्कर ने लज्जित भाव से उत्तर दिया—अपने निज के नाम से नहीं लिखता मैं। एक छद्मनाम से लिखता हूँ।

राजाबहादुर ने कौतूहल में पड़कर पूछा—तुम्हारा छद्मनाम क्या है ?

भास्कर ने मस्तक अवनत करके उत्तर दिया—शंकर शर्मा।

राजाबहादुर प्रसन्न होकर उच्छ्वसित स्वर से कह उठे—ओहो! शंकर शर्मा तुम हो! मुझमें और मेना में कई बार बातें हुई हैं कि यह शंकर शर्मा है, बड़ा सुन्दर लेखक और विद्वान् व्यक्ति है। मैं क्या जानता था कि तुम इस प्रकार के छिपे रुस्तम हो! मैं मेना से कहूँगा, वह सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। वह शंकर शर्मा के लेखों की बड़ी प्रशंसा करती है।

भास्कर का मुँह गम्भीर होगया। उसने कोई बात नहीं कही।

उसे चुप देखकर राजाबहादुर ने कहना प्रारम्भ किया—तब तो तुम अँगरेजी और बँगला के कई पत्रों में लिखते हो। तुम्हारे लेख बिलायती नेशन-एथिनियम और स्पेक्टेटर आदि में भी मैंने देखे हैं। इस प्रकार तो तुम्हें बड़ी आय होती होगी। परन्तु तुम्हारी आमदनी चाहे जितनी हो, हमारा काम करके तुम उसका पारिश्रमिक क्यों नहीं लेते बेटा?

भास्कर का मुँह उज्ज्वल हो उठा। उत्तर में उसने कहा—राजाबहादुर, मनुष्य क्या केवल रुपयों के ही लोभ से काम करता है? रुपया ही क्या सबसे ऊँचा पारिश्रमिक है? मैं आप लोगों से जो स्नेह-यत्न और आदर-सम्मान पाता हूँ, वह क्या मेरे लिए अमूल्य उपहार नहीं है? क्या उसकी कोई तुलना हो सकती है? मुझे तो कभी नहीं जान पड़ता कि मैं दूसरे के घर में काम कर रहा हूँ। मैं यदि अपने पिता की जमींदारी....

भास्कर के मुँह से उसकी असावधानी के कारण अपने पिता की जमींदारी की बात निकली जा रही थी, हठात् स्मरण आ जाने पर वह आधी बात पर ही रुक गया।

परन्तु राजाबहादुर उसकी बात का मतलब भले प्रकार नहीं समझ सके। उन्होंने समझा कि भास्कर यह कहना चाहता था कि यदि

यह ज़मींदारी उसके पिता की होती और वह उसकी देख-भाल करता होता तो क्या वह अपने काम का पारिश्रमिक ले सकता अथवा उसके पिता ही उसे यह पारिश्रमिक दे सकते अथवा देना चाहते ? वह मुझे पिता के तुल्य ही समझता है। ऐसी स्थिति में वह मुझसे पारिश्रमिक कैसे लेगा ? इसी लिए उन्होंने भास्कर की बात के उपसंहार के रूप में कहा—मैं तो तुम्हें अपने पुत्र के समान ही समझता हूँ। यह ठीक है कि तुम्हारा खर्च चला जा रहा है, परन्तु तुम्हारे जो आत्मीय-स्वजन हैं, उनकी तो तुम्हें कुछ सहायता करनी ही पड़ती होगी।

भास्कर लज्जित-सा हो उठा। उसके आत्मीय-स्वजनों में तो उसके पिता ही हैं और वे राजाबहादुर की अपेक्षा न जाने कितने अधिक धनशाली ज़मींदार हैं। उनकी ज़मींदारी ऋणमुक्त और स्वतंत्र है। उसने मृदु स्वर और कुण्ठित भाव से उत्तर दिया—नहीं, मेरा कोई आत्मीय मुझसे किसी प्रकार की आशा नहीं करता। वे जानते हैं कि मैं अत्यन्त अभाजन और अकर्मण्य हूँ।

राजाबहादुर ने हर्ष और दुःख के उद्रेक में कहा—तब तो बेटा, उनमें से कोई नहीं तुम्हें पहचानता, उनकी अपेक्षा मैं तुमसे अधिक परिचित हूँ। तुम कितने कर्मण्य और अशेष कल्याणभाजन हो, यह मैं अच्छी तरह जान गया हूँ !

भास्कर के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह राजाबहादुर की प्रशंसा और उनका स्नेहभाषण सुनकर इतना अभिभूत हुआ कि उसके बाद क्या कहे, यह स्थिर नहीं कर सका।

ठीक उसी समय उस कमरे में मेना आ पहुँची, जिससे भास्कर को छुट्टी मिल गई। मेना नहीं जानती थी कि उसके पिता के कमरे में इस समय भास्कर हैं। वह कमरे में आते ही भास्कर को देखकर लज्जित होगई और उसी समय अपना स्मित मुँह नीचा करके कमरे से बाहर निकल जाने का यत्न करने लगी।

उसे जाने को उद्यत देखकर राजाबहादुर ने कहा—मेना, आ

बेटी, आ। मैं सोच ही रहा था कि तुझे बुला भेजूँ। तू शंकर शर्मा के लेखों की बड़ी प्रशंसा करती है न ? मैं भी उसे अच्छा लेखक मानता हूँ। परन्तु इस समय भास्कर से मेरा मतभेद उपस्थित होगया है। ये कहते हैं कि वह अत्यन्त नगण्य लेखक है, वह अत्यन्त अभाजन और अकर्मण्य है। सो मैं तो इस डबल एम० ए० से वाद-विवाद में जीत नहीं सकूँगा बेटी ! तू आगई, यह अच्छा ही हुआ।

मेना कठिनाई में पड़ गई। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर वहीं अधलौटी खड़ी रही। अपने प्रिय लेखक की निन्दा उसके लिए असह्य थी, साथ ही उसके पिता उसे द्वन्द्वयुद्ध में योग देने को विवश कर रहे थे। परन्तु वह किस प्रकार इस अल्पपरिचित भास्कर से वाद-विवाद करने में प्रवृत्त हो सके ? इसी द्विधा-संकट में पड़कर वह लज्जित होगई और सिर नीचा किये चुपचाप खड़ी रही।

पिता-पुत्री का यह रहस्य देखकर भास्कर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था, उसका मुँह हँसी की प्रतिभा से उद्भासित हो उठा था, फिर भी वह हँस नहीं रहा था।

कन्या की लज्जित अवस्था देखकर राजाबहादुर बोले—और जानती है मेना, भास्कर बाबू इस प्रकार शंकर शर्मा की निन्दा क्यों कर सके ? ये ही उस छद्मनाम से पत्रों में लिख रहे हैं, इसी लिए ये आत्मनिन्दा कर रहे हैं। भास्कर ऐसा व्यक्ति नहीं है जो पर-निन्दा करे।

भास्कर ने अपना मुँह उठाकर एक बार मेना के मुँह की ओर दृष्टि-निक्षेप किया। मेना भी उसी समय उसकी ओर देख रही थी। दोनों की आँखें एक दूसरे से मिल गईं, दूसरे ही क्षण दोनों ने हँसकर अपनी निगाहें नीची कर लीं।

शंकर शर्मा भास्कर ही है, उसका प्रिय लेखक उसी का परिचित एक व्यक्ति है, यह जानकर मेना का मन हर्ष से पूर्ण हो उठा। वह अपने इस आनन्द का भाव छिपाने के लिए धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई।

मेना ने अपने कमरे में जाकर एमा से उत्फुल्ल होकर कहा—जानती हो एना, लेखक शंकर शर्मा हमारे भास्कर बाबू ही हैं। ये ही अपना नाम बदलकर इस छद्मनाम से लिखा करते हैं।

एना ने आश्चर्य से पूछा—ऐं! यह बात है? तुमको कैसे मालूम हुआ दीदी? मालूम होता है कि भास्कर बाबू ने अपना यह छिपा रहस्य चुपचाप तुमसे बतला दिया है।

एना की आँखों में एक प्रकार की परिहास की आभा चमक गई, उसकी आँखें उद्दीप्त हो उठीं।

मेना ने उसका ढंग देखकर हँसकर कहा—नहीं भाई, तुझे एकदम हताश करना पड़ रहा है; तू जिस कवित्व की कल्पना कर रही है वह मेरे भाग्य में बिलकुल नहीं लिखा है। मैं अभी पिताजी से सुनकर चली आ रही हूँ।

एना ने हँसकर उत्तर दिया—आहा दीदी, तुम्हें तो बड़ा अफ़सोस हुआ। ऐसा उत्तम संवाद तुम भास्कर के मुँह से नहीं सुन सकीं? जान पड़ता है, तुमने पहले ही कहीं से यह खबर पा ली थी, नहीं तो बताओ कि शङ्कर शर्मा के लेखों के प्रति तुम्हारा इतना पक्षपात होने का कारण क्या है?

जिस समय इस कमरे में मेना और एना में भास्कर को लेकर यह हँसी-मज़ाक चल रहा था, उस समय दूसरे कमरे में राजाबहादुर ने एक बात कहकर भास्कर का मन म्लान कर दिया। मेना के जाते ही वे भास्कर से बोले—तुम मुझसे वेतन क्यों नहीं लेते, यह क्या मैं जानता नहीं बेटा? तुम सोचते हो कि इस दिवालिये व्यक्ति से वेतन लेकर उसे और अधिक क्यों डुबाऊँ? लेकिन जो व्यक्ति ऋण से बाल-बाल बँध चुका है, उसकी तुम कितनी सहायता कर सकोगे बेटा?

भास्कर ने मलिन मुँह से उत्तर दिया—गिलहरियों ने भी तो सेतुबन्ध में रामचन्द्र की सहायता करने का यत्न किया था, और उनके उस यत्न की रामचन्द्र ने उपेक्षा नहीं की।

राजाबहादुर ने भी मलिन मुँह से कहा—न बेटा, मैं तुम्हारे स्नेह-दान की उपेक्षा अथवा अवहेलना नहीं कर रहा हूँ। तुम गिलहरियों की अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ हो और मैं रामचन्द्र की तुलना में कितना निकृष्ट, क्षुद्र हूँ। मैं भला कभी तुम्हारी सहायता का अनादर कर सकता हूँ? परन्तु तुम्हारी यह सहायता किस प्रकार की है, जानते हो बेटा? एक बार भार से लदी हुई एक नाव डूब रही थी, यह देखकर एक स्त्री ने अपनी गठरी उस नाव से उठाकर सिर पर रख ली और उसने नाव का भार कम करना चाहा। तुम्हारा प्रयत्न भी उसी प्रकार वृथा है, यद्यपि उद्देश महत्त्वपूर्ण है। आज मेरी जमींदारी के मैनेजर का पत्र आया है। उसने लिखा है कि लगान बिलकुल नहीं वसूल हो रहा है। पाट की दर बिलकुल घट गई है, रैयत के पास अपने ही खाने-पहनने को नहीं है, ऐसी हालत में वह जमींदार को लागन कहाँ से अदा करे? इस बार सारी जमींदारी को विक्रय किये बिना सरकारी मालगुजारी देने अथवा ऋणमुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। इस मकान के बन्धक के रुपयों के लिए कल वह मारवाड़ी महाजन आकर कैसा कड़ा तक़ाज़ा कर गया है, यह तो तुम जानते ही हो।

भास्कर अपना म्लान और विषण्ण मुँह अवनत किये बैठा रहा, कोई उत्तर अथवा आशा-आश्वासन देने योग्य बात उसे ढूँढ़े नहीं मिली।

इसी समय राजाबहादुर के कमरे के द्वार पर किसी के पैरों की आहट मालूम पड़ी। राजाबहादुर और भास्कर दोनों ने उस ओर देखा। भास्कर किवाड़ की ओर पीठ किये बैठा था। उसने मुँह फिराते ही देखा, मेना उस कमरे की ओर ही आने को थी; परन्तु कमरे में उसे देखकर वह लौटी जा रही थी। भास्कर उसी क्षण जल्दी से उठकर कमरे से बाहर चला गया।

भास्कर को चला गया देखकर मेना ने फिर लौटकर अपने पिता के कमरे में प्रवेश किया। उसने कमरे में आते ही देखा कि उसके पिता का मुँह अत्यन्त म्लान हो गया है, उनकी आँखों में दुश्चिन्ता की घनी

छाया दिखाई पड़ रही है। वह धीरे-धीरे अपने पिता के पास गई और उनके सिर पर हाथ फेरती हुई स्निग्ध स्वर से बोली—तुम्हारा मुँह इतना विषाद-युक्त क्यों हो गया है बाबू जी? तुम्हें क्या हो गया है?

राजाबहादुर ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—कुछ तो नहीं हुआ है बेटी! बूढ़ा हुआ, सदा प्रसन्न कैसे रह सकता हूँ? न जाने कितनी व्यर्थ की दुर्भावनाओं से मन भारी हो जाता है।

जिस प्रकार मा अपने छोटे-से बच्चे को सान्त्वना देने के लिए अपनी कोमल बातों से भुलाकर वास्तविक बात जान लेना चाहती है, उसी प्रकार के भाव से मेना बोली—हम लोग तुम्हारे लड़के होते तब तो तुम अपनी चिन्ताओं का भार हमें अवश्य देते पिता! हम लड़की होकर जन्मी है, इसी लिए क्या तुम हमें दूर ठेलकर रखना चाहते हो? लड़कियाँ एक दिन पराये घर में चली जाती हैं, इसी लिए क्या लड़कियाँ इतनी पराई हैं? मैं तो तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकूँगी। फिर तुम मुझे इतनी पराई क्यों समझ रहे हो?

मेना की बात सुनकर राजाबहादुर की दोनों आँखें सजल हो उठीं। वे विषादमग्न स्वर से कहने लगे—नहीं बेटी, भला तुम लोगों को मैं कभी पराई समझ सकता हूँ? तुम दोनों ही तो मेरी सर्वस्व हो! तुम लोग लड़कियाँ ठहरीं, तुम्हें अपनी चिन्ताओं में संयुक्त करके अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहता।

मेना ने कातर भाव से कहा—हम लोग क्या तुम्हारी किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकतीं पिता?

राजाबहादुर अल्पक्षण चुप रहकर, सोचकर बोले—बेटी, जो बात तुम लोग आज नहीं तो कल दूसरों से सुन लोगी वह चाहे जितनी कठोर हो उसे तुम लोगों से छिपा रखने में कोई लाभ नहीं है। अपनी सारी ज़मींदारी और यह मकान बिकने ही को है। मुझ पर जो ऋण लद गया है उससे उन्मुक्त होने का और कोई उपाय नही है। महाजन लोग बड़ा कड़ा तक़ाज़ा कर रहे हैं।

मेना बोली—यह मैं पहले से ही जानती हूँ; परन्तु तुम्हारे मन को कष्ट होगा, यह सोचकर इस सम्बन्ध में तुमसे, कहते-कहते रुक जाती हूँ।

.राजाबहादुर ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—तू यह बात पहले से ही जानती है? तुझे कैसे मालूम हुई यह?

मेना का मलिन मुँह मेघपूर्ण सन्ध्या में मेघ को फाड़कर निकले हुए अस्ताचल पर विराजमान सूर्य की आभा से युक्त आकाश की तरह लज्जा से लाल हो उठा। वह मृदु तथा लज्जित स्वर से बोली—मुझे भास्कर बाबू ने बताया था। आपने हम दोनों बहनों को जो जेवर दिये हैं और हमारे नाम कम्पनी के जो कागज़ और कैश सार्टिफ़िकेट खरीदे हैं तथा हम दोनों के नाम बैङ्क में जो रुपये जमा हैं, उन सबको एकत्र करने पर प्रायः एक लाख रुपया मिल जायगा। इन रुपयों से कुछ ऋण चुकाकर आप अपने महाजनों को थोड़े दिन के लिए तो ठहरा ही सकते हैं। उसके बाद सावधानी से समझ-बूझकर व्यय कम करने पर सारा ऋण शीघ्र ही अदा कर दिया जा सकता है।

राजाबहादुर ने दुःखित होकर कहा—तुम लोगों को तो मैं कुछ दे नहीं सका। मेरे पास कुछ रहता ही नहीं है। जब तुम दोनों के विवाह का समय आयेगा तब जाने रुपये संग्रह कर सकूँ या न कर सकूँ, यही सोचकर पहले से ही तुम दोनों के लिए किसी तरह मैंने थोड़ी-सी रक़म जमा कर ली है। लोग समझते हैं कि मै तुम लोगों के नाम बैनामा करके महाजनों को धोखा दे रहा हूँ। इसलिए लोग मेरी निन्दा करते हैं। तिस पर भी मै विचलित नही होता। तुम दोनों को तो मुझे सत्-पात्र देखकर सौंपना है।

मेना भी दुःखित होकर बोली—यदि तुम्हारी कन्याओं में ऐसा कोई गुण न हो जिसके कारण कोई सत्पात्र उन्हें अपनी इच्छा से ग्रहण करना न स्वीकार करे तो पात्रों को घूँस देकर उनके पल्ले बाँधने की चेष्टा करने में क्या आपकी लड़कियों का अपमान नही होगा? अपनी

कन्याओं की सद्गति के लिए आपको रुपये इकट्ठा करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। आप स्वच्छन्दतापूर्वक उन रुपयों से अपना ऋण अदा कर दें।

मेना पिता को और कोई बात कहने का अवसर दिये बिना कमरे से बाहर चली गई।

वह अपने कमरे में जाकर दीवार में लगा हुआ लोहे का सन्दूक़ खोलकर ज़ेवरों के ढेर के ढेर और उनसे भरे हुए डिब्बे निकालने लगी। यह देखकर एना ने हँसते-हँसते पूछा—दीदी, ये सब गहने क्यों निकाल रही हो, कहाँ जाओगी? अभिसार में? परन्तु इतने सब गहने इकट्ठे मत पहन लेना, नहीं तो तुम्हारे ही नूपुर तुम्हारे ही चरणों में रुनझुन रुनझुन बजेंगे!

मेना ने बहन के प्रफुल्ल मुँह की ओर अपना म्लान मुँह फेरकर कहा—पिताजी अपना ऋण अदा करने की दुश्चिन्ता से व्याकुल हैं। इसीलिए मैं उन्हें अपना सब ज़ेवर और रुपया देने जा रही हूँ। इनसे उनकी थोड़ी-सी भी चिन्ता तो कम कर सकूँगी!

एना का भी प्रसन्न मुँह मलिन हो गया। परन्तु वह उत्साहित स्वर में कह उठी—दीदी, मुझे भी तो पिताजी ने तमाम ज़ेवर और रुपयों के काग़ज़ दिये हैं। मैं भी यदि उन्हें वे सब दे दूँ तो उनकी बहुत-सी चिन्ता कम हो जायगी।

मेना का मुँह उज्ज्वल हो उठा। उसने आग्रह के साथ पूछा—तू उन सब वस्तुओं का मोह छोड़ देगी? तेरे मन में उससे कष्ट तो नहीं होगा?

एना के दोनों ओंठ अभिमान से फूल उठे। वह भर्राई हुई आवाज़ से बोली—दीदी, पिताजी को क्या तुम्हीं अकेली चाहती हो? ये सब धातु-प्रस्तर और काग़ज़ क्या उनकी अपेक्षा भी मुझे अधिक प्रिय हैं? तुम मुझे इतनी हृदयहीन समझती हो दीदी!

एना की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मेना एना की आँखों में आँसू देखकर प्रसन्न हुई। तुरन्त उठकर उसने अपने दोनों बाहुओं से उसे छाती से लगा लिया और उसकी आँखें पोंछे बिना, पितृस्नेह से परिप्लावित अश्रुधारा देखती हुई, बोली—तेरा यह त्याग देखकर मैं बहुत सुखी हुई एना। तू अभी लड़की ठहरी, इसी लिए मैं तुझसे साहस करके कह नहीं सकी। और इसके अतिरिक्त पिताजी कहते हैं कि ये जेवर हम लोगों के विवाह में दहेज के काम आयेंगे, नहीं तो सत्पात्रों के हाथ हम दोनों को सौंपना उनके लिए कठिन हो जायगा।

मेना ने अपने चुम्बनों से एना की आँखों के आँसुओं को अपने ओठों में लगाकर पोंछ डाला।

एना बहन के स्नेह-आदर से प्रकृतिस्थ होकर अपनी स्वाभाविक तीक्ष्णता के साथ बोली—जो केवल हमारे दहेज के रुपयों के लोभ से दयापूर्वक हमें स्वीकार करके धन्य करने को प्रस्तुत हो, ऐसे धनलोलुप निम्नवृत्ति के व्यक्ति को मैं स्वामी के रूप में स्वीकार करूँगी, तुम अथवा पिताजी क्या मुझे पहचानते हुए भी यह बात सोचते हे? क्या मेरा अपना कोई स्वकीय मूल्य नहीं है? मुझमें क्या ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए कोई मेरे ही लिए मुझसे प्रणय-प्रार्थना करेगा? यदि ऐसा न हो तो क्या मैं जीवन भर इसी प्रकार कुमारी नहीं रह सकूँगी? तुम स्वयं किस साहस पर अपनी सारी सम्पत्ति पिताजी को देने को प्रस्तुत हो? मैंने जो बात कही है, उसी प्रकार की बात क्या तुम भी नहीं सोच रही हो दीदी?

मेना ने कहा—ठीक कहती हो भाई! मैं भी ठीक यही बात अभी पिताजी से कहकर आई हूँ। तो चलो, हम दोनों बहनें साथ ही चलकर पिताजी को अपना सर्वस्व देकर प्रणाम करें। पिताजी निश्चिन्त हो जायँ, हम भी उनकी कन्या होने की पात्रता पा सकें।

मेना और एना दोनों ने अपने सब जेवर और रुपयों के काग़ज-पत्र आदि चाँदी के दो थालों में सजा लिया। उसके बाद दोनों एक-एक

थाल अपने हाथों में लेकर अपने पिता के सामने उपस्थित हुईं। उन दोनों को देखकर राजाबहादुर की आँखें विस्मय और आनन्द से उज्ज्वल हो उठीं। उनके मुँह से कोई बात न निकल सकी। मेना और एना ने अपने पिता के पैरों के समीप दोनों थालों को रखकर प्रणाम किया और उनके पैरों की धूलि अपने मस्तक में लगा ली। उसके बाद मेना बोली––पिता जी, आपने ये सब खिलौने हम लोगों को दिये थे। अब हम बड़ी हो गई हैं, हम दोनों स्वेच्छा से और स्वच्छन्दतापूर्वक इन्हें आपको दे रही हैं। मैं एना की वस्तुएँ नही लेना चाहती थी, परन्तु इससे यह बहुत दुःखी हुई। इसके आँसुओं ने मुझे हरा दिया।

राजाबहादुर दोनों हाथों से दोनों कन्याओं को अपने समीप खींच कर बोले––तुम दोनों मुझसे इस तरह स्नेह करती हो बेटी जैसे मा अपने बच्चे को प्यार करती है। बेटी, अब अपने इस बूढ़े बच्चे को ये सब खिलौने दिये दे रही हो?

राजाबहादुर ने हँसने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। यह देखकर मेना और एना की आँखों से भी आँसू गिरने लगे।

कुछ देर तक चुप रहकर राजाबहादुर भर्राई हुई आवाज से बोले–जाऊँ, भास्कर को यह सुसंवाद बता दूँ। उससे हमारा कोई सम्पर्क नही है, तिस पर भी वह हमारी चिन्ता से दुर्बल हो गया है, उसके मुँह से हँसी नही निकलती, उसकी चिन्ताओं का अन्त नही है।

मेना की ओर देखकर एना कुछ मुस्कराई। मेना का मुँह भी आनन्द और लज्जा से उज्ज्वल हो उठा।

राजाबहादुर बोले––आज बृहस्पति के दिन कहीं नहीं जाऊँगा। कल जाकर सब महाजनों का थोड़ा-थोड़ा रुपया चुका दूँगा। लेकिन बेटियो, तुम लोगों का सर्वस्व लेकर तुम्हें निःस्व बनाकर अपनी मान-रक्षा करने में मेरा हृदय रो उठता है।

एना कह उठी––हम लोगों को आपने दिया था, हम लोग अब

अपनी इच्छा से आपको अपनी वस्तुएँ दे रही हैं। आपने न तो माँगा ही है, न दबाव डालकर ही ले रहे हैं। तब आपके दुखी होने की कौन-सी बात है ?

राजाबहादुर ने कहा—जाऊँ, भास्कर को ख़बर दे दूँ। वह सुनकर बहुत ख़ुश होगा।

राजाबहादुर सब ज़ेवरों और काग़ज़-पत्रों को लोहे के सन्दूक़ में बन्द करके रखने लगे। मेना और एना प्रसन्न मुख से पिता के कमरे से बाहर निकल आईं। एक महान् त्याग और पितृवात्सल्य का परिचय देने के कारण उनका मन मधुमय हो उठा था।

आठवाँ परिच्छेद

राजाबहादुर और पुण्डरीकाक्ष

दूसरे दिन दोपहर को राजाबहादुर स्वयं एनाम्मेना के जेवर लेकर अपने जौहरी हीरालाल ठाकुरदास की दूकान में जा पहुँचे।

उस समय पुण्डरीकाक्ष भी उसी दूकान पर जाकर अपने लिए सोने के बटनों का सेट और एक स्कार्फपिन खरीद रहा था। वह मारवाड़ी ढङ्ग की बड़े बड़े हीरों से जड़ी हुई सोने की साँकल में गुँथी हुई कमीज़ के बटन, बुलडाग के अत्यन्त कुत्सित मुँहवाली एक पिन और एक चाबुक-सहित सवार के मुँहवाली पिन छाँटकर उन्हें देखने-भालने में निमग्न था।

जो दूकानदार पुण्डरीकाक्ष को ये सब वस्तुएँ दिखा रहा था वह राजाबहादुर के दूकान में प्रवेश करते ही अलग हटकर खड़ा हो गया। वह आदर-पूर्वक कह उठा—आइए राजासाहब आइए!

कौन-से राजासाहब आये हैं, यह देखने के लिए पुण्डरीकाक्ष मुँह फेरकर खड़ा हो गया। उसके गले में पीड़ा हो रही थी, इसलिए वह गला फिराकर देख नहीं सकता था। पीछे की कोई चीज़ देखनी होती तो उसे एक-दम घूमकर खड़ा होना पड़ता था। वह अकस्मात् घूमकर खड़ा हो जायगा यह बात राजाबहादुर नहीं जानते थे और वे उसके ठीक पीछे खड़े थे। पुण्डरीकाक्ष ने घूमते समय अपने पैर से राजाबहादुर का पैर कुचल दिया। उसने देखा तो सामने श्रीमती मेनादेवी के पिता राजाबहादुर उपस्थित थे। उसने तत्क्षण दाँतों में जीभ दबाकर भूमिष्ठ होकर राजाबहादुर की चरणरज लेने के लिए हाथ बढ़ाया। राजाबहादुर का पैर कुचल देने के कारण लज्जा से और गुरुजन के

सम्मुख अपराध के भय से संकुचित होने पर भी वह यह सोचकर बहुत प्रसन्न हो उठा कि चलो, इस बहाने राजाबहादुर से परिचय और वार्ता करने का सुयोग मिल गया।

पुण्डरीकाक्ष को देखकर राजाबहादुर को ऐसा लगा, मानो यह कोई परिचित व्यक्ति हैं, इसे उन्होंने अवश्य कहीं अनेक बार देखा है, परन्तु कहाँ देखा है, यह वे निश्चय न कर सके। ऐसे अत्यन्त अल्प-परिचित व्यक्ति को अपने पैरों की धूलि देने के लिए जमीन में अवनत होकर हाथ बढ़ाते देखकर उन्होंने कुछ पीछे हटकर कहा—ठहरिए, ठहरिए, आप यह क्या कर रहे हैं ? मेरे पैर क्यों छू रहे हैं !

पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के पैरों अर्थात् जूतों की धूलि लेकर माथे में लगाता हुआ उठ खड़ा हुआ और दाँत निकालकर बोला—आप गुरुजन हैं। आपके पैरों की धूलि क्यों न लूँ ?

राजाबहादुर तो अवाक् रह गये। इस व्यक्ति को वे पहचान नहीं सके, वे किसी प्रकार याद ही नहीं कर सके कि उन्होंने उसे किस प्रसङ्ग में कब और कहाँ देखा है। परन्तु फिर वह उन्हें गुरुजन कहता है। उन्होंने लज्जित और विस्मित दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर अप्रस्तुत होकर हँसते-हँसते कहा—मुझे याद नही आ रहा है कि मैंने आपको कहाँ देखा है। बूढ़ा हो गया हूँ, अब सब बातें याद तक नहीं रख पाता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष हर्ष से गद्गद हो उठा। वह राजाबहादुर के समान सम्मानित ज़मींदार के साथ एक ही मकान में उनके सम्मुख खड़ा होकर बातें करने का अपना परम आकांक्षित सुयोग पा गया और अब उनसे परिचित होने का भी सौभाग्य प्राप्त करने जा रहा हूँ यह समझकर वह आनन्दित होकर बोला—आप मेरे समान साधारण व्यक्ति को कैसे पहचान सकेंगे ? परन्तु मैं आपको पहचानता हूँ। कलकत्ते में ऐसा कौन है जो आपको नहीं पहचानता ? आप पुण्यश्लोक व्यक्ति हैं। मैं आपके महल के सामने ही रहता हूँ। वहीं मेरा घर है।

राजाबहादुर ने कहा—ओह, इसी लिए तो आप जान-पहचान के-से व्यक्ति प्रतीत होते थे। परन्तु कलकत्ता शहर की यही खूबी है कि मकान के सामने के पड़ोसी को भी पहचानने का कोई सुयोग नहीं प्राप्त होता। आपका शुभ नाम ?

पुण्डरीकाक्ष ने कृतार्थ और धन्य होकर दाँत निकालकर दीन-विनीत भाव से उत्तर दिया—इस अधम का नाम श्रीपुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड है। मैं आपके मकान के फाटक के ठीक सामने के मकान में ही रहता था। इस समय उस मकान को गिरवाकर नये ढंग से बनवा रहा हूँ। इसी लिए आज-कल वहाँ से हटकर किराये के एक दूसरे नज़दीक के ही मकान में रहने लगा हूँ। जल्दी ही उस नये मकान में गृह-प्रवेश करूँगा।

पुण्डरीकाक्ष के मन में जबर्दस्ती अपने वैभव का परिचय देने का आग्रह देखकर राजाबहादुर हँसते-हँसते बोले—ओह, वह जो सङ्गमरमर का प्रकाण्ड महल तैयार हो रहा है वही आपका मकान है ?

राजाबहादुर को विस्मित देखकर पुण्डरीकाक्ष अधिक उत्फुल्ल होकर बोला—वह क्या महल कहा जा सकता है ? किसी प्रकार बनवाये ले रहा हूँ, जमीन तो थोड़ी ही है, फिर भी किसी तरह एक साफ़-सुथरा मकान बन जायगा। उसका नाम क्या रक्खूँ, आजकल यही सोच रहा हूँ।

राजाबहादुर ने कुछ हँसकर कहा—सोच-विचार कर कोई एक नाम रख लीजिए।

राजाबहादुर पुण्डरीकाक्ष को अपने ऐश्वर्य का अधिक अहङ्कार प्रकट करने का अवसर न देकर दूकानदार से बोले—इन सूटकेसों में कुछ जेवर हैं, इन्हे आप शीघ्र ही बेच दीजिए। लड़कियाँ अब ये सब गहने पसन्द नहीं करतीं, इनके बदले में वे नक़द रुपये चाहती हैं। मैं सूची बना लाया हूँ। उससे आप सब वस्तुएँ मिलाकर मुझे एक रसीद दे दीजिए।

राजाबहादुर क़र्ज़ अदा करने के लिए अपनी कन्याओं का ज़ेवर बेच रहे थे, इस दीनता की लज्जा को छिपाने के लिए उन्हें जब झूठ

बोलना पड़ा तब उनका मुँह मलिन हो गया और स्वर अस्पष्ट होकर काँप उठा। पुण्डरीकाक्ष ने यह बात भाँप ली। वह लोगों से अधिक दिनों से यह काना-फूसी सुन रहा था कि राजाबहादुर ऋण से लद गये हैं और ऋण के ही कारण उनकी सारी ज़मींदारी और मकान बिकने ही को हैं। राजाबहादुर के नौकर-चाकरों से पूछ-ताँछकर उसने इस बात की सत्यता भी प्रमाणित कर ली थी। उसकी बुआ जब प्रतिमास मेना के पास सहायता माँगने जाती थी तब उसे भी इस बात का कुछ आभास मिला था, और उसे अपनी बुआ से भी यह बात मालूम हुई थी। आज अपनी आँखों से राजाबहादुर को ज़ेवर बेचते देखकर उसका यह सन्देह दृढ़ और बद्धमूल हो गया। वह इस प्रकार अपने बटन और स्कार्फ़पिन पसन्द करने में निमग्न हो गया, जैसे राजाबहादुर की ओर अब उसका बिलकुल ध्यान ही नहीं है परन्तु उसका मन और छिपी दृष्टि राजाबहादुर की बातों और गहनों की ओर ही लगी थी। राजाबहादुर के पीछे वर्दी पहने कई बेयरे और दरबान बड़े-बड़े सूटकेस लादे खड़े थे। उनके आदेश से उन सबने सूटकेसों को एक टेबुल पर रख दिया और एक किनारे खड़े हो गये। राजाबहादुर ने जेब से चाभियों का गुच्छा निकालकर एक-एककर सूटकेसों को खोल दिया और उनके ढक्कन उठा दिये। पुण्डरीकाक्ष ने छिपी निगाह से देखा कि कुछ सूटकेसों में सोने-चाँदी के बर्तन, इत्रदान, गुलाबदान, हुक्के की नलियाँ, सरपोश चम्मच, गिलास, लोटे, थाल इत्यादि और शेष में सोने-चाँदी और जवाहरात के ज़ेवर हैं।

राजाबहादुर अपने मकान से ही सारी वस्तुओं की दो सूचियाँ बनवा लाये थे। यह देखकर दूकानदार ने कहा—हम लोग इस सूची से मिलाकर ही इनमें से एक सूची में अपने दूकान की सील-मुहर लगाकर हस्ताक्षर किये दे रहे हैं। यही रसीद बन जायगी। ऐसा करने से आपको अधिक देर तक ठहरना भी नहीं पड़ेगा।

राजाबहादुर यत्न से सञ्चय की हुई अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तुओं

को सजल नेत्रों से देख रहे थे। उनके मुँह से कोई उत्तर न निकल सका, सिर हिलाकर उन्होंने अपनी सम्मति दे दी।

राजाबहादुर अपनी वस्तुओं की रसीद लेकर चले गये। जाते समय उन्होंने संकुचित होकर पुण्डरीकाक्ष को नमस्कार किया और क्षीण स्वर में कहा—हम लोग पड़ोसी हैं और परस्पर परिचित भी हो गये हैं तो अब कभी कभी भेंट तो होती ही रहेगी।

राजाबहादुर मानो कोई दुष्कर्म करते समय पुण्डरीकाक्ष के सामने पकड़ लिये गये हों, इस प्रकार के भाव से सामने खड़े होने में हिचकिचाते हुए वहाँ से शीघ्र ही चल दिये। एक अत्यन्त निकट के पड़ोसी ने उन्हें अपनी सम्पत्ति बेंचते हुए आँखों देख लिया, वह अब इस बात का आस-पास प्रचार कर देगा, अपनी इस लज्जा और अपमान की आशङ्का से वे व्यस्त हो उठे थे। इसी लिए वे पुण्डरीकाक्ष को अधिक शिष्टाचार-पूर्वक यह कह कर बुला तक न सके कि आप किसी दिन मकान पर आने की कृपा कीजिएगा, न यही कह सके कि मैं ही किसी दिन आपके घर पर आऊँगा अथवा आपका नया मकान देखने आऊँगा।

राजाबहादुर ने दुबारा भेंट करने के लिए नहीं बुलाया, पुण्डरीकाक्ष को यह समझने में देर न लगी। उसने सोचा कि यह केवल वैभवशाली कुल में उत्पन्न होने का अहङ्कार है। परन्तु भला वह मेना के पिता से कैसे रुष्ट हो सकता था?

राजाबहादुर के जाते ही पुण्डरीकाक्ष ने जौहरी से कहा—देखिए, राजाबहादुर की सब वस्तुएँ मैं ख़रीद लूँगा। उन्हें मैं आपको और किसी के हाथ न बेंचने दूँगा। मैं अभी बयाना दिये देता हूँ। परन्तु ये सब वस्तुएँ मैं चाहता हूँ, इनमें से एक भी वस्तु और कोई न ले सकेगा। कोई वस्तु दूसरे के हाथ में न चली जाय। आप मूल्य ठीक करके मुझे सूचित कर दीजिएगा। मैं आकर ख़रीद ले जाऊँगा अथवा आपही अनुग्रहपूर्वक इन सब वस्तुओं को मेरे यहाँ भेज दीजिएगा। जो उचित मूल्य हो वही लगाइएगा, उसमें कोई कमी करने की आवश्यकता नहीं है। जेवर बेंचने

का कमीशन मैं ही दूँगा। राजाबहादुर के रुपयों में से कुछ कम न कीजिएगा।

दूकानदार अवाक् रह गया। कुछ ही क्षण पहले राजावहादुर से उसकी जो बातचीत हुई थी उससे उसे अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि उन दोनों में जान-पहचान तक नही है। फिर भी यह व्यक्ति उनके प्रति इतना दयार्द्र क्यों दिखाई पड़ता है ? दूकानदार अपन विस्मय का उचित कारण न समझ सका। उसने कहा—जो आज्ञा। हम परसों-नरसों आपको इन सब वस्तुओं का मूल्य सूचित कर देगे और उसी दिन इन्हें आपके यहाँ भेज देंगे।

पुण्डरीकाक्ष ने प्रसन्न होकर उसी दम जेब से चेक-बुक निकाला और बयाने के रूप मे पाँच सौ रुपये का एक चेक काटकर दूकान-दार के हाथ में रख दिया। वह इन रुपयों की एक रसीद, खरीदे हुए बटन और पिन लेकर अपने प्रकाण्ड डमलर कार में जा बैठा।

पुण्डरीकाक्ष ने मोटर खरीद लिया था। वह गैरेज के तैयार होने की राह न देख सका। उसके पास जब रुपया था, जब वह मोटर खरीद सकता था और अपनी गाड़ी मे बैठकर मेना के मोटर का अनुसरण कर सकता था तब वह वृथा समय नष्ट करके इस सुख से वंचित क्यों रहता ? वह नित्य सवेरे अपने मकान के सामने मोटरकार लेकर खड़ा रहता और एना-मेना के निकलते ही उनके मोटर के पीछे-पीछे अथवा साथ ही साथ चलने लगता। तीसरे पहर भी वह एना-मेना के कालेज के सामने धरना देता रहता और उनका मोटर बाहर निकलते ही उसका साथ पकड़ता। परन्तु वह अपने मोटर में अत्यन्त गम्भीर और मौन होकर बैठा रहता और मेना की ओर ऐसी छिपी दृष्टि से बीच-बीच में सहसा देख लेता, जिससे दोनों बहनें उसकी यह चोरी पकड़ न लें। परन्तु एना-मेना को यह जानने को कुछ बाक़ी नही रह गया था कि उसका मोटर नित्य उनका अनुगमन करता हुआ क्यों चक्कर काटा करता है। उसका यह दैन्य देखकर एना खूब हँसती और इस बात को लेकर

दोनों बहनों में खूब चर्चा भी चलती। परन्तु पुण्डरीकाक्ष को इस बात का ज़रा-सा आभास तक नहीं था। वह मेना के दर्शन करने और उसके साथ-साथ चल सकने के अधिकार से ही सुखी था। पहले-पहल उसे अपने शोफ़र से एना-मेना के मोटर का अनुसरण करने को कहने में सङ्कोच मालूम पड़ता था। इसलिए वह मेना के कालेज की तरफ़ जाते अथवा वहाँ से लौटते वक्त कहता——कार्नवालिस स्ट्रीट पर सीधे चलो अथवा सीधे घर की ओर चलो। इस प्रकार किसी दिन तो वह मेना के आगे निकल जाता और किसी दिन यदि मेना का मोटर दूसरे रास्ते से निकल जाता तो वह उसके पीछे अपना मोटर न कर पाता। अतएव उसने खुद ही मोटर चलाना सीखकर लाइसन्स ले लिया। अब वह अकेले ही बैठकर मोटर चलाने लगा। अब उसे किसी से लज्जित होने या मेना को दृष्टि-पथ से दूर रखना नहीं पड़ता था।

भगवान् जब देते हैं, छप्पर फाड़कर देते हैं। पुण्डरीकाक्ष के मामले में यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हुई। वह तीस रुपये मासिक का बाबू था, परन्तु अपना लाटरी का टिकट बेचकर एक दिन में पाँच लाख रुपये पा गया। इतने से ही उसके भाग्योदय की इतिश्री नहीं हुई। उसके दो भाई थे——एक तो बरमा में व्यापार करता था, दूसरा अमेरिका में सन्यासी था। संयोगवश दोनों का एक ही साथ देहावसान हो गया। वे दोनों अपनी सम्पत्ति का विल भाई और बहन के नाम कर गये थे। दोनों विलों की सूचना पुण्डरीकाक्ष को मिली। अब वह उनका प्रोवेट लेकर उस सम्पत्ति पर अधिकार कर सकता था। बहन अथवा भाई के मर जाने पर एक का अंश दूसरे को मिलता है। अतएव पुण्डरीकाक्ष दोनों भाइयों की सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन गया।

पुण्डरीकाक्ष समझ नहीं सका कि वह किस प्रकार इन दूरस्थ देशों की सम्पत्ति का प्रबन्ध करे। इसलिए उसने किसी एटर्नी से इस विषय में सलाह लेने की बात सोची। पहले उसने स्थिर किया कि

किसी अँगरेज़ एटर्नी से सलाह लेने पर सहज ही काम हो जायगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे राजाबहादुर के एटर्नी सत्यनिधन दे की याद आ गई। उसने सोचा—दे साहब को अपना एटर्नी बनाकर मैं समझूँगा कि इस प्रकार मेना से मैंने, अपना परोक्ष सम्बन्ध स्थापित कर लिया है।

सत्यनिधन दे के सम्मुख पहुँचकर उसने इस सम्बन्ध में सहायता माँगी। सत्यनिधन ने कहा—आप अपने काग़ज़-पत्र छोड़ जाइए, मैं कल देख रक्खूँगा। आप परसों-नरसों आइएगा। अमेरिका के कंसल से परामर्श लेकर वहाँ का प्रबन्ध कर दूँगा। रंगून का केस तो सहज ही हो जायगा। वहाँ मेरे एक भतीजे हाईकोर्ट के एडवोकेट हैं, वे आसानी से ही प्रोबेट दिला देंगे। उन्हें लिख दूँगा।

पुण्डरीकाक्ष सत्यनिधन के कमरे से निकल रहा था। दरवाज़े के समीप ही राजाबहादुर से उसकी भेंट हो गई। पुण्डरीकाक्ष ने तुरन्त अवनत होकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी पद-धूलि ली।

राजाबहादुर को उसका नाम स्मरण नहीं रहा था। पुण्डरीक को देखकर उन्होंने कहा—ओहो, आप यहाँ कैसे ? कोई काम था ? किसी से मामला-मुक़दमा लग गया है क्या ?

पूतितुण्ड की राजाबहादुर से इस दुबारा आकस्मिक भेंट के समय भी उन्हें उसके शरीर का धक्का लग गया। इससे उसने लज्जा और सङ्कोच से घबराकर उत्तर दिया—जी नहीं, मामला-मुक़दमा तो कोई नहीं है, कुछ सम्पत्ति आदि के विषय में सलाह लेनी थी।

कमरे के भीतर प्रवेश करते करते राजाबहादुर के मुँह से केवल इतना निकला—ओह!

बाद को पुण्डरीकाक्ष भी चुपचाप चला गया।

पुण्डरीकाक्ष को अपनी धन-सम्पत्ति आदि के परामर्श के लिए एटर्नी के मकान में आया देखकर राजाबहादुर सोचने लगे—यह व्यक्ति यथेष्ट धनशाली हो गया है, अभी तक उसका मकान बनना समाप्त ही नहीं हुआ है। ऐसी दशा में वह यहाँ ऋण लेने के सम्बन्ध

में कदापि नहीं आ सकता। तब क्या कोई सम्पत्ति मोल लेने के विषय में आया था? यदि यह मेरी जायदाद बन्धक रख लेता तो काम बन जाता, पुराने महाजनों को रुपया पटा दिया जाता और नया क़र्ज़ देने के कारण यह जल्दी तक़ाज़ा भी न करता। इस प्रकार मेरी जायदाद कुछ दिनों तक और सुरक्षित रह जाती। सत्यनिधन से पूछूँगा। शायद वे इसका कोई प्रबन्ध कर सकें।

राजाबहादुर ने सत्यनिधन के पास पहुँचते ही उनसे पूछा—भाई सत्य, यह जो व्यक्ति अभी बाहर गया है उसका नाम क्या है?

सत्यनिधन ने उत्तर दिया—पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड। उसे तुम नहीं पहचानते? उसने तो बताया है कि वह तुम्हारे मकान के ठीक सामने ही रहता है। उसने यह भी कहा है कि तुम्हारा एटर्नी होने के कारण ही वह मेरे पास आया है। वह तुम्हारे मकान के सामने ही अपना नया मकान बनवा रहा है। उसके मस्तिष्क में कुछ विकार-सा प्रतीत होता है। नहीं तो इस प्रकार की चमकीली मारवाड़ी पोशाक कैसे पहनता? कैसी बीभत्स रुचि है इसकी! अवश्य ही कोई देहाती उजड्ड है।

राजाबहादुर ने सत्यनिधन की इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अन्यमनस्क होकर पूछा—यह तुम्हारे पास क्यों आया था? उसकी भी दशा क्या मेरी ही-सी है?

सत्यनिधन ने कहा—नहीं, आदमी वह भाग्यशाली है। परदेश में दो भाई निःसन्तान मर गये हैं। उनकी सारी सम्पत्ति इसे मिलेगी।

राजाबहादुर ने पूछा—कुल कितने की सम्पत्ति होगी?

सत्य निधन ने उत्तर दिया—होगी लगभग तीन लाख की।

राजाबहादुर ने पुनः पूछा—क्या मेरी जायदाद उसके पास गिरवी नहीं रक्खी जा सकती? ऐसा ही जाय तो पुराने महाजनों के तक़ाज़ों से कुछ दिनों के लिए छुट्टी मिल जाय।

सत्यनिधन ने कहा—उसे तुम बेवक़ूफ़ न समझो। फिर भी मैं

उससे कहूँगा कि तुम्हें अपना रुपया तो किसी न किसी काम में इन-वेस्ट करना ही होगा। ज़मींदारी गिरवी रखना सबसे अधिक सुरक्षित इनवेस्टमेंट है। मैं प्रयत्न करूँगा।

राजाबहादुर बोले—देखिए, मैंने लगभग एक लाख रुपया इकट्ठा कर लिया है। सोचता हूँ कि इन रुपयों से मकान छुड़वा लूँ। और इस वर्ष की सरकारी मालगुज़ारी अदा कर दूँ। तुम क्या कहते हो?

सत्यनिधन ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—इतने रुपये तुम कहाँ से पा गये?

राजाबहादुर ने लम्बी साँस लेकर उत्तर दिया—मेरी दुश्चिन्ता से द्रवित होकर एना-मेना ने अपना नक़द रुपया और ज़ेवर मुझे दे दिया है। उसमें से कुछ ज़ेवर मैंने बेंच डाला है।

सत्यनिधन राजाबहादुर के दुःख से दुःखित होकर बोले—देखो, तुम यदि पुण्डरीकाक्ष-सरीखे धनशाली व्यक्ति से अपनी एक कन्या का विवाह कर दो तो बड़ा सुन्दर हो। ऐसी स्थिति में उसके पास तुम जो जायदाद बन्धक रक्खोगे उसके रुपये के लिए वह तक़ाज़ा न कर सकेगा। साथ ही यदि तुम उसे न छुड़ा सके तो भी तुम्हें कोई नुक़सान न होगा। क्योंकि तुम्हारी सम्पत्ति की अधिकारिणी तुम्हारी कन्या ही होगी। यदि यह पुण्डरीकाक्ष तुम्हारा सजातीय और अविवाहित हो तो, एक बार प्रयत्न करके देख लिया जाय। उससे तुम एना का विवाह कर सकते हो। वह बहुत ही धनी है।

राजाबहादुर को यह परामर्श पसन्द आया। उन्होंने सोचा, पुण्डरीक तो वयस्क हो चुका है। अब तक क्या वह अविवाहित ही होगा? उसकी मुखाकृति हास्योद्दीपक है, एना भी विनोदप्रिय लड़की है। क्या वह पुण्डरीक को पसन्द करेगी? फिर भी उन्होंने यह पता लगाने का मन ही मन सङ्कल्प किया कि पुण्डरीक ने अभी विवाह किया है या नहीं और यदि अविवाहित है तो वह विवाह करना चाहता है अथवा नहीं।

राजाबहादुर को मौन देखकर सत्यनिधन ने कहा--इस बात पर विचार करना। मैं भी परसों उससे तुम्हारी सम्पत्ति बन्धक रखकर अपना रुपया इनवेस्ट करने की बात कहूँगा।

राजाबहादुर ने कहा--यदि महाजन लोग तुम्हारे पास तक़ाज़ा करने आयें तो उन्हे कुछ दिनों के लिए समझा दीजिएगा। वह सम्पत्ति पा जायगा तब तो मेरी सम्पत्ति लेने में समर्थ हो सकेगा?

सत्यनिधन ने उत्तर दिया--मैं उन्हे समझा-बुझा लूँगा।

दो दिन के बाद पुण्डरीकाक्ष सत्यनिधन दे एटर्नी के यहाँ उपस्थित हुआ और कैलिफ़ोर्निया बैंक तथा रंगून के इम्पीरियल बैंक से अपना रुपया मँगाने और रंगून के लकड़ी के कारख़ाने को बेचने की व्यवस्था कर आया। कुछ दिनों के बाद उसने अपने भाइयो की सम्पत्ति के प्राय: तीन लाख रुपये प्राप्त कर लिये। उसने राजाबहादुर का पूरा ऋण चुका दिया और महाजनों से रुपयो की सही लिखवाकर सारे काग़ज़ लेकर अपने पास रख लिये।

नवाँ परिच्छेद

द्वारमोचन

पुण्डरीकाक्ष का मकान तैयार हो गया। उस मकान को स्वास्थ्यकर बनाने के लिए जो-जो बातें अपेक्षित थीं, उन सबकी व्यवस्था एक इंजीनियरिंग कम्पनी कर रही थी। एक दूसरी कम्पनी उस मकान में बिजली की बत्तियाँ और पंखे लगवाने जा रही थी। पलँगे, चारपाइयाँ, मेज़, कुर्सी, आलमारी, सोफ़ा और काउच आदि पहुँचाने का ठेका ले लिया था एक तीसरी कम्पनी ने। आर्ट-स्कूल और भारतीय शिल्प-परिषद् से कुछ चित्र भी मँगवा लिये गये थे जो दीवारों पर स्थान-स्थान पर लगाये जा रहे थे। ऐसे ही समय में एक नौकर ने आकर पुण्डरीकाक्ष को इस बात की सूचना दी कि सामनेवाली कोठी के राजा-बहादुर मिलने के लिए आये हैं।

पुण्डरीकाक्ष तो मानो एकाएक आकाश पर से ही गिर पड़ा। बाद को तुरन्त ही फिर उसके जी में आया कि मानो मैं दन से स्वर्गलोक के नन्दनवन में पहुँच गया हूँ और वहाँ पारिजात की शय्या पर लेटा हुआ हूँ। मस्तक में चक्कर आ जाने के कारण गिरते-गिरते सँभल कर वह स्टूल पर से उतर आया, किन्तु जो चित्र वह उस समय टाँग रहा था, वह हुक में अटक कर तिर्छा झूलने लगा। उसे यथास्थान लगाकर ठीक करने का अवसर पुण्डरीकाक्ष को नहीं मिला। विह्वल भाव से नीचे उतरकर वह राजाबहादुर के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके पदधूलि ग्रहण की। किस प्रकार और क्या कहकर उनका स्वागत करना चाहिए, यह निश्चय करने में समर्थ न हो सकने के कारण पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही दीनभाव से कहा—आप . . .आप . . .स्वयं आये हैं ?. . . .मुझे. . . . .बुलवा लेना ही काफ़ी था।

राजा बहादुर ने हँसते हुए कहा—तो इसमें हानि ही क्या है ? आपको न बुलवा भेजा, स्वयं ही चला आया। आप मेरे पड़ोसी ही तो हैं। अभी तक हम लोगों की भेंट-मुलाक़ात नहीं थी, इससे आज तक आना-जाना नही हो सका। अब हम लोग एक-दूसरे को जानने लगे हैं, अब आना-जाना लगा ही रहेगा। अब इस तरह तकल्लुफ़ करते रहेंगे तो काम ही न चल सकेगा।

राजाबहादुर की इस प्रकार की सुजनता और अभिमानहीन एवं सरल व्यवहार से पुण्डरीकाक्ष कृतार्थ ो गया। परन्तु उस समय भी उसके हृदय में इस प्रकार के भाव ने अपना आभास दिखला ही दिया कि हाय रे पैसा ! पहले भी तो इतने दिनों से मैं इन लोगों के पड़ोस में रहता आया हूँ। परन्तु किसी ने मेरी ओर दृष्टि तक नहीं डाली। आज जो यह संगमरमर की कोठी तैयार हो गई है, इसी ने अपनी ऊँची चूड़ा से इन लोगों की आँखें खोंचकर इन्हें इधर ताकने के लिए बाध्य किया है। क्षण भर बाद ही पुण्डरीकाक्ष को यह भी स्मरण हो आया कि हमारे सङ्कट के दिनों में मेना ने मेरी बुआ की बड़ी सहायता भी तो की है। राजाबहादुर से उसने कहा—अभी तक मैं इस मकान को ज़रा ठिकाने से सजा नहीं सका हूँ। जहाँ जो चीज़ पड़ी है, वहीं पड़ी है। आपको बैठालने योग्य कोई आसन भी अभी हमारे यहाँ नहीं आ सका है, किन्तु यदि ऊपर चलने का कष्ट स्वीकार करें तो आपके बैठने की कहीं कोई व्यवस्था कर सकूँगा।

राजाबहादुर ने कहा—चलिए, ऊपर ही चला जाय। मैं तो आपका मकान देखने आया हूँ। बैठने तो आया नहीं हूँ। आप मुझे अपना मकान दिखलाइए। कितना सुन्दर मकान बनवाया है आपने। जैसी इसकी डिजाइन है, वैसा ही सुन्दर बना है यह ! वैसी ही उत्तम इसकी सजावट भी है। कैसी अच्छी आर्टिस्टिक रुचि है आपकी। इस मकान का आपने नाम क्या रक्खा है ? उस दिन कोई नाम बतला तो रहे थे।

लज्जा से संकुचित होकर हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अभी तो हमने इसका नाम मर्मर-मन्दिर रख लिया है। इस नाम से केवल इसी अर्थ का बोध न होगा कि यह संगमरमर का मकान है, बल्कि इसमें यह अर्थ भी छिपा है कि यह मर्म अर्थात्, हृदय का मन्दिर है। कैसा है यह नाम? क्या अच्छा नहीं है?

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से कौतुक का अनुभव करते हुए हँसते-हँसते राजाबहादुर ने कहा—बड़ा उत्तम नाम है। देखता हूँ कि आपमें कवित्व भी है।

राजाबहादुर के मुँह से इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर पुण्डरीकाक्ष हर्ष से गद्गद हो उठा। उसने बत्तीसों दाँत बाहर निकालकर कहा—मुझमें भी कवित्व है! मैं भी आदमी में कोई आदमी हूँ और मुझमें कवित्व है!

राजाबहादुर ने हँसते हुए कहा—आप तो बड़े अच्छे आदमी हैं, प्रतिष्ठा के पात्र हैं। किन्तु सुना है कि शायद अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ। अब आप एक गृहलक्ष्मी ले आइए, और अपने इस मर्म के मन्दिर में उस लक्ष्मी की प्रतिष्ठा कर दीजिए।

यह कह देने के लिए कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं लाकर मेनादेवी को ही इस मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दूँ, पुण्डरीकाक्ष को बड़ा अच्छा अवसर मिल गया था। परन्तु अन्त तक वह ऐसा कहने के लिए आवश्यक साहस नहीं सञ्चित कर सका। उसने केवल इतना भर कहा—हाँ, मैं विवाह कर सकता हूँ, यदि मुझे रुचि के अनुकूल कोई कन्या मिल जाय। परन्तु कौन मुझे अपनी कन्या देने ही लगा और कौन ऐसी कन्या है जो मुझे पसन्द ही करने लगी।

राजाबहादुर ने कहा—आप यह कैसी बात कह रहे हैं? आप-जैसा सत्पात्र पाकर तो जिस किसी को भी कन्या का विवाह करना होगा, वही दौड़ पड़ेगा। परन्तु आप यदि यह चाहेंगे कि अपनी स्थिति और ऐश्वर्य्य के अनुसार ही दहेज भी मिले तब तो शायद बहुतों को ही पीछा खींचना पड़ेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मैं कुछ चाहता नहीं। मेरी केवल इतनी ही कामना है कि मुझे अपनी रुचि के अनुकूल एक गृहलक्ष्मी मिल जायँ। वे ही होंगी मेरे गृह की शोभा, मेरे हृदय की ऐश्वर्य्य, मेरे जीवन की सार्थकता और मेरे मर्म की अधिकारिणी।

राजाबहादुर ने सन्तुष्ट भाव से कहा—वाह, वाह, यही तो आप-जैसे धनवान् के उपयुक्त बात है। धन-सम्पत्ति तो भगवान् की कृपा से आपके पास बहुत है। कोई उत्तम कुल की सुशील और सुन्दरी पात्री मिल जाय, बस आप विवाह कर लीजिए। बड़ा उत्तम आपका विचार है, सर्वथा प्रशंसनीय है। सुनकर मैं बहुत सुखी हुआ हूँ। मेरे भी विवाह के योग्य एक कन्या है। उसके लिए मैं बहुत जगह वर खोज आया हूँ। अभी तक अपने मन का कोई पात्र मैं पा नहीं सका हूँ। आप भी कृपा करके एक दिन मेरे यहाँ क्यों नहीं आ जाते। वहाँ आकर मेरी कन्या से परिचय कर लीजिएगा और देखिएगा कि वह आप-जैसे ऐश्वर्य्यशाली व्यक्ति की योग्य सहधर्मिणी हो सकती है या नहीं।

राजाबहादुर की इस बात से पुण्डरीकाक्ष इतना अधिक सुखी हुआ और इस प्रकार आशा से विह्वल हो उठा कि उसे अपने आपे की सुध न रह गई। नितान्त ही तन्मय भाव से भूमि पर लोटकर उसने राजाबहादुर को प्रणाम किया और उनके चरण की धूलि मस्तक में लपेटने लगा। जिस प्रकार के सौभाग्य की पुण्डरीकाक्ष कभी आशा तक नहीं कर सकता था, उसे प्राप्त करने की सम्भावना से एकदम से वह अधीर हो उठा और आकुल भाव से कहने लगा—इस प्रकार के सौभाग्य की कल्पना मैं कभी स्वप्न में भी नहीं कर सकता था कि आप मुझे अपने दामाद के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए निमन्त्रित करेंगे। आपकी इस अनुकम्पा के लिए मैं आजन्म आपका क्रीतदास होकर रहूँगा।

राजाबहादुर ने समझ लिया कि आखिर जन्म भर का दरिद्र ही तो ठहरा, अकस्मात् मिले हुए धन से धनी हुआ है। इसलिए यह आशा होने पर कि एक राजाबहादुर की कन्या का पाणिग्रहण करने का सौभाग्य

मिलेगा, इसका इस प्रकार विह्वल होना स्वाभाविक ही है। उन्होंने कहा—अच्छा, अच्छा, आप एक दिन आइए मेरे यहाँ। मैं अभी बात पक्की नहीं कर सकता हूँ। कारण मेरी कन्या भी तो सयानी हो गई है। वह पढ़ी-लिखी भी है। इसलिए अब स्वयं उसे भी तो अपने भले-बुरे का ज्ञान हो गया है। वह भी पसन्द करती है या नहीं, इस बात का ध्यान मुझे रखना ही पड़ेगा। इस बात की आशा मुझे अवश्य है कि मेरी कन्या मेरी बात टालेगी नहीं! मैं जिसे भी उसके लिए योग्य वर समझ लूँगा, उसी को वह बहुत ही प्रसन्न भाव से ग्रहण कर लेगी, उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की आपत्ति करेगी, इस बात की आशङ्का मुझे नहीं है।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द से अधीर होकर सोच रहा था कि राजा बहादुर मेनादेवी के ही साथ मेरा विवाह करने का प्रस्ताव कर रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बड़ी कन्या का विवाह किये बिना छोटी कन्या के विवाह की बात कोई नही उठाता। इससे उसके मन में आया कि इतने दिनों तक जिस वस्तु को मैं समझता था कि यह कभी मेरे हाथ मे नही आ सकती और इसके लिए आशा करना दुराशा है, वही आज घर बैठे दौड़कर हाथ मे आना चाहती है।

इस प्रकार की घटना यदि कुछ दिन पहले हुई होती तो अवश्य पुण्डरीकाक्ष को उस पर विश्वास न होता। किन्तु आज दिन भाग्यलक्ष्मी एकाएक उससे प्रसन्न हो उठी थीं, रोज़-रोज़ उसे बहुत-सा धन दे-देकर धनशाली किये दे रही थीं। उन भाग्यलक्ष्मी की प्रेरणा से ही आज राजा बहादुर स्वेच्छा से उसके घर पर दौड़े आये और उन्होंने उससे प्रस्ताव किया कि तुम मेरी कन्या के साथ विवाह कर लो। अतएव पुण्डरीकाक्ष के लिए यह अनुभव करना स्वाभाविक ही था कि जब मै भाग्यलक्ष्मी को प्रसन्न करके उनकी असीम अनुकम्पा का अधिकारी बन गया हूँ, तब मेनादेवी को भी प्राप्त कर लेने के सम्बन्ध मे कोई विशेष सन्देह की बात नहीं है। इससे हर्ष से विह्वल होकर उसने राजा बहादुर से कहा—बड़ी देर से यह बात मेरे मुँह पर आ-आकर रह जाती थी कि इस तरह की

एक बहुत बड़ी दुराशा बहुत दिनों से मेरे मन के एक कोने में छिपी पड़ी थी। आज आपने अनुग्रह करके उस दुराशा के सफल होने का सूत्र-पात कर दिया है। अब बात मेरे भाग्य के हाथ में है। आपका जामाता बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो या न हो, किन्तु आपका स्नेह-भाजन बनकर तो मैं सदा ही रहना चाहता हूँ। इससे आज से आप कृपा करके मुझे 'आप' कहकर न सम्बोधित किया करें। आप जब मेरे लिए तुम शब्द का प्रयोग करना आरम्भ कर देंगे तो मैं अपने आपको कृतार्थ समझूँगा।

राजा बहादुर ने हँसते हुए कहा—तुम मेरे सामने तो लड़के ही हो, इससे मैं तुम्हारे लिए तुम शब्द का प्रयोग कर सकता हूँ। अच्छी बात है, तुम जब स्वयं अनुरोध कर रहे हो तो मैं ऐसा ही किया करूँगा। अ यथा साहस नहीं होता था, क्योंकि इस प्रकार के सम्बोधन से कोई कोई लोग अपने आपको अपमानित-सा अनुभव करने लगते हैं।

यह कहकर राजा बहादुर ठहाका मारकर हँसने लगे। पुण्डरीकाक्ष ने मुँह से कुछ कहा नहीं, परन्तु उस हँसी में योगदान किये बिना वह नहीं रह सका। उसकी खुशी उस समय रोके नहीं रुकती थी।

राजा बहादुर ने कहा—वाह, बड़ा सुन्दर मकान बनवाया है आपने ? यह तो राजप्रासाद को भी मात करता है। जिस दिन आपका गृह-प्रवेश होगा, उस दिन फिर आऊँगा। तब यह मकान सुसज्जित रूप में देखने में आवेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने जब देखा कि राजा बहादुर को निमन्त्रण देने में मुझे किसी प्रकार का आग्रह करने की आवश्यकता नहीं पड़ रही है, वे स्वयं अपनी ही ओर से आने का वचन दे रहे हैं तब उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि वह फूला न समाया। उसका हृदय आनन्द से गद्‌गद हो उठा। कृतज्ञ भाव से उसने कहा—मेरे ऊपर आपकी यह बहुत बड़ी कृपा है। आप यदि मुझे इस प्रकार का साहस न देते तो मैं आपको कभी न निमन्त्रित कर पाता। मेरे-जैसे एक तुच्छ व्यक्ति के घर में आप-जैसे महान् व्यक्ति

के चरणों की धूलि पड़ेगी, इस बात की क्या मैं कभी आशा कर सकता था ? परन्तु आप अब भी मुझसे 'आप' कहकर ही क्यों बातें कर रहे हैं ?

राजा बहादुर ठहाका मारकर हँस पड़े। उन्होंने कहा--अच्छा, मैं 'आप' कह गया ? देखो, आदत ऐसी ही चीज़ होती है। खैर, अब मैं सचेत होकर 'तुम' कहने का अभ्यास करूँगा। परन्तु अब तो तुम मेरे यहाँ आओगे न ?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए लज्जित भाव से कहा--किसी ने कहा, भुक्खड़, तू भात खायेगा ? भुक्खड़ ने उत्तर दिया--हाथ कहाँ धो लूँ ? ठीक यही हाल मेरा है। मैं तो आपके यहाँ जाने के लिए कितने दिन से उत्सुक हूँ ! अब आप जिस दिन के लिए आज्ञा दें,उसी दिन पहुँच जाऊँ।

राजा बहादुर ने मुस्कराते हुए कहा--तो कल साँझ को पाँच बजे मेरे यहाँ आकर चाय पीना। ठीक है न ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा--मैंने चाय पीने की आदत कभी नहीं डाली। पहले तो मुझे पेट भर भोजन ही नहीं मिलता था, तब फिर चाय पीने का शौक़ कहाँ से होता ?

राजा बहादुर ने सुखी होकर कहा--तुम चाय नहीं पीते हो ? मैं भी नहीं पीता हूँ। चाय नाम-मात्र को ही रहेगी। बाक़ी जलपान की और सब सामग्रियाँ रहेंगी। अच्छा, तो अब मैं चलूँगा। कल साँझ को जलपान के लिए मेरे यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण रहा।

पुण्डरीकाक्ष ने राजा बहादुर को अपने फाटक तक पहुँचा दिया और उनकी पदधूलि लेकर घर में लौट आया। राजा बहादुर की बातों से उसे इतना आनन्द आया था कि वह उनके चरणों के नीचे जितनी देर तक भी लेटा रह सकता, उसे उतनी ही तृप्ति होती।

राजा बहादुर को पहुँचाकर पुण्डरीकाक्ष जिस समय अपने कमरे में आया, उस समय उसके हृदय में आनन्द का बड़े ज़ोरों का ज्वार उठ रहा था।

उसके नेत्रों में आनन्द का रंगीन नशा लग गया था। जिस ओर वह दृष्टि डालता, उसी ओर उसे दिखाई पड़ती मेना के सुन्दर मुख की स्निग्ध किरणों की प्रतिच्छाया। उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानो उसके मकान की संगमरमर की बनी हुई दीवारों पर मेना के गुलाबी रंग के अधर की मधुर हँसी बिखरी पड़ रही है।

आषाढ़ का महीना था। आकाश मेघों से आच्छादित था। मेघ भी काले-काले थे। उन्हें देखने पर ऐसा जान पड़ने लगा, मानो मेना की काली-काली आँखों की अनिमेष दृष्टि समस्त आकाश को आच्छादित किये हुए है। असह्य आनन्द के कारण उसका हृदय फटकर चार टुकड़े हुआ जा रहा था। परन्तु इस आनन्द के साथ ही साथ एक बड़ा ही कठोर दुःख भी था, जो पुण्डरीकाक्ष को उद्विग्न कर रहा था। वह सोच रहा था कि मेना के पास जा तो पाऊँगा, उससे बातें कर सकूँगा, उसके मुँह की बाते सुन पाऊँगा, उसके मुख की मधुर मुस्कराहट देखकर हृदय शीतल कर पाऊँगा। इन सब कारणों से अपने इस जीवन को सार्थक और गौरवमय बनाने का सौभाग्य मुझे मिलेगा, परन्तु इसके लिए अब भी मुझे पूरे चौबीस घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। कितना लम्बा समय है यह! घंटे भर मे साठ मिनट होते है, तब चौबीस घंटे में? ओह, कितने मिनट होते है! यह तो न जाने कितने मिनट होते है!

पुण्डरीकाक्ष काग़ज़-पेंसिल लेकर बैठा। वह गुणा करके देखने लगा कि चौबीस और साठ का गुणनफल कितना होता है। तभी तो मिनटों का पता लगाना उसके लिए सम्भव था? गुणा करने के बाद एकाएक अधीर भाव से वह बोल उठा—बाप रे, एक हज़ार चार सौ चालीस मिनट!

पुण्डरीकाक्ष काग़ज़-पेंसिल लिये हुए तो बैठा ही था। उसने हिसाब लगाना बन्द न किया। अब वह यह सोचने लगा कि साठ सेकेंड का जब एक मिनट होता है तब १४४० मिनटों में कितने सेकेंड होंगे? फिर

उसने गुणा करना आरम्भ किया। इस बार गुणनफल आया १,८६,४०० एक लाख छियासी हज़ार चार सौ !

इतने समय तक प्रतीक्षा करके एक-एक क्षण गिनते-गिनते व्यतीत करने के बाद मेना से मुलाक़ात होगी। उसका अधीर मन चाहता था कि इसी समय दौड़ता हुआ राजा बहादुर के पास पहुँचे और कह दे कि अब प्रतीक्षा करना मेरी शक्ति से परे है। भोजन करना तो एक बहुत ही तुच्छ और गौण कार्य है। वह किसी दिन भी हो जायगा। परन्तु मेनादेवी से मुलाक़ात और जान-पहचान आज ही हो जाय तो अच्छा है। किन्तु तुरन्त ही फिर उसके मन में आया—न, अति सर्वत्र वर्जयेत्। अधिक लोभ करना भी हानिकारक है। बाद को 'बुभुक्षित: कि द्विकरेण भुंक्ते' संस्कृत के श्लोक का यह चरण भी उसे स्मरण हो आया। उसने सोचा—कवि ने ठीक ही तो कहा है, क्षुधा से पीड़ित होने पर भी कहीं कोई दो हाथ से खाता है ? मेरे लिए यही उचित है कि मैं कल पाँच बजे तक प्रतीक्षा करता रहूँ। अपने अधीर हृदय को सांत्वना देने के लिए उसने मेघदूत उठाया और पढ़ना आरम्भ किया—

तिहिं केतकी फूल फुलावनहार
के सम्मुख दास कुबेर गयो।
उर अन्तर में अँसुआ भर के
बड़ी बेर लों सोचत ठाढ़ो रह्यो॥
चित कण्ठ लगे सुखियानहु कौ
न रहे थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिए
जिन मीत तें दूर बसेरो लियो॥

दसवाँ परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष ने पल-घड़ी गिनते-गिनते दूसरे दिन का दोपहर तक का समय तो किसी प्रकार बिता दिया, परन्तु बाद को उससे नहीं रहा जाता था। अपनी आदर्श प्रणयिनी नायिका कमलिनी के समान उस समय वह सोचने लगा कि भगवान् ने घड़ी को सूर्य के अधीन न जाने क्यों कर दिया है? सूर्य को घड़ी के अधीन क्यों नहीं किया? इस समय यदि घड़ी की सुई खिसका देने पर ही पाँच बज जाते तो कितने सुख की बात होती? उस अवस्था में मैं अभी ही दौड़ता हुआ जाकर मेना देवी को देखने में समर्थ हो पाता। परन्तु इस समय भी चार-पाँच घंटे का विलम्ब है। इतना लम्बा समय प्रतीक्षा करते-करते व्यतीत करना पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति में क्या कर्त्तव्य है, यही बात वह व्याकुल भाव से सोच रहा था। अन्त में उसने निश्चय किया कि तब तक यात्रा की तैयारी ही कर लूँ। इसमें थोड़ा-बहुत समय तो कट ही जायगा, साथ ही एक काम में लग जाने के कारण मन भी बहला रहेगा।

पुण्डरीकाक्ष की सजावट आरम्भ हुई। पहले उसने चन्दन का साबुन लगाकर एक बार खूब मलमलकर स्नान कर लिया। बाद को खूबसूरत किनारे की एक धुली हुई धोती चुनकर पहन लिया। एक जालीदार बनियान पहनी; उसके ऊपर गहरे लाल रंग का केला सिल्क का एक कुर्त्ता पहन लिया। कुर्ते के लाल रंग के भीतर मे एक सुनहला जुलूस दगदगाता हुआ आग की लपट के समान निकलता था। ऊपर से पुण्डरीकाक्ष ने मुर्शिदाबाद का एक बहुत क़ीमती रेशम का दुपट्टा गले में डाल लिया।

उपर्युक्त प्रकार के वस्त्रों के सिवा अलंकार धारण करने में भी पुण्डरीकाक्ष ने कम सावधानी नहीं की। दोनों अगूँठे छोड़कर बाक़ी आठों उँगलियों में उसने जड़ाऊ अँगूठियाँ पहनीं। ये आठों अँगूठियाँ गढ़न में एक-दूसरे से भिन्न थीं और उन सब में भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्न भी जड़े हुए थे। बायें हाथ की कलाई में सोने के पट्टे में बँधी हुई सोने की घड़ी थी। पैरों में वार्निश किये हुए पम्प शू थे। कुर्ता, दुपट्टा आदि में खूब महमहाता हुआ क़ीमती इत्र लगा था।

पुण्डरीकाक्ष साज-शृंगार में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने देना चाहता था। इसी लिए उसने मस्तक पर लवेंडर वाटर लगाकर अपने कड़े और बिखरे हुए बालों को बुरुश की क़ाबू में ले आने के लिए यथासाध्य प्रयत्न किया। मूँछों के दोनों ही सिरे लटके हुए थे। उनमें मोम लगाकर ऐंठते-ऐंठते उन्हें नोकीले करके सींग के रूप में ले आने के लिए भी उसने बड़ा प्रयत्न किया। इस प्रकार के तमाम झंझट मोल लेने में बहुत-सा समय व्यतीत कर देने के बाद भी जब पुण्डरीकाक्ष ने घड़ी पर दृष्टि डाली तब केवल चार बजे थे। इधर आषाढ़ के पसीने में कुर्त्ता-धोती आदि तो भीगकर एकदम गीला हुआ जा रहा था। पूरी ताक़त से बिजली का पंखा खोले हुए वह उसी के नीचे बैठा रहा। हाथ-पैर समेटे हुए शान्त-भाव से बैठे-बैठे वह बार-बार घड़ी की सुइयों की ओर ताकने लगा। घंटे की सुई जैसे-जैसे पाँच के समीप पहुँचने लगी वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष की अधीरता बढ़ने लगी, साथ ही साथ उसका हृत्पिण्ड भी पञ्जर के अन्तराल में क्रमशः और जोर-जोर से थिरक-थिरक कर नाचने लगा।

देखते-देखते पौने पाँच बज गये। अब पुण्डरीकाक्ष ने दुर्गा, हरि और सब प्रकार के विघ्नों का विनाश करके सिद्धि देनेवाले गिरिजासुत गणेश का स्मरण किया। मन ही मन इन सबको नमस्कार करके हाथ में छड़ी लिये हुए वह निकल पड़ा। मार्ग में चलते-चलते प्रार्थना

करता जाता था कि हे भगवान्, सर्वशक्तिमान्, मेरी यह यात्रा शुभ हो, मेना के चित्त पर मेरा यह रूप जम जाय। यदि मेरी यह प्रार्थना सार्थक हुई और मैं मेना को पसंद आगया तो कालीघाट पर बड़े ठाट-बाट से पूजा करूँगा। ज़ोर का भंडारा करूँगा, प्रत्येक पूर्णिमा को सत्यनारायण की कथा सुनूँगा। देवताओं को घूँस देने की जितनी भी बातें उसे स्मरण आ सकीं वे सभी वह उन सबको मन ही मन सुना रखने के लिए इच्छुक था।

इस प्रकार का बनाव-शृंगार कर चुकने के बाद नीचे उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष सोचने लगा कि राजा बहादुर के निमंत्रण की रक्षा के लिए पैदल ही चला जाऊँ या अपनी मोटरगाड़ी पर सवार होकर जाऊँ। सड़क पार करने भर का ही तो विलम्ब था। सड़क के इस पार पुण्डरीकाक्ष का मकान था और उस पार राजा बहादुर का। बड़े मजे में टहलते-टहलते जाया जा सकता था। परन्तु पुण्डरीकाक्ष को चिन्ता थी कि कहीं पैदल जाने पर शान में तो बट्टा न लग जायगा? कोई यह तो न समझ बैठेगा कि पुण्डरीकाक्ष कृपण है, रईसाना ढंग इसमें नहीं है? परन्तु उसे स्मरण हो आया कि कल स्वयं राजा बहादुर भी तो पैदल चलकर ही उसे निमंत्रण देने तथा उसके साथ कन्या का विवाह करने का प्रस्ताव करने आये थे। इससे पुण्डरीकाक्ष ने भी बहुत सोच-विचार करने के बाद पैदल ही जाने का निश्चय किया।

रास्ते भर पुण्डरीकाक्ष की उतावली का ठिकाना न रहा। भूमि पर तो मानो उसके पैर ही नहीं पड़ते थे। मानो नौका छूट रही है, उसे पकड़ने के लिए वह दौड़ा जा रहा है। इस तरह का ठाट-बाट, इतना क़ीमती और आँखों को चकाचौंध कर देनेवाला भड़कीला आयोजन, सब बेकार-सा सिद्ध हो बैठा। राजा बहादुर के द्वार पर पहुँचने पर पुण्डरीकाक्ष भीतर पैर रखने ही वाला था कि पहरेदार सामने खड़ा होकर उसे रोकते हुए कहने लगा—बाबू साहब, मैनेजर साहब की आज्ञा के बिना किसी को भीतर जाना मना है।

हाय-हाय, पृथ्वी तुम फट क्यों नहीं जाती हो? इतनी बड़ी गगनचुम्बी संगमरमर की अट्टालिका, इतनी अँगूठियाँ और इस तरह का लाल रंग का चमचमाता हुआ खूब साफ़-सुथरा कुर्त्ता उसके किसी भी काम में न आ सका! स्वयं राजाबहादुर का इतनी दूर जाकर दिया हुआ आग्रहपूर्ण निमंत्रण! वह भी व्यर्थ हो गया किसी एक वेतन-भोगी मैनेजर की एक बात से! राजाबहादुर के भावी जामाता का रास्ता रोक दिया गया उन्ही के एक नौकर की आज्ञा के कारण! उसके दुराशारूपी यज्ञ की पूर्णाहुति देने का समय आने पर यह कैसा दारुण दुर्दैव और विघ्न उपस्थित हुआ। अन्त में क्या उसका भी शिशुपाल का-सा ही हाल होगा? वर का वेश बनाकर चले तो विवाह की लालसा से, परन्तु पराजय की लज्जा छिपाने के लिए शायद जाकर घुसना पड़ेगा घर के भीतर। लज्जा के मारे पुण्डरीकाक्ष का कर्णमूल तक लाल हो उठा।

पुण्डरीकाक्ष के मुँह से कोई बात न निकल सकी। उसे चुप देखकर और यह जानकर कि ये इस सामनेवाले ही मकान के बाबू हैं, पहरेदार ने आदरपूर्वक धीमे स्वर से कहा—आपका कार्ड दीजिए, हम तुरन्त हुक्म ले आता है।

हाय हाय! लज्जा पर लज्जा! अभी तक तो पुण्डरीकाक्ष ने कार्ड छपवाया नही। कार्ड छपवाना भी बड़े आदमीपन का एक विशेष अङ्ग है, यह बात तो इतने दिनों तक उसके दिमाग़ में आई ही नहीं। क्या यों ही यह ऋषि-वाक्य प्रचलित हो उठा है—श्रेयांसि बहुविघ्नानि! सफलता के मन्दिर में कितना कड़ा पहरा है!

पुण्डरीकाक्ष ने ज़रा कुछ सहमते हुए-से कहा—हम तो कार्ड लाया नहीं!

यह कहकर पुण्डरीकाक्ष लौटने ही जा रहा था कि पहरेदार ने कहा—बाबू साहब, आप एक मिनट ठहरिए, हम अभी हुकुम ले के आता है!

पहरेदार फाटक के भीतर चला गया। समीप ही पहरे पर के नौकरों के लिए बनी हुई कोठरियों में से एक के सामने खड़ा होकर वह एक दूसरे पहरेदार से कहने लगा—ऐ तिवारी, मैनेजर बाबू को बोलो कि सामनेवाली बाड़ी का बाबू आये हैं, भीतर जाने माँगता है।

तिवारी ने खैनी मलते-मलते कहा—अरे कार्ड कहाँ है ?

पहरेदार ने कहा—बाबू कार्ड नहीं लाया।

तिवारी ने खैनी मुँह में डालकर उसे जीभ से एकत्र करके होंठ के नीचे जमा करते-करते अस्पष्ट भाषा में कहा—अरे तब कैसन बाबू ?

तिवारी का यह मन्तव्य पुण्डरीकाक्ष के कान में एक बहुत ही तीखे उपहास के रूप में विद्ध हो गया। वह मन ही मन कहने लगा—हाय, धरती, तुम फट क्यों नहीं जाती हो ? यह अपमान तो नहीं सहन किया जाता।

पुण्डरीकाक्ष जब लज्जा से संकुचित होकर लौटकर चले जाने का ही निश्चय कर रहा था तब उस पर एना की दृष्टि पड़ी। ऊपर के बरामदे से उसने पुण्डरीकाक्ष को पीछे की ओर फिरते देख लिया। इससे वह सोचने लगी कि पिता जी इन्हें कल निमंत्रित तो कर आये, किन्तु पहरेदारों को इस बात की सूचना देने को वे भूल गये, घर में केवल हम लोगों से ही चर्चा करके वे रह गये। शायद उन्हें इस बात का ध्यान नहीं रह गया कि अब हमारा द्वार पहले की तरह सबके लिए खुला नहीं है। भास्कर ने यह आज्ञा दे रक्खी है कि पूछे बिना कोई भी भीतर न जाने पावे। इससे पुण्डरीकाक्ष बाबू फाटक पर रोक लिये गये हैं। यह सोचकर ऊपर से ही उसने अपनी स्वभाव-सुलभ कोमल वाणी में ज़ोर से पुकारकर आज्ञा दी—ऐ दरबान, बाबू को आने दो।

एना की ज़ोर की आवाज़ पुण्डरीकाक्ष के भी कान में पड़ी। बड़ी शीघ्रता के साथ वह फिर घूम पड़ा। बरामदे से हटकर चलती

हुई एना से उसकी देखादेखी हो गई। लज्जित होकर एना ने ज़रा-सा मुस्करा दिया और वह तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई चली गई। पुण्डरीकाक्ष के भी मुख पर मुस्कराहट आगई। उसके मन में यह बात आई कि सफलता के मंदिर में प्रवेश करने से पहले मेरे आन्तरिक आग्रह की एक अग्निपरीक्षा हो गई। मैं तो फ़ेल ही हो बैठा था, किन्तु मेरी रक्षा कर ली श्रीमती एना देवी ने। मेरा कर्तव्य है कि मैं उन्हें आन्तरिक धन्यवाद दूं।

एना की आज्ञा पाते ही पहरेदार दौड़ता हुआ आया और बहुत ही विनीत भाव से बोला—जाइए, हुजूर, जाइए।

पुण्डरीकाक्ष आनन्द और गर्व के साथ पैर बढ़ाता हुआ भीतर चला गया। परन्तु उसे मन ही मन भास्कर पर बड़ा क्रोध आया। उसने सोचा—एक अगड़म-बगड़म आदमी रास्ते में इस प्रकार रोकवाकर मेरा अपमान करता है।

पुण्डरीकाक्ष ज़रा दूर भी नहीं बढ़ पाया था कि एना की बात सुनते ही भास्कर अपने कमरे से निकल आया। आगे बढ़कर उसने पुण्डरीकाक्ष को नमस्कार किया और बोला—आइए, आइए, स्वागत है आपका।

पुण्डरीकाक्ष ने नितान्त ही निस्तब्ध भाव से भास्कर के नमस्कार का उत्तर दिया। न तो उसके होंठ पर ज़रा-सी मुस्कराहट आई और न उसकी जिह्वा को ही क्रियाशील होना पड़ा। यहाँ तक कि उसने ज़रा-सा हाथ भी नहीं उठाया। भास्कर की पूर्णरूप से उपेक्षा ही करते हुए उसके साथ-साथ पुण्डरीकाक्ष चलने लगा। मन ही मन वह यह भी कहने लगा—अच्छा, अच्छा, खूब किया आपने! अब अधिक चापलूसी करने की जरूरत नहीं है। काफ़ी भलमनसाहत दिखा चुके हैं आप।

भास्कर ने यह अनुभव कर लिया कि पुण्डरीकाक्ष मेरी उपेक्षा कर रहा है। इससे उसे ज़रा-सी हँसी आई और मन ही मन वह कहने लगा—हुँ, लक्ष्मी के उल्लू की चोंच लग गई है शायद इसे।

मकान के बरामदे पर चढ़ने के लिए बनी हुई संगमरमर की सीढ़ी पर पैर रखते ही राजा बहादुर कमरे से निकल आये और मुस्कराकर पुण्डरीकाक्ष का स्वागत करते हुए कहने लगे—आओ, आओ। मैं इस बात के लिए बड़ा दुःखी हूँ कि दरबानों ने, तुम्हें पहचानते हुए भी फाटक पर रोक लिया था। परन्तु इसमें दोष मेरा ही है। मुझे उनसे कह रखने की याद नहीं रही। इसके लिए तुम बुरा न मानना। मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैंने बड़ा अनुचित कार्य कर डाला। वृद्ध आदमी हूँ, सारी बातें स्मरण नहीं रख पाता हूँ। सब ओर से सावधान रहकर कार्य भी नहीं कर पाता हूँ। मेरी इस अवस्था को ध्यान में रखते हुए तुम्हें यह बात भूल जानी चाहिए।

राजा बहादुर बारम्बार अपनी भूल स्वीकार करने लगे। ऐसा वे शायद इसी लिए कर रहे थे कि फाटक पर रोके जाने के कारण पुण्डरीकाक्ष के मन में जो ग्लानि और लज्जा का भाव आया है, वह दूर हो जाय। उनके इस प्रयत्न का उसकी चित्तवृत्ति पर प्रभाव भी अच्छा पड़ा, उसकी सारी खिन्नता जाती रही। ज़रा कुछ संकुचित-सा होकर राजा बहादुर से वह कहने लगा—नहीं, नहीं, यह कौन-सी ऐसी बात हो गई? इससे पहले तो मैं कभी आपके यहाँ आया नहीं हूँ, वे लोग मुझे पहचान ही कैसे सकते थे?

जिस समय राजा बहादुर पुण्डरीकाक्ष के समीप अपनी भूल स्वीकार करके उसकी अभ्यर्थना कर रहे थे, उसी समय एना मुँह लाल किये हुए दौड़ती-दौड़ती, मेना के पास गई और कहने लगी—दीदी, दीदी, कैसा बेढंगा काम हो गया!

एना के मुख में हँसी नहीं थी, किसी प्रकार की चंचलता नहीं थी. उसके मुख पर और नेत्रों में एक प्रकार का विषाद का भाव था। इस प्रकार की विषाद की रेखा उसकी आकृति पर इससे पहले और कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। इसलिए उसकी यह अस्वाभाविक खिन्नता देखकर मेना डर गई। वह व्यग्रभाव से

पूछने लगी--क्या हुआ रे! तू इतना घबराई क्यों है? आख़िर बात क्या है?

भौंह सिकोड़े हुए एना कहने लगी--बड़ी ग़लती हो गई। सन्तरियों को यह नहीं बतलाया गया था कि आज पुण्डरीकाक्ष बाबू आवेंगे, उन्हें कोई रोके नहीं।

एना की इस बात से कौतुक का अनुभव करती हुई ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ मेना ने कहा--तो शायद वे फाटक पर रोक लिये गये थे? फिर क्या हुआ?

एना भौंह टेढ़ी किये हुए कहने लगी--तुम हँस रही हो! मैं तो लज्जा के मारे धरती में गड़ी जा रही हूँ। उनके सामने मैं किस तरह मुँह दिखाऊँगी, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। सचमुच भला वे हम लोगों के सम्बन्ध अपने मन में क्या कहते होंगे? तुम्हारे भास्कर बाबू भी एक चीज़ हैं! उन्हीं की बदौलत तो इस तरह की बात हो गई!

मेना की हँसी की आड़ में एक विशेष अर्थपूर्ण कारण छिपा हुआ था। कल पुण्डरीकाक्ष को निमंत्रित करके लौटने के बाद पिता ने मेना को अकेले में बुलाकर कहा था--देखो मेना, तुम्हारे लिए तो वर निश्चित ही हो चुका है।

एकाएक पिता को अपने विवाह की बात छेड़ते देखकर मेना बहुत ही चकित हुई। उसे कुछ तो लज्जा आई और कुछ भय भी हुआ। मुँह लाल किये हुए एक बार पिता के मुँह की ओर ताक कर उसने मस्तक नीचा कर लिया।

राजा बहादुर कहते ही गये--तुम्हारे लिए तो वर खोज ही लिया गया है। अब एना के लिए भी एक वर मिल जाता तो मेरी चिन्ता दूर हो जाती। हमारे मकान के सामने ही पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड नामक जो एक आदमी रहता है, उसने कैसी संगमरमर की कोठी बनवा रक्खी है। एकाएक बहुत-सा रुपया मिल जाने के कारण वह धनवान्

भी हो उठा है। मैंने बहुत जाँच-पड़ताल करके यह भी मालूम कर लिया है कि उसका स्वभाव और चरित्र आदि भी बहुत अच्छा है। घर में उसके कोई दूसरा आदमी भी नहीं है। कोई हिस्सेदार नहीं है। साथ ही कुल भी उसका कोई बुरा नहीं है। मैं समझता हूँ कि उसके साथ यदि एना का विवाह हो जाता तो बड़ा अच्छा था। लड़के की अवस्था ज़रा अधिक हो गई है। परन्तु आजकल के लड़के प्रायः अधिक अवस्था में विवाह ही किया करते हैं। इसके सिवा एना भी तो अब कोई बच्ची है नहीं कि उसकी जोड़ी न मिलेगी। परन्तु अब प्रश्न यह उदय होता है कि एना उसके साथ विवाह करना स्वीकार करती है या नहीं। इसी लिए आज मैं स्वयं उसके घर पर गया था और कल साँझ को जलपान करने लिए उसे निमंत्रित कर आया हूँ। लड़का वह बड़ा ही सुशील, शान्त और शिष्ट है। चाय तक वह नहीं पीता। कल यहाँ आने पर मैं तुम लोगों से उसका परिचय करा दूँगा। तुम ज़रा-सा इस बात का ध्यान रखना कि किसी प्रकार उसकी ओर एना का मन खिंच जाय। परन्तु एना से अभी विवाह के सम्बन्ध में कुछ कहना ठीक नहीं है। अभी तो केवल यह देखना है कि उन दोनों का मनोभाव कैसा होता है। तुम एना से केवल इतना ही कहना कि मैं पुण्डरीकाक्ष को कल के लिए निमंत्रित कर आया हूँ। यहाँ आने पर तुम लोगों से उसका परिचय कराऊँगा और उसके लिए तुम लोगों को तैयार रहना चाहिए। यदि तुमसे हो सके तो खाने की कुछ चीजें घर में तैयार कर लेना और बाजार से जो-जो ले आना हो, वह भास्कर से कह देना।

मेना चुपचाप पिता की बात सुनती रही, अन्त में उसने कहा—अच्छा। बाद को वह एना के पास गई। उसने कहा—एना, पिता जी ने पुण्डरीकाक्ष बाबू को कल साँझ को जलपान करने के लिए निमंत्रित कर आये हैं। वे कहते थे कि उसी समय उनसे वे हम लोगों का परिचय भी करा देंगे। परन्तु तुझसे मैं अभी से ही यह कहे देती हूँ

कि तू कहीं कल भी कोई पागलपन न कर बैठे। एक भला आदमी अपने घर पर आवेगा, उसका किसी प्रकार का अपमान न कर बैठना।

एना अपनी दोनों आँखें खूब फाड़-फाड़कर कहने लगी--दीदी, तुम मुझे इतनी नादान समझती हो कि एक भला आदमी हमारे घर पर आवेगा और मैं उसका अपमान कर बैठूँगी? वे हम लोगों के लिए चार महीने तक सजा काट आये हैं। उनसे तो हम लोगों ने यों ही अपराध किया है। उनकी बुआ के द्वारा अवश्य हम लोगों ने उन्हें अपना धन्यवाद सूचित किया है, परन्तु हमने स्वयं तो उनसे कभी कुछ कहा नहीं। मैं कब से तुमसे यह कहने को सोच रही थी कि पिता जी से कहकर एक दिन उन्हें निमंत्रित कराओ। परन्तु अब मालूम हुआ कि पिता जी ने स्वयं उन्हें निमंत्रित कर लिया। यह उन्होंने बड़ा अच्छा काम किया है।

मेना अवाक् होकर एना के मुँह की ओर ताकने लगी। यही एना तो है, जो दो दिन पहले कह रही थी न कि दीदी, मैं उससे बातचीत न कर सकूँगी। बातचीत करने लगूँगी तो हँसते-हँसते पेट ही फट जायगा! इधर कुछ दिन में ही उसमें इस तरह का परिवर्त्तन क्यों और कैसे हो गया!

मेना मन ही मन जरा-सा हँसकर कहने लगी--पिता जी कह रहे थे कि एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को भोजन के लिए निमंत्रित किया गया है, इससे खाने की कुछ चीजें घर में तैयार कर ली जातीं तो अच्छा था। परन्तु महाराज देवता क्या कोई चीज ठिकाने से बना सकेंगे? इससे अच्छा तो यही होगा कि सब चीजें बाजार से मँगवा ली जायँ। ठीक है न?

एना ने आग्रहपूर्ण स्वर से कहा--छिः! बाजार की चीजें तो आदमी जब चाहे तब खा सकता है। किसी के घर में निमंत्रित होकर खाने जाने में तो उसकी प्रीति तभी मालूम होती है जब कि निमंत्रण-

दाता के घर के लोग स्वयं बनाकर भोजन करावें। वास्तव में इसी तरह भोजन करने और कराने में आनन्द भी आता है। हम दोनों बहनें आज ही से यदि लग जायँ तो क्या कल साँझ तक सब तरह की खाने की चीजें तैयार न कर लेंगी? कुछ मिठाइयाँ आज बनाकर रख ली जायँ, कुछ कल सवेरे बन जायँगी। कल दोपहर को कुछ नमकीन चीज़ें तैयार कर ली जायँगी, वे गरमागरम बनी भी रहेंगी।

मेना बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी रोकती हुई बोली—अच्छा, तू यदि शान्तभाव से ऊपर का सारा काम सँभालती रहेगी तो मैं सब कुछ तैयार कर लूँगी। तेरे खड़ी हो जाने पर मुझमें भी साहस आ ही जायगा।

एना ने गम्भीर होकर कहा—खड़ी क्यों न होऊँगी दीदी? पिता जी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को निमंत्रित कर आये हैं और उसे भोजन कराने के लिए आवश्यक तैयारी करने में मैं योगदान न करूँगी? वह व्यक्ति भी ऐसा वैसा नहीं है। उसने हमारे लिए जेल की यातना सहन की है!

एना के हृदय में पुण्डरीकाक्ष के प्रति इस प्रकार का सहानुभूति का सागर उमडा हुआ देखकर मेना को बड़ा मज़ा आने लगा। उसे लेकर वह उत्साह के साथ खाने की सभी प्रकार की सामग्रियाँ घर ही में तैयार करने लगी। वह प्रसन्न होकर देखने लगी कि जिस एना को मुहूर्त भर भी एक स्थान पर रोक रखना असम्भव हो जाता है, वही चंचला एना कैसी एकाग्र निष्ठा के साथ समस्त कार्यों का सम्पादन करने मे लगी हुई है।

बड़ी रात तक जागती रहकर उन दोनों ने मिलकर तरह-तरह के खाद्य पदार्थ तैयार किये। दूसरे दिन अत्यन्त प्रातःकाल ही उठकर उन्होंने फिर अपना कारबार शुरू कर दिया। एना को ही अधिक उतावली थी। वह बड़ी तन्मयता के साथ सब काम-काज कर रही थी। दूसरे वक्त पौने चार बजे तक वह मेना के साथ-साथ

काम करती रही। बाद को एकाएक घड़ी की ओर ताककर कहने लगी—दीदी, तुम नौकर-नौकरानियों को लेकर सारा सामान ठिकाने से लगवा दो। मैं अब चलती हूँ। नहा-धोकर ज़रा कपड़े-आदि ठिकाने से पहन लूँ, पता नहीं वे कब आ पहुँचें और पिता जी बुलवा भेजें।

मुँह नीचा किये हुए हँसी छिपाकर मेना ने कहा—हाँ, तू जा, मैं सब ठीक किये लेती हूँ।

चलते-चलते एना कह गई—परन्तु तुम भी अधिक विलंब न करना, जल्द ही सब सँभालकर आ जाना। तब तक मैं नहा-धो लेती हूँ।

एना चली गई। मेना हँसती हुई कहने लगी—पिता जी को अधिक कष्ट न करना पड़ेगा। मेरी बहिन का अभी ही मन खिंच गया है। अब वह उच्छृङ्खल नहीं है, उजड्ड नहीं है, गँवार नहीं है। अब वह 'वे' हैं। एकाएक जो इस प्रकार का परिवर्त्तन हो गया है, उसका कारण क्या है? यह संगमरमर की कोठी?

एना जब कपड़े आदि पहनकर निकली और दीदी के पास आई तब मेना ने देखा कि आज एना ने एक विशेष कवित्वमय ढंग से अपना शृंगार किया है। एक हलके आसमानी रंग की रेशमी साड़ी जिसमें चाँदी के काम का बना हुआ किनारा बना हुआ था, उसके अङ्ग पर चमचमा कर ऐसी लग रही थी, मानो आषाढ़ के मेघ पर बिजली चमक रही हो। शरीर पर वह जो ब्लाउस पहने हुए थी, उसकी भी कारीगरी देखने ही लायक़ थी। ब्लाउस के ऊपर सुई से काढ़कर कदम्ब का एक वृक्ष बनाया गया था। उस वृक्ष पर एक मोर पूँछ फैलाये नाच रहा था। पैरों में वह दिल्ली का बना हुआ लाल रंग का सलेमशाही जूता पहने हुए थी। जूते पर ज़री का काम किया हुआ था। वक्ष पर कटक का सोने और चाँदी के काम का तार का बना हुआ एक गुलाब का फूल खोंसे थी, जिस पर कि एक तितली बैठी थी। कन्धे के पास एक तारा फूल के बुच से साड़ी

में बँधा हुआ था। इस प्रकार साज-शृङ्गार करके एना ऐसी मालूम पड़ रही थी, मानो वर्षा-रानी शृङ्गार किये हुए मनुष्य-शरीर में आकर स्वयं विराजमान हो गई हैं।

एना को देखने पर मेना के हृदय में बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि उसकी खिल्लियाँ उड़ावे। परन्तु उसने अपने आपको सँभाल लिया। उसने सोचा, एना ऐसी चञ्चल प्रकृति की लड़की है कि ज़रा-सा भी मज़ाक करने पर वह टेढ़ी हो जायगी और फिर शायद पुण्डरीकाक्ष से वह मुलाक़ात भी न करेगी।

मेना ने खुश होकर कहा—तू आ गई है भाई तो ज़रा खड़ी होकर देखती रह, तब तक मैं भी कपड़े बदल आऊँ।

एना ने अपनी वेश-भूषा को आकर्षक बनाने के लिए बड़ा ही उद्योग किया था और उसकी वह वेश-भूषा मेना की आँखों में लग गई थी, इसी लिए मेना बहुत ही सीधे-सादे ढंग के कपड़े आदि पहनकर आई। उसे इस प्रकार के वेश में आती देखकर एना ने आँखें माथे पर चढ़ाती हुई विस्मयसूचक स्वर में कहा—ओ मा! दीदी, यह कैसा तुमने वेश बनाया! किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनां—कालिदास के इस कथन में कितनी सत्यता है, शायद यही प्रमाणित करके तुम दिखलाना चाहती हो!

मेना हँसती हुई कहने लगी—मैं तो भाई 'बुकूड' हो चुकी हूँ। मेरे लिए तो कुमीर खाली मुँह बाये ताक ही रहे हैं। इस पर भी यदि कहीं दूसरे किसी की भी दृष्टि पर चढ़ गई तो बाद को दो ओर की खींचा-तानी में पड़कर प्राण देने पड़ेंगे। इससे अच्छा है कि अपना पहले से ही सावधान रहा जाय। ठीक है न? एक कवि ने कहा है कि शृङ्गार और अलङ्कार के कारण सुन्दरी का सौन्दर्य्य और भी मनोरम हो उठता है। तेरे लिए अभी कोई वर नहीं निश्चित हुआ है। तू अभी फूल का धनुष हाथ में लिये हुए दिग्विजय के लिए निकल सकती है। यदि किसी के हृदय में गड़ गई तब

तेरे ही द्वारा उसके हृदय का घाव भी पुरेगा, उसकी प्राण-रक्षा भी हो सकेगी।

होंठ उलटकर एना ने अवज्ञा के-से स्वर में कहा—वाह, मुझे ग़रज़ पड़ी है उस उजड्ड के हृदय में गड़ने की!

मेना एना के मुँह से फिर उजड्ड नाम सुनते ही चिन्तित हो उठी। एना के मुँह की ओर वह ताकने लगी। किन्तु उसने जब यह देखा कि उसके नेत्रों में और मुख पर आनन्द की एक दीप्ति खेल रही है, एक कमनीय व्रीडा उसके मुख पर लावण्य का विस्तार कर रही है, तब मेना की सारी चिन्ता जाती रही, मेना सुखी हो उठी।

एना को सावधान करने का-सा भाव दिखलाती हुई मेना हँसकर बोली—किन्तु देखना, कहीं उस एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के सामने इस तरह के शब्द का प्रयोग न कर बैठना।

एना ने हँसकर कहा—नहीं, आज यह शब्द मुँह से न निकलने दूँगी। परन्तु मेल-मुलाक़ात बढ़ जाने पर भी कभी उनके मुँह पर यह शब्द ज़बान से न निकलने दूँगी, इस बात का शपथ मैं नहीं कर सकती।

मेना हँसती हुई बोली—तो शायद मेल-मुलाक़ात बढ़ाने की भी आकांक्षा मन में पाल रक्खी है तुमने?

एना ने हँसते-हँसते कहा—मुझे ज़रा भी इस बात की आकांक्षा नहीं है। तुम भी क्या कहती हो दीदी, मेरी बला ऐसी आकांक्षा करने जाय! परन्तु यह कंगाल क्या एक ही दिन में सन्तुष्ट होकर लौट जायगा? यदि ऐसी बात होती तो वह रोज़-रोज़ गिद्ध की-सी गर्दन बढ़ाये मुँह बाये खड़ा क्यों रहा करता? जिसे इतनी लगन थी कि पानी-बूँदी और गर्मी-सर्दी की ओर ज़रा भी ध्यान न देकर निमेष भर देख लेने के ही लिए मुँह बाये ताकता रहता था, ज़रा-सी झलक भर देख लेने के लिए जो इस प्रकार असह्य क्लेश सहन करने के लिए तैयार रहता था, क्या वह आज एक दिन में ही तृप्त होकर लौट जायगा?

मेना ने मुस्करा दिया। वह समझ गई कि एना प्रतिदिन ही पुण्डरीकाक्ष का आचरण देखते-देखते और उसकी खिल्लियाँ उड़ाते-उड़ाते स्वयं भी उसकी ओर आकर्षित हो गई है और आकर्षित ही नहीं हो गई है, बल्कि उसके प्रति उसके हृदय में अनुराग भी उत्पन्न हो गया है, यद्यपि स्वयं एना को भी अपनी इस प्रकार की अवस्था का परिज्ञान नहीं है। अस्तु, यदि मेरा यह अनुमान सत्य है तो पिता जी की इच्छा आसानी से ही पूर्ण हो जायगी।

मेना की नीरवता की ओर ध्यान दिये बिना ही एना अपनी धुन में कहती गई——मुझसे ज़रा-सा परिचय हो जाने पर उसे थोड़ी-सी सभ्यता सिखा देनी होगी। उसे यह समझा देने की आवश्यकता है कि इस तरह का आँख पर चोट करनेवाला रंगीन कुर्ता पहनने की उसकी अवस्था दस वर्ष पहले भी नहीं थी। इसके सिवा खूबसूरत बनाकर यह जो मूँछें टेये रहता है, उसे टेढ़ी करके दोनों ओर झुलाये न रक्खे, बल्कि दाढ़ी के साथ ही साथ छिलवा डाले, तब उसका चेहरा अधिक खिलेगा। इसी प्रकार ये जो ज़ुल्फ़ें लटकाये रहता है, उन्हें दो इंच ऊपर चढ़ाकर छुरे से साफ़ करवा डाले तो उसका चेहरा भले आदमियों के बीच में बैठने के लिए नितान्त अनुपयुक्त न होगा। बहन की इस बात पर मेना ज़रा-सा हँसकर रह गई।

एना ने कहा——एकाएक नवाब साहब बन गये है न! अभी तक आये नहीं। पाँच तो बज रहे हैं। शायद पैरों का महावर अभी तक ठीक नहीं हो सका? बरामदे से ज़रा देखती हूँ कि बाबू साहब आ रहे हैं या नहीं। यह कहकर हँसती हुई वह बरामदे में चली गई। बरामदे के जिस स्थान से फाटक के बाहर सड़क का थोड़ा-सा हिस्सा दिखाई पड़ता है, वहीं खड़ी होकर एना पुण्डरीकाक्ष के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

कुछ क्षण के बाद ही एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपनी भड़कीली

पोशाक पहने हुए घर से निकल पड़ा। बाद को वह इनकी कोठी के फाटक पर आकर ठमककर खड़ा हो गया। सन्तरियों से उसकी क्या बातचीत हो रही थी, यह एना इतनी दूर से नहीं समझ सकी। उसे पुण्डरीकाक्ष पर इसलिए क्रोध आ रहा था कि वह झर्राटे से चला क्यों नहीं आता। क्या वह वहाँ खड़े-खड़े दरबान की आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है? यदि उसे इतना भी साहस नहीं है तो बड़े-आदमीपन का भान वह क्यों करता है?

क्षण भर के बाद एना के मन में पुण्डरीकाक्ष के प्रति सहानुभूति का भाव जाग्रत् हो उठा। वह सोचने लगी——बेचारा करे ही क्या? इतने दिनों तक धनवानों के द्वार पर वह संकुचित होता आया है, इससे इसका हृदय भीरु हो उठा है। इसे किसी प्रकार मनुष्य बनाना होगा। यदि यह हमारे घर पर आने-जाने लगे तब तो खिल्लियों की चोट से ही मैं उसे दो दिन में रास्ते पर ले आ दूँगी।

इसके बाद ही एना ने सन्तरी को दरबान से यह कहते सुना कि पुण्डरीकाक्ष को भीतर जाने देने की आज्ञा मैनेजर साहब से माँग आओ। यह बात सुनते ही तो एना को भास्कर पर इतना क्रोध आया कि वह अधीर हो उठी। इससे पहले पुण्डरीकाक्ष पर उसे जो क्रोध आया था उसके लिए वह मन ही मन बहुत लज्जित हुई। अपनी अवस्था को भूलकर वह क्रोध के कारण तीखे स्वर से चिल्ला उठी——ऐ दरबान, बाबू को आने दो। उसके कण्ठ-स्वर का अनुसरण करके पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही सकरुण कृतज्ञता से भरी हुई, मुस्कराती हुई, दृष्टि से ताका वैसे ही वह लज्जित होकर दौड़ती हुई दीदी के पास गई और कहने लगी——दीदी बड़ा अनर्थ हो गया।

इधर राजाबहादुर पुण्डरीकाक्ष को लिये हुए ऊपर की बैठक की ओर चले। भास्कर सीढ़ी के नीचे से ही खिसका जा रहा था, यह देखकर राजाबहादुर ने कहा——भास्कर, तुम भी आओ।

बाद को पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह फेरकर उन्होंने कहा—इनका नाम श्रीमान् भास्कर राय हैं। ये मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी हैं।

भास्कर की ओर देखे बिना ही पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हाँ, इन्हें मैं जानता हूँ। इनसे मेरा परिचय है।

पुण्डरीकाक्ष का भाव देखकर भास्कर ने समझ लिया कि यह मेरी उपेक्षा करना चाहता है। इससे उसने मुस्कराकर राजाबहादुर से कहा—मुझे ज़रा-सा काम है, इससे अभी ही बाहर जाना होगा। सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते राजाबहादुर बीच ही में रुक गये। वहाँ से मुँह फेरकर नीचे की ओर ताकते हुए उन्होंने भास्कर से कहा—तो हम लोगों के साथ जलपान कर लेने के बाद जाने में क्या कोई हानि होगी?

भास्कर ने धीर किन्तु दृढ़तापूर्ण स्वर से कहा—क्षमा कीजिए, अब रुकने का अवसर नहीं है।

राजाबहादुर ने और कुछ नहीं कहा—पुण्डरीकाक्ष को लिये हुए वे ऊपर चले गये।

बैठक में पहुँचते ही राजाबहादुर ने खानसामा से कहा—घनश्याम, जाकर दीदी रानी आदि से कहो कि पुण्डरीकाक्ष बाबू आये हैं।

राजाबहादुर की बैठक विलायती क़ायदे से सजी थी। फ़र्श पर बढ़िया क़ीमती दरी बिछी हुई थी। दरी के ऊपर सोफ़ा, काउच, लाउञ्ज, चेयर आदि चारों ओर सजी हुई थीं। दरी के ऊपर दोनों बग़ल बाघ के दो चमड़े बिछे हुए थे। वे मरे हुए बाघ अपनी चमचमाती हुई आँखों तथा मुँह के बाहर निकली हुई दाँतों की पंक्ति लिये हुए आगन्तुकों की अभ्यर्थना कर रहे थे। कोने-कोने में संगमरमर की तिपाइयों पर प्रिवेरिया पाम और फैन पाम के वृक्ष रक्खे हुए थे। वे वृक्ष पीतल के सुन्दर सुडौल टबों में लगे थे। वे टब भी ब्रासो से मँजे होने के कारण सोने की तरह चमचमा रहे थे। कमरे

के बीच में सफ़ेद पत्थर का एक टेबिल था। टेबिल पर बीचोबीच में मुरादाबादी बिदरी के काम की पीतल की एक बड़ी-सी फूलदानी थी। उस फूलदानी के दोनों बग़ल दो फूलदानियाँ चाँदी की थीं। उन दोनों में तरह-तरह के, बरसाती फूल सजे हुए थे। तीनों फूलदानियों के बीच में ढाका की दो कामदार रिक़ाबियों में तरह-तरह के सुगन्धित फूल रक्खे हुए थे। दीवाल की बग़ल-बग़ल जो चेयर, सोफा, काउच आदि रक्खे हुए थे, उनके बीच-बीच में छोटे-छोटे टेबिलों पर और पाम के टबों के किनारे-किनारे काशी के पीतल के मुर्शिदाबाद के हाथी-दाँत के और कृष्णनगर के मिट्टी के खिलौने सजाकर रक्खे हुए थे। कमरे के बीच में जो टेबिल रक्खा था, उसके पास-पास दो टेबिल और थे। उन दोनों पर काशी की बड़ी-बड़ी कामदार थालियाँ लगी थीं। उन थालियों के ऊपर काँच के पावे के अर्द्ध-गोलकों में भिन्न-भिन्न रंगों की मछलियाँ सब्ज़ शैवाल के बीच-बीच में खेलती हुई तैरती-फिरती थीं। दीवार पर विलायत के उच्च कोटि के चित्रकारों के अङ्कित किये हुए चित्रों के फोटो टँगे थे। चीन-जापान के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न देशों के नये चित्रकारों के भी अङ्कित किये हुए चित्र टँगे थे।

पुण्डरीकाक्ष चारों ओर दृष्टि दौड़ा-दौड़ाकर देख रहा था कि सदा से सजे हुए इस कमरे की सजावट देखकर अपनी नवीन गृहसज्जा का कोई दोष दूर किया जा सकता है या नहीं। इतने में उस कमरे में आकर प्रवेश किया मेना ने। उसके साथ ही साथ एना भी आ पहुँची।

कमरे में मनुष्य के प्रवेश करने की आहट मिलते ही पुण्डरीकाक्ष ने चकित होकर जैसे ही मुँह फेरा, उसने देखा कि इतने दिनों की उसकी स्वप्न की-सी कल्पना, जिसे वह दुराशा समझे बैठा था, आज मनुष्य-वेश में उसके सामने आकर उपस्थित हो गई। देखते ही उसके शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। चौंककर कुर्सी से वह उतावली के साथ उठ खड़ा हुआ। उस समय पुण्डरीकाक्ष की वही दशा थी जो कि अन्त्यज जाति

के दीनात्मा भक्त की किसी देवप्रतिमा के सम्मुख पहुँचने पर होती है। जिस प्रकार देवमूर्त्ति के सम्मुख खड़े होने पर भाव-विह्वल भक्त की दृष्टि में भक्ति, भय एवं सम्मान का सम्मिश्रण होता है, ठीक उसी प्रकार की दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष भी मेना की ओर ताकता रहा। उसे आगन्तुक महिलाओं से नमस्कार तक करने का ध्यान न रह गया।

मेना का मुख अत्यधिक गम्भीरता से उज्ज्वल था और एना का मुख लज्जा के कारण उत्पन्न हुई मुस्कराहट से देदीप्यमान था। उन दोनों ने कमरे में आने पर बड़े ही सौजन्यपूर्ण ढंग से पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह किये हुए उसे नम्रतापूर्वक नमस्कार किया। यह देखकर पुण्डरीकाक्ष को भी चेतना हो आई। उसने भी मेना की ही ओर ताकते हुए जो नमस्कार किया वह प्रायः प्रणाम के ही समीप तक पहुँच गया।

राजाबहादुर ने कहा—यह मेरी बड़ी कन्या मेना है और यह छोटी कन्या एना! और ये पुण्डरीकाक्ष बाबू हैं।

ऐसे अवसर पर क्या करना या क्या कहना उचित है, पुण्डरीकाक्ष यह न निर्णय कर सका। इससे उसने बहुत ही झुके हुए माथे से जुड़े हुए दोनों हाथ भिड़ाकर फिर नमस्कार किया। मेना ने भी अपना मस्तक ज़रा-सा झुका लिया। एना न जाने कैसी एक अकारण लज्जा से लाल हो उठी।

पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि ये दोनों नवयुवतियाँ जिस किसी भी अङ्ग का संचालन करती हैं उसी में इनकी कुलीनता की, मर्य्यादा की, छाप होती है। ये कैसे प्रतिष्ठित वंश की कन्यायें हैं, इस बात का स्निग्ध परिचय इनके क्रिया-कलाप से यों ही चारों ओर बिखरा पड़ता है।

राजाबहादुर ने कहा—इन्होंने ऐसा बढ़िया मकान बनवाया है मेना कि तुम लोग देखतीं तो अवाक् हो उठतीं।

पुण्डरीकाक्ष लज्जा से संकुचित होकर मेना की ओर ताकते-ताकते अस्पष्ट स्वर में क्या-क्या कह गया, यह कोई समझ ही न सका।

राजाबहादुर ने कहा—मैंने अपनी कन्याओं से सुना है कि तुम्हें

पुलिस से उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करने पर चार मास तक कारागार की यातना भोगनी पड़ी है। यह समाचार तो पहले मुझे मिला नहीं था। आज मैंने सुना है। यह तो तुम्हारी बहुत बड़ी महत्ता है।

पुण्डरीकाक्ष अपनी प्रशंसा सुनकर सङ्कोच का-सा भाव दिखलाते हुए कुछ कह गया, परन्तु उसका एक अक्षर भी किसी की समझ में न आया।

राजाबहादुर ने पूछा—तुम मेरी कन्याओं को किस प्रकार पहचान सके ?

राजाबहादुर के मुँह से इस प्रकार का प्रश्न निकलते ही एना खिलखिलाकर हँस पड़ी। मेना ने चुटकी काटकर उसे इस बात का इशारा किया कि वह अपनी हँसी रोक ले। परन्तु मुख पर गम्भीरता का भाव लाकर अपनी हँसी रोकने का प्रयत्न करते समय वह एक अद्‌भुत अस्पष्ट शब्द करने लगी।

एना को हँसती देखकर पुण्डरीकाक्ष सहम गया। वह कुछ बोल नहीं सका, चुपचाप ही बैठा रहा।

राजाबहादुर ने कहा—तुम हम सब लोगों को पहचानते थे, परन्तु मैं तुम्हें नहीं पहचानता था। यह मेरी बहुत बड़ी भूल थी जो कि मैंने कभी तुम्हें पहचानने का प्रयत्न नहीं किया।

राजाबहादुर की यह बात सुनकर पुण्डरीकाक्ष फूलकर गद्‌गद हो उठा। हँसते हुए विनम्रतापूर्वक कोमल-स्वर से उसने कहा—आप लोग मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति को किस प्रकार पहचान सकेंगे ? मुझमें तो कोई ऐसा गुण है नहीं, जिसके कारण मैं किसी के लक्ष्य का विषय हो सकूं।

एना ने मन ही मन कहा—गुण हो या न हो, इस तरह का तड़क-भड़क का रूप तो है जो आँखों पर चोट करके आपको दूसरों के लक्ष्य का विषय बनाता है।

एना हँसती-हँसती उठकर बाहर चली गई। राजाबहादुर ने कहा—इसी लिए तो तुम्हारे प्रति हमारी कृतज्ञता और भी अधिक है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—कृतज्ञता किस बात के लिए है? मैंने इन लोगों की रक्षा करने की इच्छा भर की थी, रक्षा कर तो सका नहीं। परन्तु मैं आप लोगों का अत्यन्त ही अधिक आभारी हूँ। मैं जिन दिनों में सज़ा भुगत रहा था, उन दिनों में मेरी बुआ के भोजन का कोई ठिकाना नहीं था, वे भूखों मर रही थीं। ये लोग उन्हें बुलाकर प्रतिमास रुपया-पैसा और कपड़ा आदि दिया करती थीं। यह ऋण तो मुझसे किसी प्रकार भी नहीं चुकाया जा सकता।

पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर राजाबहादुर आश्चर्य्य में पड़ गये। उन्हें तो कोई बात मालूम थी नहीं। विस्मयपूर्ण और जिज्ञासा-मयी दृष्टि से वे मेना की ओर ताकने लगे। पुण्डरीकाक्ष की इस बात से मेना भी संकुचित हो उठी। कन्या का इस प्रकार का भाव देखकर तथा उसकी दयालुता और परोपकारशीलता का परिचय पाकर वे बहुत सुखी हुए। प्रसन्नभाव से उन्होंने कहा—तब तो हम लोगों का दोनों ही ओर से आत्मीयता का सम्पर्क स्थापित हो चुका है। अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है।

हँसी रोककर आँख-मुँह लाल किये हुए एना कमरे में लौट आई। दबाई हुई हँसी की चमक उसके अङ्ग-अङ्ग में उस समय भी लगी हुई थी। उसे देखते ही मेना ने कहा—एना, क्या भोजन परोसा गया है?

मेना के पास बैठती-बैठती एना ने मस्तक हिलाकर कहा—हाँ, परोसा जा रहा है।

राजाबहादुर ने कहा—मेना, तुम जाकर देखो, विलम्ब हो रहा है अब।

मेना को उठकर जाती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने व्यस्त होकर कहा—नहीं, नहीं। आप बैठिए, भोजन के लिए इतनी उतावली करने की

कौन-सी बात है ? वह सब होता रहेगा। सारा प्रबन्ध हो जाने पर नौकर लोग स्वयं सूचना देंगे।

मेना उठकर खड़ी थी। दूसरों की आँखें बचाकर उसका हाथ पकड़कर नीचे को ज़रा-सा खींचती हुई एना ने उसे बैठने का इशारा किया और वह स्वयं हँसी से भरा हुआ एक कटाक्ष मेना के मुख पर मारकर उठकर चलती बनी।

पासवाले कमरे से तत्क्षण ही लौट आकर एना ने कहा—भोजन परोसा जा चुका है।

राजाबहादुर ने उठते-उठते कहा—चलो पुण्डरीकाक्ष।

राजाबहादुर के साथ ही साथ पुण्डरीकाक्ष और मेना, दोनों ही उठकर खड़े हुए।

राजाबहादुर आगे की ओर बढ़े। किन्तु पुण्डरीकाक्ष ने उनका अनुसरण नहीं किया। वह तटस्थभाव से खड़ा-खड़ा मुग्ध दृष्टि से मेना की ओर ताकता रहा।

उसे इस प्रकार खड़ा देखकर मेना को सङ्कोच हो रहा था। उसने कोमल स्वर से अनुरोध किया—चलिए।

पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही सम्मानपूर्वक कहा—आगे-आगे आप चलिए।

मेना ने सोचा कि इनकी बात काटना अच्छा न मालूम पड़ेगा, इससे वह चल पड़ी। पुण्डरीकाक्ष उसके पीछे-पीछे चला।

पिता के समीप पहुँचकर मेना ने कहा—बाबू जी, भास्कर बाबू को नहीं बुलाया आपने?

राजाबहादुर ने कहा—भास्कर न आवेगा। उसे तो हम लोगों ने निमंत्रित किया नहीं। हम लोगों ने सोचा था कि वह तो हमारे यहाँ प्रतिदिन ही भोजन किया करता है, आज भी करेगा। परन्तु आज भोजन की विशेष प्रकार की व्यवस्था की गई है। एक बाहरी आदमी के साथ में भोजन करना है। हम लोगों का कर्त्तव्य था कि आज

हम उसे नियमित रूप से निमंत्रित करते। हमने यह बहुत बड़ी भूल कर दी है।

मेना का मुख म्लान और गम्भीर हो उठा। वह और कुछ नहीं बोली।

पुण्डरीकाक्ष ने पासवाले कमरे में जाकर देखा तो एक बड़े से अंडे के आकार के संगमरमर के टेबिल पर भोजन परोसा गया था। उस टेबिल के ऊपर चाँदी की तश्तरी, कटोरी और गिलास आदि का तो मानो ढेर लगा दिया गया था। एक तश्तरी में नमकीन भोजन था, एक तश्तरी में मिठाइयाँ थीं और एक में आम, जामुन, कटहल आदि फल थे। इसी प्रकार एक तश्तरी में काबुली मेवे और विदेशी फल सजाकर रक्खे हुए थे। कटोरियों में से किसी-किसी में तरकारियाँ थीं, किसी में मांस-मछली थी, किसी मे रबड़ी थी, किसी में दही था, किसी में खीर थी। गिलासों में तरबूज़ और दही का शरबत था, केवड़े से सुवासित किया हुआ जल था। बर्फ़ की ठंढक के मारे गिलासों में हाथ तक नहीं लगाया जाता था।

राजाबहादुर जाकर टेबिल के एक किनारे पर बैठ गये। उनकी दोनों कन्यायें टेबिल के दोनों ओर आमने-सामने बैठी। राजाबहादुर के सामने बैठा पुण्डरीकाक्ष। मेना की बग़ल में एक कुर्सी ख़ाली पड़ी रही। उस कुर्सी के सामने जो भोजन-सामग्री सजाकर रक्खी हुई थी, वह भी पड़ी रह गई। वह आसन लगाया गया था भास्कर के लिए मेना तो यह बात जानती नहीं थी कि वह आवेगा नहीं।

भोजन के समय बात छिड़ी देश की वर्त्तमान अवस्था के सम्बन्ध की। राजाबहादुर ने बात ही बात में पुण्डरीकाक्ष से अपने जेल के अनुभव बतलाने को कहा। बेचारा पुण्डरीकाक्ष अभी तक इसी चिन्ता में पड़ा था कि किस प्रकार की बात छेड़ी जाय। इतनी देर के बाद उसे एक विषय मालूम हो गया, जिसकी चर्चा की जा सकती थी, इससे पुण्डरीकाक्ष ने बड़ी ही शान्ति का अनुभव किया। जेल के सम्बन्ध में

उसने जो कुछ अभिज्ञता प्राप्त की थी, उसका वह उत्साहपूर्वक वर्णन करने लगा।

बातचीत करते-करते भोजन समाप्त हो गया। राजाबहादुर ने कहा—तुमने तो कुछ खाया ही नहीं। ये सारी खाद्य सामग्रियां घर में ही लड़कियों ने बनाई हैं। क्या ठीक नहीं बनी?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जरा-सा मुँह में डालते ही मैंने समझ लिया था। किसी हलवाई के बाप को भी इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती कि वह इस तरह की चीजे तैयार कर दे। इसके स्वाद मे इस तरह का माधुर्य्य है कि केवल देवता ही लोग अमृत का आस्वादन करते समय इसका अनुभव कर सकते हैं।

पुण्डरीकाक्ष की कवित्वमय प्रशंसा सुनकर राजाबहादुर भी हँसे, मेना भी हँसी और एना भी हँसने लगी।

राजाबहादुर ने कहा—परन्तु तुम अभी ही न जाने पाओगे। तुम बैठे बैठे लडकियो से बातचीत करो, तब तक मै सन्ध्या-पूजा आदि से निवृत्त हो आऊँ।

पुण्डरीकाक्ष को लड़कियों के साथ अकेले रहने का अवसर देने के लिए राजाबहादुर इस बहाने से उठ गये। उनके उठकर जाते ही मेना ने कहा—एना, तुम इन्हें ले चलकर बैठक में बैठालो, मै तब तक बाबू जी के सन्ध्योपासन-आदि का आयोजन कर आऊँ।

अब एना और पुण्डरीकाक्ष अकेले रह गये। पहले कुछ क्षण तक दोनों ही नीरव थे, किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। एना इस ताक में थी कि पहले पुण्डरीकाक्ष बोले और पुण्डरीकाक्ष इस ताक मे था कि पहले एना बोले। इसके सिवा वे दोनों इस चिन्ता में भी थे कि बोलूँ भी तो क्या बोलूँ? परन्तु अधिक समय तक इस तरह मौन रहना भी अच्छा नहीं मालूम पड़ रहा था, इससे पहले एना का ही कण्ठ खुल गया। उसने कहा—आपसे हम लोगों को क्षमा माँगनी है?

मेना के न होने के कारण पुण्डरीकाक्ष इस समय बहुत अच्छी तरह

से और सरलतापूर्वक साहस करके बातचीत कर सकता था। एना की इस बात के उत्तर में रहस्यपूर्ण स्वर में उसने कहा—क्या ? क्षमा किस बात के लिए माँगनी है ? आपने अपराध कौन-सा किया है ?

मस्तक नीचा किये हुए कुण्ठितभाव से एना बोली—दरबान ने आपको फाटक पर रोक रक्खा था।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—यह तो उसने अच्छा ही किया था। इससे इस बात की परीक्षा हो गई कि इस भक्त की भक्ति कहाँ तक अटूट है। देवी के मन्दिर में दीन भक्त का प्रवेश क्या कभी बिना रुकावट के हो सकता है ?

एना का संकोच दूर होता जा रहा था पुण्डरीकाक्ष की कवित्वमय प्रशंसा और हास्य सुनकर। उसने अपना झुका हुआ मस्तक उठा लिया और बोली–आपका इसलिए भी हमारे ऊपर बहुत बड़ा कृतज्ञता का भार है कि आपने हमारे कारण कई महीने तक जेल की यातना सहन की है।

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा—यह भी तो मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है। तपस्या किये बिना क्या मनुष्य कभी देवी की प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है ? भाग्य की ही बात थी कि पुलिस के चंगुल में फँस गया था मैं। इसी कारण मेरी बुआ को आप लोगों के द्वार पर आने के लिए बाध्य होना पड़ा और देवी की कृपा-दृष्टि भी मेरी ओर दौड़ पड़ी। यदि ऐसा न होता तो मैं आप लोगों के लिए सदा अपरिचित ही बना रह जाता।

एना ने हँसकर कहा—नहीं, यदि ऐसा न होता तो क्या हम लोग आपको पहचानते ही नहीं थे ?

एना की बात दोहराते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—ठीक कहती हैं आप ? 'एना' की दृष्टि पहले भी मुझ पर पड़ी थी। तभी तो शायद आज एणाक्षी का करुणा-कटाक्ष-पात होने के ही कारण भयंकर

[द्व]ारपालों की बाधा ठुकराकर देवी के मन्दिर में प्रवेश करने में समर्थ [ह]ोकर जीवन को धन्य कर लिया है मैंने।

एना स्वभाव से ही रसिक थी। हँसी-मजाक उसे बहुत पसन्द था। [उ]स पर पुण्डरीकाक्ष की वाचालता उसके हृदय को और प्रफुल्लित [क]िये दे रही थी। सड़क पर रोज देखते-देखते पुण्डरीकाक्ष उसके [ल]िए बहुत पुराना हो चुका था। इससे वह यह बात बिलकुल ही [भ]ूल गई कि पुण्डरीकाक्ष आज पहले-पहल हमारे यहाँ आया है, उससे [आ]ज हमारा नया-नया परिचय हो रहा है। इतने दिनों से उसके [ह]ृदय में जो कौतुक एकत्र हो उठा था, उसी का उच्छ्वास एकाएक [उ]मड़ आया और वह इस तरह खट-खट बातचीत करने लगी कि मानो [व]ह एक बहुत ही परिचित व्यक्ति से बातें कर रही है। वह एक [अ]द्भुत भाव-भङ्गी से कहने लगी—नहीं साहब, यह बात नहीं है। [क]ेवल आज ही एणाक्षी के कटाक्षपात ने आपके जीवन को धन्य नहीं [क]िया। आपका जीवन तो बहुत दिनों से धन्य होता आ रहा था।

पुण्डरीकाक्ष ने कौतूहल मे आकर हास्यमय स्वर में कहा—[इ]स प्रकार का सौभाग्य इस अभाजन को कैसे हुआ? किस शुभ मुहूर्त [म]ें स्वाती-नक्षत्र का जल इस साधारण से शुक्ति-पुट पर पड़ा था, [क]िन्तु उसका इसे पता तक न चला।

एना खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने कहा—शुक्ति-पुट पर नहीं [प]ड़ा। पड़ा है हस्ति-मूर्ख के मस्तक पर। नहीं तो क्या वह अन्धा [ह]ोकर देख न पाता कि हम लोग उसे रोज-रोज सड़क पर मुँह बाये [ख]ड़ा देखा करती थीं?

दर्शन की कामना से खड़े-खड़े पुण्डरीकाक्ष जो कठोर साधना किया [क]रता था, वह व्यर्थ नहीं हुई, यह समाचार पाकर पुलकितभाव [स]े उसने कहा—ठीक कहती हैं आप। स्वाती-नक्षत्र का जल पड़ा [थ]ा हस्ति-मूर्ख के मस्तक पर, जिससे कि अत्यन्त दुष्प्राय गजमुक्ता [ह]स्ती के मस्तक पर तो उत्पन्न हुआ, किन्तु हाथी का हाथी मूर्ख

था और उसके मस्तक पर जो जल पड़ गया उसके कारण वह आँख रहते हुए भी अन्धा होकर दृष्टि की भिक्षा के लिए प्रतिदिन सड़क के किनारे पर लोलुपभाव से ताकता हुआ खड़ा रहा करता था। यह बात कभी वह मन में भी नहीं ला सका कि मैं प्रतिदिन ही भिक्षा के रूप में सुवर्ण-कण पा-पाकर महाधनी होता जा रहा हूँ। वह तो यही सोचा करता था मैं शायद ख़ाली ही भिक्षा-पात्र लिये लौटा आया करता हूँ। उस भिक्षा-पात्र में प्रतिदिन जो सुवर्ण-कण डाल दिये जाया करते थे, उनका ज्ञान तो उस अन्धे को हो नहीं पाता था। कितने तो ऐसे भी दिन गये हैं जब कि उसने अपने भिक्षा-पात्र को टटोल-टटोलकर देखा है। उसने ऐसा अनुभव किया है कि शायद मेरे इस पात्र में बालू के कण किरकिरा रहे है। जिन कणों को यत्नपूर्वक संचित कर रखना चाहिए था, उन्हें उसने उपेक्षा के साथ भाड़-भाड़कर फेंक दिया है।

एना ने खुश होकर कहा—तो पहले जो कुछ नुक़सान हो गया है, वह सब अब ब्याज के सहित वसूल कर लीजिएगा। अब तो आँख खुली है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हाँ, ऐसे बहुत-से प्राणी हैं, जिनकी आँख जन्मकाल में ही नहीं खुलती, उसके लिए कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस प्रकार नवजन्म के बाद यद्यपि मेरी भी आँख खुली किन्तु इन आँखों से देखने योग्य जो वस्तु है, वह तो अब भी उस अवस्था की ही तरह दुर्लभ रह जायगी।

मुख पर प्रसन्नता की रेखा विकसित किये हुए एना ने कहा—दुर्लभ क्यो रह जायगी? एक सड़क पार करके चला आना क्या इतना कठिन काम है? जो अन्धा था वह क्या अब लँगड़ा हो गया है?

आह्लाद के मारे पुण्डरीकाक्ष का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उसने कहा—यदि उसे यह करुणा का आश्वासन मिल जाय तो इस सड़क की क्या बात है, लँगड़ा दुस्तर पारावार पार करने में भी भयभीत नहीं होगा।

एना ने हँसकर कहा—पारावार पार करने का अभ्यास बहुत दिनों

से है, यह मैं जानती हूँ। किन्तु उतना क्लेश सहन करने की आवश्यकता न पड़ेगी। केवल यह सड़क पार कर लीजिए, बस! कर सकेंगे? साहस होगा?

पुण्डरीकाक्ष उच्छ्वासमय स्वर से एक कविता का आधा अंश पढ़ गया, जिसका भाव है--

केवल यह सड़क पार करने में भय किस बात का है? जय अभया की, जय!

बाद को महाकवि वाल्मीकि के श्लोक को ज़रा-सा परिवर्तित करके उसने पढ़ा--

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तामह वन्दे वराभयप्रदायिनीम्॥

किन्तु देखिएगा, अधिक प्रश्रय न दीजिएगा। जानती तो हैं कि आप कलिकाल के ब्राह्मण और बलिदान के बकरे समान होते हैं। इन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं होता, ये प्रश्रय के ही लिए पागल रहते हैं। लोभी को निमन्त्रण दे रही हैं, बाद को कहीं फिर भी ऐसी परिस्थिति न आ जाय कि दरबान से गला पकड़कर धक्का दिलवाना पड़े। मैं रोज़-रोज़ आया करूँगा, यह बताये रखता हूँ।

एना ने हँसते-हँसते कहा--तथास्तु! दरबान ने धक्के की बोहनी तो कर ही दी है, किन्तु ऐसी व्यवस्था कर दूँगी जिससे कि बाद को उसे अपनी शक्ति का और अपव्यय न करना पड़े।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा--एक और विषय में अभय चाहता हूँ। मैं रोज़-रोज़ आऊँगा, किन्तु बाद को भी कहीं इस तरह आहार का पहाड़ न तैयार रहा करे।

मुस्कराती हुई एना बोली--क्यों? शायद ठीक नहीं बना है!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा--साक्षात् लक्ष्मियों ने अपने हाथ से जो अमृत परोसा है, उसे भला मैं कभी ख़राब कह सकता हूँ? जितनी मात्रा में मेरे सामने लाकर रक्खा गया था, उससे स्वयं दशानन को भी हार

माननी पड़ती। कुम्भकर्ण की बात अवश्य अलग है। उतना भोजन उनके लिए यथेष्ट होता या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

एना ने हँसते-हँसते कहा—कहा क्यों नहीं जा सकता? शायद बात बहुत पुरानी हो जाने के कारण भूल गई होगी? देखती हूँ कि आप जितनी भी उपमाओं का प्रयोग करते हैं, वे सभी त्रेतायुग की स्मृति की ही उपज हैं! कहीं आप रामचन्द्र के दल के एक महावीर तो नहीं थे?

एना की इस हास्यमय बात से प्रसन्न होकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा—नहीं, नहीं, इस प्रकार का सौभाग्य मुझे नही प्राप्त हुआ।

इतने में मेना ने आकर कमरे में प्रवेश ा।

पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही देखा कि मेना आ रही है, वैसे ही अत्यन्त ही गम्भीर होकर उतावली के साथ उसने कुर्सी छोड़ दी और वह उठकर खड़ा हो गया।

मेना को देखते ही एना बोल उठी—दीदी, ये रोज़-रोज़ आने के लिए पास्पोर्ट माँग रहे हैं और अभय चाहते हे कि दरबान बाद को भी इन्हें न रोके।

मेना हँसती हुई बोली—तुम्हारे अभयदान कर देने पर ही ये निर्भय होकर आ-जा सकेंगे। तुम इतनी वाचाल हो!

एना ने हँसते ही हँसते उत्तर दिया—मेरी वाचालता के ये थोड़ा-बहुत आदी हो गये हैं। आगे चलकर इन्हें यह अत्यन्त असह्य न मालूम पड़ेगी। आज पहली मुलाक़ात में ही इन्होंने इस प्रकार का परिचय दिया है कि अब चिड़ियाखाने में जाना आवश्यक नहोगा।

पुण्डरीकाक्ष ने लज्जितभाव से मुँह लाल किये हुए दबी आवाज़ से एना से कहा—आह! इनके सामने तुम यह सब क्या बक रही हो? क्या कहेंगी ये अपने मन में?

कौतुक का अनुभव करती हुई एना बोली—क्यों? इन्हें देखने पर

इस तरह के बुद्धू क्यों बन जाते हो ? जब तक मैं अकेली थी तब तक तो मुँह खुजला रहा था आपका।

एना की इस प्रकार की बात से जरा कुछ अधीर-सा होकर पुण्डरीकाक्ष कहने लगा—आह ! क्या सब तरह की बातें इनके सामने कह जाना उचित है ?

मेना के सामने पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रकार का सङ्कोच कर रहा था और बहुत-सी बातें उससे छिपाने का प्रयत्न कर रहा था उसका अर्थ मेना और एना दोनों ने ही समझ लिया। उनके मन में यह बात आई कि पुण्डरीकाक्ष तो एना को अपनी हृदयेश्वरी बनाने की कामना से आया है, इसलिए उससे वह हँसी-मजाक करेगा, और भी खोलकर हर तरह की बातें करेगा। इस सम्बन्ध में वह यह भी चाहेगा कि उन दोनों में जो कुछ बातें हों वे उन्हीं तक सीमित रहें, किसी और व्यक्ति के कानों तक वे न पहुँच पावें। अनुमान से उसका यही उद्देश्य समझकर एना ने लज्जित-भाव से मुस्कराते हुए एक कटाक्ष मारा और चुप हो गई। और मेना ? वह गुरुजन की तरह अत्यन्त ही गम्भीर हो उठी।

मेना और एना, दोनों ने ही मुँह बन्द कर लिया। यह देखकर पुण्डरीकाक्ष बड़े झंझट में पड़ गया। ऐसी परिस्थिति में क्या कहना या करना उचित है, इस बात का निर्णय न कर सकने के कारण उसने मेना को नमस्कार किया।

मेना ने उसके नमस्कार का यह अर्थ लगाया कि अब ये बिदा माँग रहे हैं। यह सोचकर उसने कहा—आप अभी ही चले जा रहे हैं ? पिता जी से मुलाकात किये बिना ही चले जायँगे ? वे अब आते ही होंगे।

पुण्डरीकाक्ष नीरव होकर बैठा रहा। एना का भी मुह न खुला। तब और कोई उपाय न देखकर मेना को ही बात-चीत आरम्भ करनी पड़ी। उसने पूछा—आपके नये मकान का गृह-प्रवेश कब होगा ? मूक की तरह करुणभाव से मेना की ओर ताकते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जिस दिन आप कहेंगी।

पुण्डरीकाक्ष के इस उत्तर का मेना और एना कोई अर्थ नहीं समझ सकीं। इससे उन दोनों ने समझ लिया कि यह कितना मूर्ख है। उसकी इस प्रकार की मूर्खता पर मेना तो मन ही मन हँस कर रह गई किन्तु एना से जोर से हुहू-हुहू किये बिना न रहा गया। पुण्डरीकाक्ष लज्जा के मारे गड़ गया।

और किसी प्रकार की बात-चीत की सम्भावना न देखकर मेना ने कहा—चलूँ, ज़रा देखूँ तो कि पिता जी की पूजा समाप्त हुई या अभी नहीं। यह कहकर मेना उठकर चल पड़ी। उसे उठती देखकर शान्तभाव से पुण्डरीकाक्ष भी उठकर खड़ा हो गया।

मेना के चले जाने पर एना ने हँसते-हँसते कहा—दीदी को देखकर आप डर के मारे इस तरह भीगी बिल्ली क्यों बन जाते हैं? दीदी बाहर से जितनी गम्भीर हैं, भीतर से भी उतनी ही नहीं हैं। इसके सिवा भयङ्कर तो वे बिलकुल ही नहीं हैं।

अब बहुत ही जी खोलकर हँसते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—नहीं, नहीं, कोई ऐसी बात नहीं है। परन्तु पता नहीं, क्यों मैं उनके सामने कुछ बोल नहीं सकता हूँ?

कौतुक का अनुभव करती हुई एना बोली—क्यों? कौन-सी ऐसी बात है? क्या वे गुरुजन हैं, इसलिए? इसी से इतना सम्मान दिखलाते हो?

पुण्डरीकाक्ष ने गम्भीर होकर कहा—नहीं, गुरुजन तो नहीं हैं, किन्तु——

पुण्डरीकाक्ष किन्तु के बाद और क्या कहना चाहता था, यह बात जानने के लिए केवल अनुमान का ही सहारा रह गया। वह जो उसके नितान्त ही गुप्त मर्म की बात थी, उसे वह किसी के भी सम्मुख प्रकट नहीं कर सकता था।

पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रश्न को इस प्रकार टाल गया, उसका एना ने एक मनमाना ही अर्थ लगा लिया। उसने अपने मन में यह सोच लिया कि

पुण्डरीकाक्ष मुझे अपनी समकक्ष और प्रणयपात्री समझता है, इसी लिए वह मुझसे बहुत खुल कर बातें करता है, हँसी-मज़ाक भी कर लेता है। परन्तु दीदी को वह एक मान्य व्यक्ति समझता है, इससे उनके सामने संकुचित होकर चुप बैठा रहता है।

एना इस प्रकार की कल्पनायें कर ही रही थी कि राजाबहादुर ने आकर कमरे में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे मेना भी आई।

राजाबहादुर के कमरे में प्रवेश करते ही पुण्डरीकाक्ष फिर उठकर खड़ा हो गया।

राजाबहादुर ने कहा—अभी ही जाना चाहते हो? अच्छी बात है, तब चलो फिर कभी-कभी टहलते चले आया करो, हम लोग तो सदा अकेले ही रहा करते हैं।

पुण्डरीकाक्ष उठकर खड़ा हुआ था राजाबहादुर को सम्मान प्रदर्शित करने के लिए और विशेषतः एना की अभ्यर्थना करने के लिए। उठकर खड़ा होते समय उसकी जाने की ज़रा भी इच्छा नहीं थी। मेना के पास से हटने को उसका जी ही नहीं चाहता था। परन्तु राजाबहादुर अच्छा कहकर जब उसे बिदा दे चुके तब वहाँ रुकने की कोई गुंजाइश न रह गई, विवश होकर उसे घर की ओर पैर बढ़ाने ही पड़े। यद्यपि चाहता वह यही था कि यहीं बैठे-बैठे मेना के मुंह की ओर एक दृष्टि से ताकता रहूँ।

पुण्डरीकाक्ष नमस्कार करके बिदा हुआ। मेना सीढ़ी के पास तक उसे पहुँचाने के लिए गई। वह मेना की ही ओर मुंह फेरे हुए सीढ़ी से उतरने लगा, इस कारण उसका एक पैर सीढ़ी पर से फिसल गया और वह गिरते-गिरते बचा। इससे परम गम्भीर मेना के मुख पर भी हँसी दिखाई पड़ गई। पुण्डरीकाक्ष अत्यन्त ही लज्जित होकर तेज़ी के साथ सीढ़ी से उतर गया।

पुण्डरीकाक्ष का पैर फिसलने की आहट पाकर एना भी कमरे से निकल आई और वह खिलखिलाकर हँसने लगी। एना की ओर मुंह

फेरे हुए खड़ी-खड़ी मेना ने मुस्कराहट के साथ कहा—तू उस भले आदमी को आज पहले ही दिन इतना सब क्या-क्या कह गई !

एना ने खूब हँसते-हँसते कहा—कोई वैसी बात नहीं कही दीदी। वे त्रेतायुग के एक वीर हैं न, केवल यही उनसे पूछ रही थी।

मेना चकित होकर बोल उठी—बाप रे ! एक भले आदमी के साथ इस तरह का ठट्ठा करते समय तेरी ज़बान नहीं रुकती ? क्या धारणा अपने मन मे लेकर गये होंगे वे ?

एना ने कहा—धारणा क्या लेकर गया है वह ? डैम ग्लैड होकर गया है। कहता था कि रोज़ आया करूँगा। बड़े मज़े का आदमी है दीदी। हम लोगों का साँझ का समय बड़ा डल रहता है, उसके साथ में बड़े मज़े में कट जायगा। वह आदमी भास्कर बाबू की तरह घुम्मा बिलकुल नही है। मुंह बन्द किये हुए बैठा रहनेवाला आदमी मुझे ज़रा भी नहीं सुहाता।

एना की इस बात से सन्तुष्ट होकर मेना ने पूछा—उनसे ज़ुल्फ़ों-उल्फ़ों के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा ?

एना ने मुस्कराहट के साथ कहा—नहीं, आज नहीं कह सकी। अभी बहुत-सी बातें कहनी हैं। ज़ुल्फ़ें दो इंच ऊपर करवाने को कहना है, हाथ की आठ अँगूठियों में से सात उतारकर रख देने को कहना है, साथ ही यह भी समझा देना है कि इस तरह का स्त्रियों का-सा गहरे रंग का भड़कीला कुर्ता पहनना असभ्यता का द्योतक है। स्त्रियों के मुंह की ओर ध्यान लगाये हुए ताकते रहना ठीक नहीं है, इस बात के लिए भी ज़रा-सा उन्हें सचेत कर देना होगा। इसी तरह की और भी जितनी आवश्यक बातें ध्यान में आवेंगी, वे सभी कह देनी होंगी। जान पड़ता है कि उन्हें मनुष्य बनाने का भार मुझे स्वयं अपने ही ऊपर लेना पड़ेगा।

एना की इन बातों से मेना ने यह समझ लिया कि एना के हृदय में पुण्डरीकाक्ष के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है और

पुण्डरीकाक्ष भी एना के प्रति आकर्षित है। इससे पिता की अभिलाषा पूरी होने में अब कोई कठिनाई नहीं है। यही सोचकर हँसती-हँसती वह पिता के पास गई।

मेना को देखकर, राजाबहादुर ने कहा—आदमी तो वह बहुत ही सरल और शान्त मालूम पड़ता है।

मेना ने कहा—हाँ, बड़ा अच्छा आदमी है।

मेना के साथ ही साथ एना भी आगई थी। उसने मेना के कान के पास कहा—एकदम गँवार है।

हँसकर बहुत धीमे स्वर से, जिससे कि पिता के कानों तक बात न पहुँच सके, मेना बोली—परन्तु तू तो उस पर रंग चढ़ाने का कठिन व्रत ग्रहण करने को तैयार ही हो गई है।

एना ने कहा—करूँ क्या भाई, पड़ोसी का भी तो कुछ कर्तव्य है ?

राजाबहादुर ने कहा—उससे तुम लोगों ने कह दिया है न कि कभी-कभी चले आया करो ?

पिता के इस प्रश्न के कारण एना को इतनी हँसी आई कि वह पैर बढ़ाती हुई कमरे से निकलकर चली गई। परन्तु मेना ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—हाँ, एना ने उससे रोज़-रोज़ आने को कहा है।

राजाबहादुर ने कहा—तुम्हारी क्या धारणा है, एना को वह पसन्द आवेगा या नहीं ?

मुस्कराती हुई मेना बोली—पसन्द तो उसे आ ही गया है। इतने ही समय में उन दोनों की खूब पट गई। बड़ी देर तक वे लोग खूब गप-शप करते रहे।

मेना की इस बात से राजाबहादुर का मुख प्रसन्न हो उठा। उन्होंने कहा—तुम्हें इस बात के लिए ज़रा-सा प्रयत्न भी करना चाहिए कि उन दोनों में काफ़ी प्रेम हो जाय। उसके साथ एना

का विवाह कर देने के बाद यदि मैं अपनी ज़मींदारी उसके यहाँ रेहन कर सकता तो ज़मींदारी किसी ग़ैर के हाथ न लग पाती। समझ लूँगा कि लड़की-दामाद को ही दे दिया है। तुम्हारे लिए मैं कुछ रख न सकूँगा, यही मुझे सबसे अधिक दुःख हो रहा है।

मेना ने बहुत कोमल स्वर से धीरतापूर्वक पिता को सान्त्वना देने के विचार से कहा—बाबू जी, मेरे लिए तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता न करनी होगी। तुम्हारे आशीर्वाद से मुझे किसी भी वस्तु का अभाव न रहेगा।

राजाबहादुर ने कहा—यह बात तो है बिटिया, यदि मैं किसी प्रकार तुम्हें कुमीरखाली के ज़मींदार के हाथों में सौप पाता तो फिर तुम्हें किसी बात की कमी न रह जाती, तू वहाँ राजरानी होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती।

गम्भीर होकर मेना ने मस्तक झुका लिया। पुत्री के मस्तक पर दाहिना हाथ रक्खे हुए राजाबहादुर उस पर पिता का स्नेह उँड़ेलने लगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

गृह-प्रवेश

पुण्डरीकाक्ष प्रायः प्रतिदिन ही मेना आदि के यहाँ घूमने के लिए जाया करता। वह एना से खूब घुल-घुलकर बातें किया करता, हँसी-मज़ाक़ किया करता। इस प्रकार वह बहुत-सा समय वहाँ व्यतीत कर आया करता था। परन्तु मेना के समीप आते ही पता नहीं क्यों, उन दोनों ही का मुंह अपने आप बन्द हो जाया करता। इससे मेना और राजाबहादुर प्रसन्न हुआ करते थे यह सोचकर कि पुण्डरीकाक्ष के साथ एना की प्रीति दिन-दिन प्रगाढ़ होती जा रही है।

पुण्डरीकाक्ष एना से हँसी-मज़ाक़ किया करता था, उसे अपनी छोटी साली समझकर। इधर एना की धारणा थी कि पुण्डरीकाक्ष मुझसे प्रेम करने लगा है, इसी लिए वह मेरे प्रति इस प्रकार की ममता प्रकट करता है। वह मुझे अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता है, यही कारण है कि वह मुझसे इस तरह हँसी-मज़ाक़ किया करता है। मेना को गुरुजन समझकर वह उसके सामने मौन रहा करता है। परन्तु पुण्डरीकाक्ष जो मेना के सामने मुंह खोलने का साहस नहीं किया करता था, उसका यह कारण बिलकुल नहीं था। वह मेना के प्रेम में इतना अधिक पड़ गया था, कि उसका वह प्रेम सम्मान और भक्ति में रूपान्तरित-सा हो गया था।

पुण्डरीकाक्ष की इच्छा प्रबल होकर उसे प्रतिदिन ही मेना के समीप जाने के लिए प्रेरित किया करती। परन्तु लज्जा और भय के कारण किसी-किसी दिन वह नहीं भी जा पाता था। यह बात अवश्य थी कि जिस दिन वह नहीं जाता था उस दिन उसी तरह छटपटाते-

छटपटाते अपना समय व्यतीत किया करता था, जिस तरह कि नशाख़ोर समय आने पर नशा के बिना व्याकुल हो जाया करता है। कभी तो वह अपनी अत्यन्त उच्च अट्टालिका की छत पर चढ़ जाया करता और कभी राजाबहादुर की कोठी के सामने फाटक के बीच से झाँक-झाँककर टहलता रहता। वह सोचता कि शायद किसी साँस से एक क्षण के लिए मेना की झलक मिल ही जाय। किसी-किसी दिन मेना या एना उसे ऐसा करते देख भी लिया करती थीं। उस समय चोरी में पकड़े जाने के कारण लज्जा से संकुचित होकर वह भाग जाया करता था।

मेना जब कभी पुण्डरीकाक्ष को इस अवस्था में देख पाती तब उसके मन में यह धारणा आती कि वह एना को देखने के लिए व्याकुल होकर लोलुप चोर की वृत्ति का अवलम्बन कर रहा है। इससे वह बहुत ही कौतुक का अनुभव किया करती थी। एना जब उसे इस रूप में देख पाती तब सोचती कि पुण्डरीकाक्ष के लिए मेरा कुछ समय का भी वियोग सह्य नहीं है, इसी से वह चोर की तरह झाँकता फिरता है। इससे वह कल्पना किया करती थी कि मेरे प्रति पुण्डरीकाक्ष को अत्यन्त अधिक अनुराग है। इस कल्पना के कारण अनुराग से और भी अधिक उसकी ओर आकर्षित होती जाती, साथ ही मन ही मन अत्यन्त आनन्द तथा आत्म-संतोष का अनुभव करती।

एना ने अब दीदी से पुण्डरीकाक्ष की खिल्लियाँ उड़ाना बन्द कर दिया। पुण्डरीकाक्ष जो इस प्रकार छिप-छिपकर देखने का प्रयत्न किया करता था, उसके सम्बन्ध में विचार करने की बात भी अब उसकी अकेले की गुप्त सम्पत्ति के रूप में रहा करती थी। उसकी सूचना दीदी को देने में वह लज्जा का अनुभव करती और यक्ष के धन की तरह उसे छापे बैठी रहा करती। वह सोचती--जो कुछ है, वह रहे, मेरा ही होकर रहे। मेना उन दोनों का लुका-छिपी का खेल

देख लेने पर भी बहुधा इस प्रकार का भाव दिखलाती कि मानो उसने कुछ देखा ही नही।

एक दिन सबेरे पुण्डरीकाक्ष बाज़ार से बहुत-सा सामान ख़रीद ले आया। यह देखकर उसकी बुआ ने पूछा—यह सब सामग्रियाँ क्या होंगी रे पुण्डरीकाक्ष ?

पुण्डरीकाक्ष ने उत्तर दिया—हमें अपने नये मकान का गृह-प्रवेश करना होगा बुआ जी।

बुआ जी ने पूछा—कितने आदमियों को तूने निमन्त्रण दे रक्खा है ? क्या इतनी भोजन-सामग्रियाँ अकेले मेरे तैयार किये होने को हैं ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अभी तक किसी को निमन्त्रण नहीं दिया। कल रात को खिलाऊँगा। आज दूसरे वक़्त तक निमन्त्रण दे दिया जायगा। कुछ अधिक आदमियों को निमन्त्रण देने का विचार नहीं है। कौन हमारे बहुत-से भाई-बिरादरी, नातेदार-रिश्तेदार और मेली-मुलाकाती हैं कि उन सबको निमन्त्रण दूँगा। इसके सिवा आदमी चाहे कितने ही क्यों न निमन्त्रित किये जायँ, तुम्हें कुछ करना न होगा बुआ जी। क्या तुम सदा ही हाड़ तोड़-तोड़कर मरती रहोगी ? यदि ऐसा हुआ तो फिर भगवान् ने हमारे ऊपर जो दया की है, उससे लाभ ही क्या हुआ ? तुम बैठे-बैठे केवल निगरानी भर करती रहना और जिस किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े वह भंडारे से निकाल-निकालकर दिये जाना। मैं बहुत ही होशियार हलवाई और ब्राह्मण ठीक कर आया हूँ। वे ही कल सबेरे आकर जितने प्रकार के भी उत्तम से उत्तम पकवान, मिठाइयाँ तथा अन्य प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ हो सकतीं हैं, बनाकर तैयार कर देंगे।

पुण्डरीकाक्ष समस्त दिन भिन्न-भिन्न स्थानों में जा-जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए बयाना देता फिरता रहा। वह बार-

बार घर आता और फिर निकल जाता। इस प्रकार वह ख़रीद-ख़रीद-कर बहुत-सी चीज़ें ले आया।

दूसरे वक़्त पुण्डरीकाक्ष ने स्नान किया और अपनी वेश-भूषा बनाने में लग गया। पाँच बजे उसने अपने प्रतिदिन के नियम के अनुसार खूब भड़कीली पोशाक पहनी और घर से निकलते हुए कहने लगा—बुआ जी, तुम भी कपड़े बदल लो। चलो, राजाबहादुर के यहाँ निमन्त्रण दे आवें। तुम एक कोसा पहन लो और कोसा की एक चद्दर ओढ़ लो।

बुआ जी ने कहा—नहीं भैया, मैं सीधे ही सादे ढंग से जाऊँगी उनके यहाँ। उनके सामने हाथ फैला भिक्षा माँगी है मैंने एक दिन। आज कोसा पहनकर उनके सामने बड़ा-आदमीपन दिखलाने जाना अच्छा न मालूम पड़ेगा। ऐश्वर्य्य तो उन्हें दिखलाना है जिन्होंने किसी दिन हमारी दरिद्रता की अवहेलना की है, अपमान किया है। उन लोगों के समीप तो हमारा कोई मान-अपमान है नहीं बेटा।

बुआ की बात सुनकर पुण्डरीकाक्ष मुहूर्त्त भर न जाने क्या सोचता रहा। बाद को उसने कहा—तुम ठीक कह रही हो बुआ जी। मुझमें तो आज तक इस तरह की बुद्धि आ नही सकी। इतनी साधारण-सी बात भी आज तक मेरे दिमाग़ में नहीं आ सकी। अच्छा, तो तुम तब तक कपड़े बदलो, मैं भी अपनी यह शेख़चिल्ली की पोशाक उतारकर भलामानुस बन आऊँ।

पुण्डरीकाक्ष अपने कमरे में लौट गया। उसने अपना रंगीन साटिन का कोट उतार डाला और उसके बदले में एक सूती कोट पहन लिया। उँगलियों में जो उसने सात-सात अँगूठियाँ पहन रक्खी थीं, उन सबको उतारकर उसने बड़े हीरे की केवल एक अँगूठी रहने दी।

लौटकर आने पर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो बुआ जी तैयार होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। आते ही उसने पूछा—लो तुम तैयार हो गई हो बुआ जी? गाड़ी ले आने को कहूँ?

बुआ जी ने कहा—गाड़ी की क्या आवश्यकता है रे? यही तो गली के उस पार उन लोगों की कोठी है। इतना ही ज़रा-सा रास्ता मुझसे न चला जायगा?

आज पुण्डरीकाक्ष की आँखें मानो नई-नई खुलने लगी थीं। उसकी अक्षर-ज्ञान से शून्य बुआ में जो विवेक और बुद्धि है, वह उसमें नहीं है, यह पुण्डरीकाक्ष ने अनुभव कर लिया। मुँह से और कोई बात न निकालकर वह आगे-आगे चला। पीछे-पीछे बुआ जी भी चलीं।

राजाबहादुर के सन्तरी लोग अब पुण्डरीकाक्ष को भीतर जाने से नहीं रोकते थे। उन्हें राजाबहादुर से आज्ञा मिल गई थी कि वे उसे बेरोक-टोक भीतर जाने दिया करें। इसके सिवा प्रतिदिन आते-जाते रहने के कारण सन्तरियों से भी उसका परिचय हो गया था। इससे उसे आते देखकर सन्तरी ने फ़ौजी क़ायदे से उससे सलाम किया। पुण्डरीकाक्ष भी उसका सलाम लेकर भीतर चला गया।

पुण्डरीकाक्ष के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई एना बरामदे में खड़ी थी। उसे आते देखते ही उसका मुख प्रफुल्लित हो उठा। परन्तु उसके बाद ही उसने देखा कि उसके पीछे-पीछे आ रही हैं उसकी बुआ जी। यह देखकर एना तुरन्त ही दौड़ती हुई दीदी के पास गई। उसने उससे कहा—दीदी, दीदी, उस घर की बुआ जी आ रही है, तुम चलो।

अब जहाँ तक सम्भव होता एना पुण्डरीकाक्ष का नाम नहीं उच्चारण किया करती थी, 'ये, वे' कहकर ही वह काम चला लिया करती थी। पुण्डरीकाक्ष का घर अब उसके लिए 'वह घर' था और उसकी बुआ जी एना की भी बुआ जी थीं। इससे मेना मन ही मन कौतुक का अनुभव किया करती थी। उस समय एना की बात सुनते ही प्रसन्न-भाव से उतावली के साथ वह नीचे आई और आगन्तुकों की ओर बढ़ती हुई अभ्यर्थनापूर्वक बोली—आइए बुआ जी, आइए।

मेना बुआ जी के समीप गई। मस्तक झुकाकर उसने उनकी पद-धूलि ग्रहण की और प्रणाम किया। इधर पुण्डरीकाक्ष ने जब यह देखा कि मेना उसकी बुआ को बुआ कह रही है और उसने उनकी पद-धूलि ग्रहण करके प्रणाम किया है, तब आनन्द और आशा के मारे उसका हृदय उद्वेलित हो उठा। मेना उसे अपने लिए उपयुक्त समझ लिया है, इस सम्बन्ध में पुण्डरीकाक्ष को बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रह गया। मेना ने मुस्कराते हुए पुण्डरीकाक्ष को भी नमस्कार किया। पुण्डरीकाक्ष ने तुरन्त ही सम्मानपूर्वक उसके नमस्कार का उत्तर दिया।

बुआ जी ने मेना को आशीर्वाद देते हुए कहा—राजरानी होकर सदा सुखी रहो बेटी। कैसी हो तुम ? मैं बहुत दिनों से आ नहीं सकी हूँ। तुम्हारा हाल पुण्डरीकाक्ष से प्रायः पा जाया करती हूँ। तुम लोग मेरे पुण्डरीकाक्ष पर बहुत अधिक कृपा किया करती हो, यह मैंने सुना है। और करोगी क्यों नहीं ? तुम्हारा स्वभाव ही है दया करना। तुम लोगों की कृपा से ही तो हमारी प्रतिष्ठा सुरक्षित रह सकी है।

लज्जा से कुण्ठित होती हुई मधुर-स्वर से मेना बोली—हम लोगों ने कौन-सा ऐसा बड़ा काम कर दिया है बुआ जी जो रोज़-रोज़ आप यही एक बात कहा करती हैं। इस तरह से आप हमें लज्जित न किया कीजिए। एक पड़ोसी के प्रति दूसरे पड़ोसी का जो कर्त्तव्य है, हमने उसी का पालन करने की ज़रा-सी चेष्टा की थी।

बुआ जी ऊपर चढ़ आईं। उन्होंने कहा—आज मैं फिर तुम लोगों के पास एक प्रकार की कृपा की प्रार्थना करने आई हूँ।

मेना का मुख आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा। उसके मन में यह बात आई कि वृद्धा अपने भतीजे के विवाह का प्रस्ताव करने आई है और उसी की भूमिका बाँध रही है। इससे उसने आनन्द से उज्ज्वल हो उठे मुख से कहा—आप फिर इस प्रकार की बात मुख से निकाल-कर हमारे ऊपर पाप चढ़ा रही हैं बुआ जी ! आप आज्ञा देंगी और

में उसका पालन करने का प्रयत्न यथासाध्य करूँगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है ?

बुआ जी ने कहा—कल पुण्डरीकाक्ष का गृह-प्रवेश है। इससे इस बात की बड़ी आकांक्षा है कि राजाबहादुर और तुम दोनों बहनें उसके घर में पद-धूलि डाल आओ। पुण्डरीकाक्ष को तो इतना साहस हो नहीं सकता कि वह राजाबहादुर से कह सके, इससे साथ में वह मुझे ले आया है। मैं उन्हें बहुत विनीतभाव से निमंत्रित कर रही हूँ। तुम लोगों से भी आने के लिए आग्रह कर रही हूँ। तुम लोग आकर इस मङ्गल-कार्य्य को पूर्ण करो और रात को आठ बजे जरा-सा जलपान कर लेने की कृपा करो।

पुण्डरीकाक्ष बुआ की इस प्रकार की चातुर्य्यपूर्ण बातें सुनकर प्रसन्न हो उठा। प्रफुल्लित मुख से उसने मेना के मुख पर अपनी दृष्टि जमा दी। किस प्रकार अनुरोध से भरी हुई थी उसकी दृष्टि।

मेना वृद्धा की बात सुनकर निराश हो उठी। उसके मन में यह बात आई थी कि पुण्डरीकाक्ष की बुआ अपने भतीजे के साथ एना के विवाह का प्रस्ताव करने आई है। इससे उसे ऐसा न करते देखकर वह जरा-सा अनुत्साहित हो उठी। परन्तु अन्त में जब उसे यह ज्ञात हुआ कि पुण्डरीकाक्ष के गृह-प्रवेश में हम लोगों का निमंत्रण है, तब उसका प्रारम्भ का आनन्द एकदम से नहीं जाता रहा। मुस्कराती हुई वह कहने लगी—बस, इतने ही के लिए आप इस तरह कह-सुन रही हैं ? यह तो बहुत खुश होने की बात है। हम लोग अवश्य पहुँचेंगी। पिता जी भी जायँगे। एक तो जिस मकान की इतनी प्रशंसा सुन रक्खी है, उसे अपनी आँखों से देख लेने पर कानों और नेत्रों का विवाद तोड़ डाला जा सकेगा, तिस पर भी मुँह मीठा होने की आशा है।

एना ने आकर बुआ को प्रणाम किया। बुआ ने उसे भी वही एक ही आशीर्वाद दिया—राजरानी होकर चिरकाल तक पति-पुत्र के सहित गृहस्थी का सुख भोगो बिटिया।

मेना मुस्कराती हुई एना से कहने लगी—तुमने सुना है एना! कल पुण्डरीक बाबू का गृह-प्रवेश है। इससे बुआ जी हम लोगों को निमंत्रण देने आई हैं। मानो पुण्डरीक बाबू यदि स्वयं निमंत्रण देते तो शायद हम लोग जाती ही न, इसी लिए वे एकदम से बुआ जी का वारंट और गिरफ़्तारी का परवाना लेकर आये हैं। कहो, चलोगी न?

एना मुस्कराती हुई पण्डरीकाक्ष के बिलकुल पास पहुँच गई और उसके कान में कहने लगी—जब तक आप स्वयं न निमंत्रण देंगे तब तक मैं न आऊँगी।

पुण्डरीकाक्ष कृत्रिम क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए उसी तरह फुस-फुसाकर बोला—आह, दीदी के सामने कैसी दुष्टता कर रही हो। अच्छी बात है, दीदी को चली जाने दो, तब मैं चरणों पर मस्तक रखकर अनुनय-विनय के साथ निमंत्रण दे दूँगा।

एना कटाक्ष मारकर बोली—अच्छा तो ठहरिए, मैं झटपट जूते उतार कर चरण-कमल अलक्त के रंग से रँग आऊँ।

एना ने पुण्डरीकाक्ष से फुसफुस करके बातें करना आरम्भ कर दिया है, यह देखते ही मेना बुआ जी को साथ में लिये हुए पैर बढ़ा-कर दूसरी जगह जाने लगी। उन्हें एक कमरे में प्रवेश करती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने स्पष्टभाव से कह दिया—अलक्त के रंग की भी कोई आवश्यकता है जब कि कितने आदमी अपने रक्त के रंग में इन चरणों को रँगे दे रहे हैं! पुण्डरीकाक्ष ने हँसी-हँसी में एक दिन एक बहुत रसभरी कविता सुनाई थी, जिसका भाव इस प्रकार था—

"ऐ सन्ध्या के स्वप्न में बिहार करनेवाले, तुम सन्ध्या के शान्त सुदूर मेघ हो, मेरी हार्दिक आकांक्षा की साधना हो, मेरे शून्य गगन में विहार करनेवाले हो। मैंने अन्तःकरण की मधुरिमा मिश्रित करके तेरी रचना की है। तुम मेरी ही हो, तुम मेरी ही हो। तुम मेरे असीम गगन में विहार करनेवाली हो। अपने हृदय के रक्त को रंग बनाकर मैंने तेरे चरण रँग दिये हैं।"

पुण्डरीकाक्ष की आज की बात सुनकर उस दिन की हँसी में पढ़ी हुई वह कविता एना को अक्षर-अक्षर याद आ गई। साथ ही साथ लज्जा और आनन्द के मारे उसका मुख गुलाब के फूल के समान हो उठा। एक बहुत ही आकर्षक और मन को लुभानेवाली अंगभंगी से सारा शरीर हिलाकर कटाक्ष मारती हुई वह बोली—वाह साहब, कवित्व भी खूब है आपके हृदय में। पायजेब के ऊपर बिछुए की झनकार किस प्रकार की मादकता उत्पन्न करती है हृदय में ? आपके हृदय-गगन की विहारिणी होने की चिन्ता से तो मैं बड़े झंझट में पड़ गई हूँ, बड़े झंझट में पड़ी हूँ। मुझे तो नींद नहीं आती।

पुण्डरीकाक्ष कुछ कहने ही जा रहा था कि राजाबहादुर पासवाले कमरे से निकल आये। पुण्डरीकाक्ष के होंठ तक आई हुई रसीली बात हँसी बनकर उसके नेत्रों की दृष्टि में तथा मुख पर लगी रह गई। उतावली के साथ आगे बढ़कर वह राजाबहादुर को प्रणाम करने चला।

राजाबहादुर ने कहा—कल तुम्हारा गृह-प्रवेश है ? अच्छा, बहुत अच्छा! सुनकर बहुत आनन्दित हुआ हूँ। हम लोगों को निमंत्रण मिल गया है। ठीक समय पर हम लोग पहुँच जायँगे। हम तीनों ही आदमी आवेंगे।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ ने भास्कर को निमंत्रण नहीं दिया। राजाबहादुर ने यह समझा कि शायद भूल के कारण ऐसा हो गया है, इसलिए उन्हें स्मरण करा देने के विचार से उन्होंने तीनों व्यक्तियों के पहुँचने की बात कही थी।

इसके उत्तर में पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मेरे प्रति आप लोगों का असीम अनुग्रह है। यह ऋण जीवन में मैं कभी न चुकता कर सकूँगा।

पुण्डरीकाक्ष ने भी भास्कर के निमंत्रण के सम्बन्ध में कोई बात न कही, इससे राजाबहादुर ज़रा-सा दुःखी हुए, परन्तु वे और कुछ

बोले नहीं। पुण्डरीकाक्ष से उन्होंने कहा—आओ, कमरे मे बैठो। एना, इन्हें लाकर बैठालो।

पुण्डरीकाक्ष आगे की ओर चला। उसे बढ़कर आते देखकर राजाबहादुर ने कमरे में प्रवेश किया। तब एना ने चुपके से पुण्डरीकाक्ष से कहा—पाँव-पाँव चल सकोगे या स्टेचर लाना होगा? बच्चा बैठेंगे, क्या उन्हें बैठालने में भी दूसरे को सहायता देनी पड़ेगी?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए कहा—एनाक्षी के कटाक्षबाण से तो आहत ही हो उठा हूँ, ऐसी अवस्था में स्टेचर मँगवाकर पंगु के प्रति कृपा ही की जायगी।

एना को इस बात का उत्तर देने का अवसर न मिल सका। क्योंकि यह बात समाप्त होते-होते वे दोनों कमरे में पहुँच गये। वहाँ राजाबहादुर वर्त्तमान थे। परन्तु एना के नेत्रों की दृष्टि में उदित होकर जो तीक्ष्णता पुण्डरीकाक्ष के मुख की ओर दौड़ पड़ी, उसी से पुण्डरीकाक्ष ने अनुभव कर लिया कि इस हास्य के कारण एना को कितनी अधिक तृप्ति हुई है।

पुण्डरीकाक्ष कमरे में आकर बैठ भी न पाया था कि मेना ने भी आकर वहाँ प्रवेश किया। उसके वहाँ पैर रखते ही पुण्डरीकाक्ष सम्मानपूर्वक उठकर खड़ा हो गया। मेना ने कहा—बुआ जी जाना चाहती हैं। उनका कहना है कि अभी बहुत-से काम करने हैं, इससे आज इतना समय नहीं है कि यहाँ और विलम्ब किया जा सके।

यह तकाजा सुनकर जरा-सा रुष्ट-सा होकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अच्छा, तो आज मैं चलता हूँ। कल साँझ के बाद आप लोग कृपापूर्वक पद-धूलि डालकर मेरे मकान को मङ्गलमय बना दीजिएगा।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ पासवाले कमरे से बरामदे में निकल आईं और माथे पर घूँघट खींचे खड़ी रहीं। उन्हें देखकर पुण्डरीकाक्ष भी निकला। साथ ही साथ मेना और एना भी निकल आईं। उन

दोनों के समीप आ जाते ही बुआ ने दबे हुए कण्ठस्वर से कहा—तो कल साँझ के बाद आना बिटिया रानी, तुम सब लोग आना।

मेना और एना ने मुस्कराते-मुस्कराते कहा—इतना अधिक कहने की आवश्यकता न होगी, हम लोग स्वयं पहुँच जायँगी।

बुआ ने कहा—कल साँझ को मैं फिर बुलाने के लिए आऊँगी।

मेना ने कहा—बुलाने के लिए आपको न आना पड़ेगा बुआ जी, हम लोग स्वयं रास्ता खोजकर चली आवेंगी।

एना पुण्डरीकाक्ष के समीप पहुँचकर चुपके-चुपके कहने लगी—हम लोग यों ही पहुँच जायँगी। हमें तो कहीं कोई आघात लगा नहीं है कि हमारे लिए स्टेचर भेजना पड़ेगा।

पुण्डरीकाक्ष ने भृकुटि टेढ़ी किये हुए बनावटी फटकार के स्वर में कहा—ओह, कहीं दीदी न सुन लें।

एना ने कहा—इतना भय है आपको दीदी का परन्तु मुझसे जरा भी भय नहीं है?

उस समय पुण्डरीकाक्ष की बुआ ने सीढ़ी से उतरना आरम्भ कर दिया था, इससे स्वभावतः उसे अधिक समय तक रुकने का अवसर न मिल सका। मुस्कराहट के साथ एना की ओर जरा-सा ताकते हुए मस्तक हिलाकर वह केवल इतना भर सूचित करके चला गया कि तुमसे मैं जरा भी नहीं डरता हूँ।

सीढ़ी से उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष बुआ को डाँट बतलाने लगा। उसने कहा—तुम्हें हर मामले में उतावली पड़ी रहती है। बहुत उतावली थी, तब भी घर लौट चलने के लिए इस तरह तकाजा करना उचित नहीं था। घंटा आधा घंटा और नहीं बैठ सकती थीं? भला वे लोग भी अपने मन मे क्या कहेंगे? आते देर नहीं हुई कि चलने-चलने की रट लगा दी।

बुआ जी जरा-सा भयभीत-सी होकर कहने लगीं—कल काम-

काज का दिन है। कितने कार्य्य अभी करने को पड़े हैं। इसी लिए तो जल्दी मचानी पड़ी है, नहीं तो कोई बात ही नहीं थी।

पुण्डरीकाक्ष झुंझलाहट के साथ कह बैठा—यह मैं जानता हूँ कि बहुत-से काम करने हैं। परन्तु अभी तो सारी रात ही पड़ी है। कोई हमसे रात तो छीने जा नही रहा है। बहुत होता तो एक रात न सोते!

बुआ ने समझ लिया कि भतीजेराम को सुन्दरियों की संगति छोड़कर हट आना पड़ा है, इसी कारण से ये गरम हो उठे हैं। उनके मन में यह बात भी आई, वे साफ़-साफ़ कह दें कि भैया, मैं अकेली भी लौटकर घर जा सकती हूँ, तुम्हें यदि ऐसा ही है तो तुम फिर लौट जाओ उन लोगों के पास। परन्तु भतीजेराम पहले के थोड़े से रुपयों पर क़लम घिसनेवाले भतीजे नहीं रह गये थे कि उन्हें कोई बात कहने का साहस किया जा सकता। अब तो भतीजेराम नये-नये बड़े आदमी हो गये थे। अब उनका दिमाग़ बदलकर और तरह का हो गया था। अब बात बात में उनका पारा चढ़ आता था। जिस समय वे तीस रुपये महीने के एक साधारण-से बाबू थे, उस समय उन्हें बुआ की ख़ुशामद करने की ज़रूरत थी, क्योंकि केवल पेट पर एक साथ ही नौकरानी और रसोईदारिन कहाँ मिलने को थी? परन्तु अब तो बुआ के न रहने पर भी उसका कुछ बनने-बिगड़ने का नहीं था। नौकर-नौकरानी या रसोईदारिन का तो अब कोई अभाव रह नहीं गया, क्योंकि प्रतिदिन ही नये-नये महराज और नौकर बहाल हो रहे थे। इससे भतीजे की इस फटकार को घूँटकर रह जाने के सिवा बुआ के पास और उपाय ही क्या था?

जिस समय पुण्डरीकाक्ष और उसकी बुआ जा रही थी, उस समय मेना और एना ऊपरवाले बरामदे में खड़ी-खड़ी उनका जाना देख रही थीं। फाटक के पास पहुँचने पर पुण्डरीकाक्ष ने एक बार घूमकर मेना को देख लिया। इससे मेना और एना दोनों ने ही

यह अनुभव किया कि एना को देखने के ही लिए उसने पीछे की ओर मुँह फेरा है और एक बार उसकी ओर झाँक लेने के बाद फिर चलता बना। वे बुआ-भतीजे जब अदृश्य हो गये तब मेना ने एना से पूछा—क्या तुमने पुण्डरीक बाबू से कुछ कहा था? आज देखती हूँ कि उन्होंने अपना वह पेटेंट कोट उतार कर एक सादा कोट पहन लिया है। हाथ में उनके जो सात-सात अँगूठियाँ पड़ी रहा करती थी, उन्हें भी उन्होंने उतारकर रख दिया है।

पुण्डरीकाक्ष के इस परिवर्तन की ओर एना का भी ध्यान गया था। उसने खुश होकर कहा—मैंने कुछ कहा नहीं। हम लोगों के साथ-संग के कारण उनकी रुचि अब कुछ भले-आदमियों की-सी हो रही है। अभी तक गुंडों की तरह के बाल कान के नीचे तक लटकाये जाते हैं। ये शायद हमारे वाक्य-वाण चले बिना न कटवाये जायँगे।

मेना ने मुँह से कोई बात न निकालकर मुस्करा भर दिया। उसकी मुस्कराहट देखते ही एना खिलखिलाकर हँसने लगी।

लौटकर घर पहुँचते ही पुण्डरीकाक्ष कल की तैयारी के लिए निकल पड़ा।

दूसरे दिन सवेरे चार रसोइए आये। वे चारों आदमी खाने योग्य सामग्रियाँ तैयार करने के लिए नियुक्त कर दिये गये। निमंत्रण था कुल चार आदमियों का। उन सबने गैस और बिजली के चूल्हे जलाकर रसोई चढ़ा दी। उन लोगों को इक्कीस प्रकार का भोजन तैयार करने की आज्ञा दी गई थी। इससे सवेरे से ही कार्य्य आरम्भ किये बिना रात को आठ बजे तक खिला देना कैसे सम्भव हो सकता था।

दस बजे तक पुण्डरीकाक्ष बाज़ार करके लौटा। नया बाज़ार और म्युनिसिपल मार्केट से वह तरह-तरह की मछलियाँ और बकरे का मांस ख़रीद ले आया। बाज़ार में जितने प्रकार की भी अच्छी-अच्छी मछलियाँ दिखाई पड़ी हैं, उनमें से एक भी नही छूटने पाई।

ाज़ार में जितने प्रकार के फल और मेवे मिल सके हैं, वे सब भी ख़रीद लिये गये थे। कई प्रकार की उत्तमोत्तम खाद्य सामग्रियों के लिए बयाना दिया गया था, उन सबके दूसरे वक़्त आने की बात थी। म्युनिसिपल मार्केट की सबसे बड़ी और मशहूर हलवाई की दूकान में पिस्ता और बादाम की बर्फ़ी का आर्डर दिया गया। बड़ा बाज़ार का मारवाड़ी भोजन भी मँगवाया गया। बड़ा बाज़ार से तरह-तरह के अचार, बीरभूम का मुरब्बा तथा पापड़ की दूकान से बीकानेर, हापुड़ तथा मिर्ज़ापुर का पापड़ ख़रीदकर लाने मे भी भूल नहीं होने पाई।

दूसरे वक़्त एक गाड़ी भरकर फूल आया। म्युनिसिपल मार्केट, बड़ा बाज़ार और जोड़ासाँको में जितने प्रकार के भी फूल बिकते थे, वे सभी ख़रीदे गये थे।

कलकत्ता के कलाभवन के चार लब्धप्रतिष्ठ शिल्पी नियुक्त किये गये थे पुण्डरीकाक्ष का घर सजा देने के लिए। पुण्डरीकाक्ष ने उनसे कह दिया था कि आप लोग अपनी रुचि के अनुसार अच्छे से अच्छे ढंग से मेरा घर सजा दीजिए, रुपये की ओर ध्यान न दीजिएगा।

चित्रकला में कुशल शिल्पी दोपहर से ही घर सजाने में लग गये।

आज पुण्डरीकाक्ष कितना अधिक कार्य्यसंलग्न था, इसका कुछ ठिकाना नहीं था। वह दौड़-दौड़कर सारा मकान देखता फिरता था, जिससे कहीं किसी प्रकार की कमी न रह जाय या कहीं कोई किसी प्रकार का दोष न निकाल दे। कभी वह दौड़ता हुआ रसोई-घर में जाता, कभी भंडारे के घर में जाता, कभी जिस कमरे में भोजन कराने की व्यवस्था थी, उसमें जाता और कभी निमंत्रित व्यक्तियों के बैठालने के लिए जो कमरा नियत था, उसमे जाता। इस प्रकार वह घर भर में नाचता फिरता था और बार-बार देखा करता था कि सब ठीक है या नहीं, ठिकाने से बन रहा है या नहीं।

साँझ होते-होते पुण्डरीकाक्ष का सारा आयोजन सम्पूर्ण हो गया।

तब उसने झटपट स्नान किया, कपड़े बदले और बुआ से कहा—बुआ जी, चलो, इन लोगों को अगवानी करके ले आवें।

बुआ जी शीघ्र ही साफ़ कपड़ा पहनकर तैयार हो गईं। उसके बाद वे बुआ-भतीजे राजाबहादुर के यहाँ पहुँचे।

राजाबहादुर के यहाँ पहुँचते ही इन लोगों ने देखा कि वे सब आने के लिए तैयार हैं। इन्हें देखते ही राजाबहादुर कहने लगे—तुम लोग फिर कष्ट करके ऐसी रात में आये हो? हम लोग तो आ ही रहे थे। अच्छी बात है, आगये हो, तो अच्छा ही हुआ। चलो, अब चला जाय।

वे सब लोग रवाना हो गये। राजाबहादुर और मेना जब भास्कर के कमरे के सामने आये तब उन दोनों ही पिता-पुत्री के मन मे न जाने कैसी लज्जा-सी आ गई। लज्जा इस कारण आ रही थी कि भास्कर को छोड़कर उन सबको निमंत्रण दिया गया था। परन्तु भोज था दूसरे के कमरे में। उससे यह भी नहीं कहते बनता था कि हमारे घर में एक व्यक्ति और रहते हैं, जिन्हें हम लोगों के साथ मे निमंत्रित करना आवश्यक है, अन्यथा बहुत भद्दा मालूम पड़ेगा। मेना ने एक बार भास्कर के कमरे की ओर ताककर देखा। भास्कर दिखाई नहीं पड़ा। उसकी छाया भर दिखाई पड़ी। वह टेबिल पर झुका हुआ पढ़ रहा था। मेना का मुख गम्भीर हो उठा।

फाटक के बाहर पैर रखते ही निमन्त्रित व्यक्तियों ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष का सुन्दर मकान इतनी सुन्दरता के साथ सजाया गया है कि मानो विवाह की रात्रि में नववधू का श्रृङ्गार किया गया हो। द्वार पर फूल पत्तियों का एक सुन्दर तोरण बनाया गया था। उसके दोनों बग़ल मङ्गलघट स्थापित किये गये हैं और केले लगाये गये थे। घटों में स्वस्तिक का चिह्न बना हुआ था और उनके गलों में मालायें लटक रही थीं। मुख में शीर्ष-सहित कुशा खोंसे हुए थे। मकान भर में जितने भी झाड़ लगे हुए थे, वे सब जला दिये गये थे। उन

सबकी जगमगाती हुई रोशनी में सफ़ेद पत्थर का वह मकान अपरूप शोभा धारण किये हुए था। फूलों के तोरण में बिजली के छोटे छोटे रंगीन बल्व जल रहे थे, मानो रंग के विन्दु से नववधू के ललाट में विवाह-काल का सिन्दूर लगाया गया हो।

सफेद पत्थर की सीढ़ी थी। उसकी पहली सीढ़ी पर खिला हुआ लाल रंग का एक कमल बनाया गया था। उस कमल के ऊपर कमल-जैसे दो चरण अंकित थे। उसके बादवाली सीढ़ी पर हंसों का जोड़ा अंकित था। बाद को क्रमशः एक सीढ़ी पर एक जोड़ा मछलियाँ और एक पर एक शङ्ख तथा उसके आस-पास दो जलते हुए प्रदीप अंकित किये गये थे। अलक्त के रंग से सफ़ेद पत्थर के ऊपर ये सब चित्र अंकित किये गये थे। चार सीढ़ियाँ पार करने के बाद चबूतरा था। उस पर भी तरह-तरह की बहुत ही कुशलतापूर्ण चित्रकारी की गई थी।

मेना आदि ने देखा कि मकान का मेल लगाकर द्वार-द्वार और खिड़की-खिड़की पर सफ़ेद सिल्क के पर्दे टाँगे गये हैं।

पुण्डरीकाक्ष उन सबको साथ में लिये हुए घूम-घूमकर सारा मकान दिखलाने लगा। सारा का सारा मकान साफ़-सुथरा था, दगदगा रहा था। स्नान-घर, रसोईघर आदि देखने ही योग्य थे, नवीन से नवीन आवश्यकताओं की पूर्त्ति के सभी प्रकार के साधनों से पूर्ण थे। किसी कमरे में पढ़ने-लिखने की व्यवस्था की गई थी, मेज़-कुर्सी आदि सजाकर लगाई हुई थीं। उसके पास के ही कमरे की सुन्दर सेल्फ़ों के ऊपर विभिन्न विषयों की चुनी हुई पुस्तकें रक्खी हुई थीं। दो बैठकें थीं, जिनमें फ़र्श भी पड़ा था और चेयर, कोच आदि भी पड़े थे। बैठकों की सजावट से गृहस्वामी की धनशालिता के साथ ही साथ उसकी कलात्मक रुचि का भी परिचय मिलता था। इन दोनों बैठकों की सजावट पुण्डरीकाक्ष ने ठाकुरद्वारा तथा कलकत्ते के बहुत-से बड़े आदमियों की बैठकें देखकर की थी।

पुण्डरीकाक्ष के मकान में जो फ़र्नीचर था वह भी अधिकांश सुदूर-नगर के बहुत ही कलाकुशल शिल्पी की देख-रेख में आर्डर देकर बनवाया गया था। दीवारों पर बहुत ही सुन्दर-सुन्दर और भावपूर्ण चित्र टँगे हुए थे, देखने से जान पड़ता था कि यहाँ स्त्रियों की किसी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है। ये चित्र संख्या में भी इतने अधिक थे कि इन्हें देखते-देखते आदमी दोपहर भर का समय तो बिता ही दे सकता था।

राजाबहादुर ने इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि ऐसे अवसर पर पुण्डरीकाक्ष को कन्याओं के साथ में अकेला ही छोड़ देना उचित है। इससे उन्होंने कहा—मैं एक दिन सारा मकान देख गया हूँ। तुम लोग घूम-फिरकर देख आओ, मैं यहीं बैठता हूँ। बुढ़ाई का शरीर है, अब मुझसे इतना तो चला जाता नहीं।

राजाबहादुर बैठक में बैठ गये। मकान में जितने कमरे थे, उन सबमें पंखे तो चल ही रहे थे। एक नौकर ने आकर चाँदी की नई फ़रशी उनके सामने रख दी। उस पर कस्तूरी से सुवासित अम्बरी तम्बाकू चढ़ी हुई थी। राजाबहादुर ने नैचा मुंह में लगा लिया और वे फूँक पर फूँक मारने लगे। इधर पुण्डरीकाक्ष मेना और एना को मकान का बाक़ी हिस्सा दिखलाने के लिए ले गया।

मकान की सबसे पहली मंज़िल में पुण्डरीकाक्ष का कार्य्यालय और पुस्तकालय था। दूसरी मंज़िल में दो बैठकें थीं। तीसरी मंज़िल में दो शयनागार थे। मेना आदि को लिये हुए पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के पास से चलकर सीधे तिमंज़िले पर गया। इस मंज़िल के दोनों ही कमरों में एक-एक बहुत ही चिकनी और मज़बूत लकड़ी के पलंग पड़े थे। उन पलंगों पर समुद्रफेन की तरह के सफ़ेद बिछौने बिछे थे। हर एक कमरे में एक बग़ल एक-एक ड्रेसिंग टेबिल और उनके पास एक-एक कुर्सी रक्खी हुई थी। हर एक कमरे से मिला हुआ एक ड्रेसिंगरूम और एक बाथरूम था।

पुण्डरीकाक्ष ने अपने सोने के कमरे में केवल एक चित्र लगा रक्खा था। चित्र का कोई विशेष विषय भी नहीं था। परन्तु था वह बड़ा मनोरम। जल का ज़रा-सा नीले रंग का आभास था। उसके ऊपर लाल रंग का एक अधखिला कमल का फूल था। वह ज़रा-सा झुक गया था। देखने में वह ऐसा जान पड़ता था कि मानो किसी नव-विवाहिता वधू का लज्जा से लाल होकर झुका हुआ मुँह है; कमल के पत्ते के रंग की सन की साड़ी के आधे घूँघट से ढका है वह। उसके पास ही मरकतमणि के पात्र के समान घने सब्ज़ रंग का एक पत्ता है, जिसके ऊपर मुक्ताफल के समान एक बूँद जल ढलमला रहा है। उस पत्ते के नीचे ही मस्तक पर छाता-सा लगाये हुए एक वक अपनी लम्बी-लम्बी टाँगों का प्रायः आधा भाग जल में डुबाये खड़ा है, जल के ऊपर मानो स्वेतवर्ण का एक शंख तैर रहा है।

यह चित्र देखकर मेना ने कहा—आपके यहाँ सभी कुछ सुन्दर है। उनमें से यह कमल और वक का चित्र तो बहुत ही उत्तम है। आपके यहाँ जितनी भी चीजें देखने में आई हैं, यह चित्र मुझे उन सभी से अधिक सुन्दर मालूम पड़ा है। आपने इस चित्र को भीड़ में खो नहीं जाने दिया, इसे बिलकुल अलग लगा रक्खा है, यह आपकी सुबुद्धि और कलात्मक रुचि का परिचायक है।

मेना के मुख से निकले हुए इन प्रशंसापूर्ण वाक्यों ने पुण्डरीकाक्ष को हर्ष से गद्‌गद कर दिया। उसने यह अनुभव किया कि अब मेरा जीवन और उद्योग सार्थक हो गया। कृतार्थ होकर उसने कहा—यह चित्र मैंने आर्डर देकर अंकित करवाया है। कवि हाल की गाथा सप्तशती में इस प्रकार का एक वर्णन मैंने पढ़ा था।

एना ने कहा—आपका मकान देखकर मुझे मृच्छकटिक की वसन्तसेना के घर का वर्णन स्मरण हो आता है। आपने विलासिता की इतनी सामग्रियाँ किस लिए एकत्र कर रक्खी हैं?

पुण्डरीकाक्ष ने मेना की ओर ताकते हुए कहा—यह सब सुख-सामग्रियाँ जो यहाँ प्रस्तुत हैं, उनका अणुमात्र भी मेरे लिए नहीं है। मैंने इस घर में एक दिन एक व्यक्ति का लक्ष्मी के रूप में स्वागत करने की दुराशा मन में पाल रक्खी है। यद्यपि वह एक ऐसी कामना है, जिसकी पूर्त्ति सम्भव नही प्रतीत होती; किन्तु दैवयोग से यदि हो गई तो इन सामग्रियों से उन्हीं की पूजा करूँगा। यह सब उनकी पूजा के ही उपकरण हैं, मैं तो केवल पुजारी भर हूँ।

एना हँसती हुई बोली—तब तो लक्ष्मी को शीघ्र ही आवाहन कर ले आइए, हम लोगों को भी एक दिन निमंत्रण खाने को मिल जायगा।

पुण्डरीकाक्ष गम्भीर हो गया। मेना के मुँह की ओर मुग्ध-दृष्टि से ताकते हुए उसने कहा—अब शीघ्र ही किसी दिन मैं लक्ष्मी के दरबार में अपनी प्रार्थना उपस्थित करूँगा।

पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि में कुछ मोह का आवेश देखकर मेना उद्विग्नता का-सा अनुभव करने लगी। परन्तु उसके मन में यही कल्पना उदित हुई कि शायद पुण्डरीकाक्ष एना के साथ विवाह करने की इच्छा कर रहा है और इस सम्बन्ध में वह मेरी अनुमति तथा सहायता चाहता है।

एना ने भी मन ही मन कुछ-कुछ ऐसी ही कल्पना की। परन्तु पुण्डरीकाक्ष ने मेना की ओर, जो इस प्रकार सतृष्णभाव से दृष्टि-पात किया था, वह उसे अच्छा नहीं लगा था। वह और कुछ बोली नहीं, गम्भीर होकर चुपचाप ही रह गई।

मेना ने जैसे ही देखा कि एना गम्भीर होती जा रही है, वैसे ही वह उतावली के साथ बोल उठी—चलिए, चौमंज़िला भी देख आयें। देखें, वहाँ क्या-क्या है ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—वहाँ इस समय जाने की आज्ञा नहीं है। एकदम से भोजन के ही समय चलना होगा।

मेना ने कहा—तो चलिए, जहाँ बुआ जी हैं, वहीं चलें! वे तो दिखलाई ही नहीं पड़ रही हैं।

मेना और एना को लिये हुए नीचे उतरते-उतरते पुण्डरीकाक्ष ने कहा—बुआ जी भाण्डार-गृह में हैं। राजाबहादुर से लज्जित होकर वे भाग गई हैं।

मेना आदि को बुआ जी के पास छोड़कर पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के पास लौट आया।

ज़रा देर के बाद ही वहाँ मेना और एना भी आईं। पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही देखा कि वे आ रही हैं, वैसे ही वह उठकर खड़ा हो गया और उनका स्वागत करते हुए कहने लगा—तो अब अनुग्रह करके भोजन के लिए चलिए, थारियाँ लग चुकी हैं।

राजाबहादुर ने कहा—और कौन-कौन से लोग निमंत्रित हैं? क्या वे सब आ गये हैं?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—और कोई भी नहीं निमंत्रित है। आप लोगों के साथ भला मैं किसी दूसरे को निमंत्रित कर सकता हूँ? पहले मैं जिस आफ़िस में कार्य्य किया करता था, वहाँ के बाबुओं को एक दिन निमंत्रित करना है, किन्तु उनके लिए बाद को किसी दिन प्रबन्ध कर दिया जायगा। आज केवल आप लोगों को ही ले आकर मैं पहले-पहल गृह-प्रवेश कर रहा हूँ।

दूसरा कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं निमंत्रित किया गया है, यह जानकर राजाबहादुर, मेना और एना सभी ने बहुत-कुछ शान्ति और स्वच्छन्दता का अनुभव किया। वे सभी प्रसन्न-मन से भोजन के लिए चलने को तैयार हो गये। वे लोग उस समय बड़े कौतूहल में थे। उनके मन में यह बात आ रही थी कि पुण्डरीकाक्ष ने अपने घर की सजावट के लिए जब इस तरह का अद्भुत आयोजन किया है तो हम लोगों के लिए भोजन उसने कितना सुन्दर और स्वादिष्ठ बनवाया होगा। केवल तीन आदमियों के स्वागत के लिए जो इस तरह की

धूम-धाम, इस तरह का विराट् आयोजन चारों ओर किया गया है, इससे यह नहीं मालूम पड़ता कि भोजन इतनी ज़्यादा तैयारी के साथ न बनाया गया होगा।

पुण्डरीकाक्ष निमंत्रित व्यक्तियों को लिये हुए चौमंज़िले पर गया। उसके मकान की हर एक मंज़िल पर दो-दो बड़े-बड़े कमरे, कमरों की दोनों बग़ल दो बरामदे और हर कमरे से मिला हुआ एक ड्रेसिंग-रूम और एक बाथरूम बना था। चौमंज़िले में भी केवल दो ही कमरे थे। एक कमरे के सामने जाकर पुण्डरीकाक्ष अतिथियों की ओर घूमकर खड़ा हो गया। विनम्रतापूर्ण लज्जा के साथ उसने कहा—यह मेरा पूजा का कमरा है। बाद को जूते उतारकर उसने उस कमरे में प्रवेश किया।

पुण्डरीकाक्ष की देखा-देखी अभ्यागतों ने भी जूते उतारकर कमरे में प्रवेश किया। उन सबने सोच रक्खा था कि कमरे में प्रवेश करने पर सिंहासन पर प्रतिष्ठित कोई देव-विग्रह देखने में आयेगी। उन लोगों ने देखा कि कमरे भर में केवल सफ़ेद रंग का शीशा ही शीशा है। कमरे की दीवार शीशे की थी, उसकी खिड़कियाँ शीशे की थीं। शीशे के टुकड़ों को सँभाल रखने भर के लिए लकड़ी या लोहे के फ़्रेम लगे हुए थे। कमरे का फ़र्श संगमरमर का था और उसकी छत स्लेट की हलकी टाली से मन्दिर की चूड़ा के आकार में छाई हुई थी। जहाँ पर छत और दीवार का संयोग हुआ था वहाँ स्प्रिंग रोलर लगाकर रेशम के पर्दे लपेट दिये गये थे। ये पर्दे दीवारों से बिलकुल मिले हुए थे।

पुण्डरीकाक्ष के पूजा के इस कमरे में कोई अधिक सामान नहीं था। कमरे के ठीक बीच में केवल एक मोटा-सा क़ीमती क़ालीन बिछा हुआ था, वह आसन से कुछ बड़ा किन्तु खाट से छोटा था। उस क़ालीन के सामने ही एक छोटा-सा कुछ नीचा ही संगमरमर का स्टूल था। स्टूल के ऊपर दो-तीन पुस्तकें रक्खी हुई थीं। स्टूल के पास था

एक सफ़ेद पत्थर के ऊपर एक रंगीन पत्थर और उसके ऊपर सूंती काम किया हुआ बड़ा-सा पुष्प-पात्र, जिस पर फूल-पत्ती और चिड़ियों आदि का आकार अङ्कित था। उस पुष्पपात्र में थोड़े से पुष्प उस समय भी रक्खे हुए थे। पुष्पपात्र के पास ही पीतल की एक खूब धुली-मँजी चमचमाती हुई धूपदानी थी और थोड़ा-सा गुग्गुल और अगर था। धूपदानी में डाली हुई ये वस्तुएँ उस समय भी सुगन्धित धुआँ निकाल रही थीं। पास ही चाँदी की एक कामदार कटोरी भी थी। उसमें घिसा हुआ चन्दन, कस्तूरी और कुमकुम रक्खा हुआ था।

जिस स्थान पर पूजा की ये सब सामग्रियाँ रक्खी हुई थीं, वहीं एक बहुत बढ़िया शेल्फ़ था, जिसके ऊपर गड्डी के गड्डी सजाकर रक्खे हुए थे भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मशास्त्र, उपनिषद्, गीता, श्रीमद्भागवत, बाइबिल, कुरान का बँगला-अँगरेजी अनुवाद, तालमुद, अवस्ता, ग्रन्थ साहब, इमीटेशन ऑफ़ क्राइस्ट, बहुत-से देशी-विदेशी सन्तों की वाणियाँ, दोहे, रामकृष्णकथामृत, चीन के थूप, लाउत्स और कनफू-सिअस की वाणी, गीताञ्जलि, गीतिमाला गीतावलि, नैवेद्य, ब्रह्मसंगीत आदि-आदि।

कमरे के एक दूसरे किनारे पर एक बहुत बड़ा-सा दूरबीन था। उस दूरबीन के पास ही एक और छोटा-सा शेल्फ़ था, जिसमे अँगरेज़ी एस्ट्रानमी, या ज्योतिषशास्त्र के तथा नक्षत्र-विज्ञान-सम्बन्धी देशी-भाषाओं के भी ग्रन्थ, आकाश-मण्डल के नक़शे, चार्ट आदि रक्खे हुए थे। कमरे के एक कोने में सङ्गमरमर के फलक के ऊपर काले पत्थर के अक्षरों में लिखा था—

> नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
> नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
> नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
> नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥

अभ्यागतों को कमरे भर में कहीं कोई भी देव-मूर्ति न दिखाई

पड़ी। इससे वे चकितभाव से जिज्ञासामयी दृष्टि से पुण्डरीकाक्ष के मुंह की ओर ताकने लगे।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीतभाव से कहा—इस कमरे में मैं देश की सभी जातियों की उपासना के पात्र एक-मात्र भगवान् की उपासना करने का प्रयत्न किया करता हूँ। भगवान् का दिया हुआ उजाला और वायु जिससे काफ़ी मिल सके और विश्वमन्दिर की शोभा किसी प्रकार भी आच्छादित न रह सके इसी मतलब से इस कमरे को मैंने शीशे से बनवाया है। जब कभी धूप या हवा के कारण कष्ट मालूम पड़ने लगता है तब ये पर्दे गिराकर आड़ कर देता हूँ। रात्रि में आकाश निर्मल रहने पर मैं बैठे-बैठे देखता रहता हूँ कि विश्वेश्वर किस प्रकार के अद्भुत ढंग से निरन्तर गेंद खेलते रहते हैं। विस्मय के आवेश में आकर उनकी यह विचित्र क्रीड़ा देखते-देखते मैं मुग्ध हो जाता हूँ। इस प्रकार का ध्यान ही मेरा पूजा-पाठ है, वन्दना है, स्तुति है। इसी से मेरा चित्त शुद्ध होता है, इसी से मेरी चित्तवृत्ति को संकीर्णता से विमुक्त होने में सहायता मिलती है।

वह कमरा देखकर तथा पुण्डरीकाक्ष की बातें सुनकर अतिथि लोग बहुत सन्तुष्ट हुए। प्रशंसा से उनका हृदय पूर्ण हो उठा। श्रद्धा से उनका हृदय इतना अभिभूत था कि वे लोग मुंह से कोई बात निकाल नहीं सके। चुपचाप ही कमरे से निकल आये।

पुण्डरीकाक्ष उन लोगों को साथ में लिये हुए पासवाले कमरे के सामने जाकर उपस्थित हुआ। उस कमरे का द्वार बन्द था। पुण्डरीकाक्ष के ज़रा-सा धक्का देते ही द्वार खुल गया और हज़ारों बत्तियों की ज्योति आ-आकर उन सबके मुख पर पड़ने लगी। आगन्तुक लोग उस कमरे की शोभा देखकर चकित हो गये। उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि कमरे में ये जो हज़ारों बत्तियाँ जल रही हैं, ये सब मानो प्रकाश-फूल हैं, खिले हुए हैं। वे यह अनुभव करने लगे कि यह कोई परी-राज्य है, कोई स्वप्न-पुरी है या माया-मन्दिर है।

राजाबहादुर अपनी कन्याओं को लिये हुए पुण्डरीकाक्ष के पीछे-पीछे उस कमरे मे प्रविष्ट हुए। सारा कमरा आइनों का बना हुआ था। आइनों से दीवारें बनी थीं, आइनों से छत बनी थी, आइनों से ही खिड़कियाँ और दरवाज़े बने थे। कमरे की फ़र्श तक मोटे शीशे के आइनों से बनी थी। कमरे की छत से बिजली के तीन झाड़ लटक रहे थे। दीवारों पर भी कई दीवारगीरें जल रही थी। उन सबका प्रकाश एक-एक आइने में प्रतिफलित होकर अगणित गुणा अधिक होकर चमचमा रहा था। कमरे की दीवारों पर, छत पर, फ़र्श पर जहाँ भी दृष्टि जाती, वहाँ केवल ज्योति ही ज्योति बिखरी हुई दिखाई पड़ती। इससे सारा कमरा झकझक कर रहा था। उस समय ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानो समस्त नक्षत्र-मण्डल, समस्त तारे, दल बनाकर आकाश से उतर आये है और इसी कमरे मे प्रविष्ट हो गये हैं। या यों कहिए कि कमरे की चारों दीवारों तथा फ़र्श पर और छत के नीचे के भाग में प्रकाश के फूल बहुत ही अधिकता के साथ खिले हुए हैं। मानो प्रकाश का, फ़व्वारा छूट रहा था और उसमे से निकल निकलकर ज्योति की धारा सर्वत्र फैल रही है। उस अवस्था में कमरे में प्रवेश करने पर राजाबहादुर आदि का दृष्टि-विभ्रम होना स्वाभाविक ही था। उनमें से कोई यह नहीं निर्णय कर पाता था कि मैं सीधा खड़ा हूँ या मस्तक नीचे की ओर करके पैर ऊपर किये हुए हूँ? कमरे में अकेला हूँ या कई आदमियों के बीच में हूँ? कहाँ हूँ? द्वार के पास हूँ, एक किनारे पर खड़ा हूँ या कमरे के मध्य में हूँ, इस विषय में भी उन सबको घोर सन्देह हो रहा था। कमरे का द्वार कौन-सा है और किस ओर है, इस बात का निर्णय करना तो उन सबके लिए एक प्रकार का गोरख-धन्धा ही था क्योंकि देखने में मालूम पड़ रहा था, मानो हज़ारों दरवाज़े प्रत्येक दिशा में खुले हुए हैं। उस समय केवल चार आदमियों ने कमरे में प्रवेश किया था परन्तु देखने में ऐसा जान पड़ रहा था, मानो हज़ारों नर-नारी यहाँ

आकर विराजमान हैं। उन सबकी प्रतिच्छाया अनन्त और असंख्य हो उठी थी और जहाँ तक दृष्टि जाती वहाँ तक वह दिखाई पड़ रही थी। कदाचित् इसी प्रकार के दर्पण के किसी गृह में प्रवेश करने पर दुर्योधन का दर्प चूर्ण हुआ था।

कमरे में प्रवेश करके पहले कुछ समय तक राजाबहादुर आदि सभी लोग विस्मय से अभिभूत हुए बैठे रहे। किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। परन्तु उसके बाद ही एना के कण्ठ से खिलखिला करके हँसी का फ़ौवारा छूट पड़ा। सभी की आँखें उसके मुँह की ओर फिर गईं, जान पड़ा कि लाख-लाख भौंरे कमल का मधुपान करने के लिए उत्कंठित हो उठे हैं। एना ने हँसते-हँसते कहा——यह कैसा बढ़िया कमरा बनवाया है आपने! वाह, कैसा मज़ा है!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा——आइए, अब भोजन के लिए चलिए। भोजन ठण्डा होता जा रहा है।

सभी लोग विस्मय से विह्वल होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगे। वे सब यही जानना चाहते थे कि भोजन के लिए कहाँ प्रबन्ध किया गया है। पहले-पहल कमरे में प्रवेश करने पर उन लोगों की दृष्टि वहाँ पर की गई रंग-विरंगी रोशनी पर ही पड़ी थी। बाद को उन लोगों ने विस्मय-विमुग्ध होकर अपनी अगणितगुणा बढ़ी हुई छाया पर विस्मय-विमूढ़ दृष्टि लगाई। परन्तु अब उन लोगों ने देखा कि पासवाले कमरे में फ़र्श पर फूलों का बिस्तर लगा है। बिस्तर कोई इतना छोटा भी नहीं है। कमरे का बहुत-सा अंश वह घेरे हुए है। वर्षा-ऋतु में खिलनेवाले कदम्ब, केवड़ा, कमल तथा अन्यान्य प्रकार के छोटे-बड़े मनोहर फूलों से सारा स्थान ढँका है और उन सबकी मनोहर सुगन्ध से समस्त वायु-मण्डल आमोदित है।

पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही एक स्विच दबाई, विभिन्न प्रकार के रंगों के खाने और फूल-पत्ती तथा बेल-बूटा आदि कटे हुए चार प्रकाश के छाया-रूपी चौके फ़र्श पर आ पड़े। रंगीन प्रकाश की वह छाया देखने पर,

जिस पर कि खाने कटे थे, ऐसा अनुभव हुआ कि मानो कोई यहाँ गलीचे के चार आसन बिछा गया है।

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा—आज आप लोगों को इसी प्रकाश के आसन पर बैठकर भोजन करना होगा। आप लोग इन पर बैठने की कृपा कीजिए।

कौतुक का अनुभव करते हुए सभी लोग जाकर चुपचाप एक छाया-चित्र पर खड़े हुए। वहाँ खड़े होते ही प्रकाश के रंग का बेल-बूटा उनमें से प्रत्येक के शरीर पर जाकर पड़ा। इससे इन सभी के शरीर और मुख पर इस प्रकार की विचित्रता आगई, मानो इन लोगों ने शरीर भर में भिन्न-भिन्न रंगों के गोदने गोदवा रक्खे हैं। एना ने पहले तो दूसरों के शरीर की विचित्रता देखी; किन्तु बाद को पास ही टँगे हुए आइने में अपनी छाया देखी और अपना वह विचित्र रूप देखते देखते खिलखिलाकर हँस पड़ी।

पुण्डरीकाक्ष ने एक और स्विच दबाई। तुरन्त ही फूलों के बिस्तरे के बीच में चार बहुत ही उज्ज्वल बत्तियाँ जल उठीं। इन बत्तियों के उज्ज्वल प्रकाश में लोगों के शरीर के ऊपर की वर्णच्छटा बहुत कुछ लुप्त होकर फीकी पड़ गई। अब उन लोगों ने देखा कि वहाँ फूलों के जो आसन लगे हुए हैं, उनके बीच-बीच में सफ़ेद पत्थर की थालियाँ, कटोरे और गिलास आदि सजाकर रक्खे हुए हैं और उन सबमें क़ायदे से सजा-सजाकर तरह-तरह की खाद्य सामग्रियाँ रक्खी हुई हैं। नीचे की ओर उजाला नहीं पहुँच पाता था, इससे ये सब चीजें अभी तक नहीं दिखाई पड़ रही थीं, अब नीचे की बत्तियाँ जल उठने पर झकझकाकर दिखाई पड़ने लगी।

फूलों के आसन पर एक ओर बैठे राजाबहादुर और उनके पास बैठी मेना। उन पिता-पुत्री के आमने-सामने एना और पुण्डरीकाक्ष बैठे। थाल की ओर देखते ही एना ने कहा—क्या किया है आपने यह? कितना भोजन परोसा गया है? उस दिन तो हम लोगों से आप ही खूब

बढ़-बढ़कर कह रहे थे कि मेरे लिए जो भोजन-सामग्री जुटाई गई है उसे मैं क्या, दशानन भी नहीं खाकर समाप्त कर सकते। उस दिन आपको कुम्भकर्ण की याद नहीं आ सकी थी। इधर आज आपने यह जो इतना भोजन थालों में लाद रक्खा है इसे भला कोई खा सकेगा? ज़रा बतलाइए तो कि आपने यह आयोजन हिडिम्बा के लिए किया है या घटोत्कच के लिए?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—भक्त देवता के भोजन के लिए कितने प्रकार के उपकरण एकत्र करता है। देवता तो उस भोग पर केवल दृष्टिपात भर करके उसे प्रसाद के रूप में परिणत कर देते हैं। मैंने भी केवल भोग लगा दिया है, आप लोग इन सबमें से जिस किसी भी चीज़ में हाथ लगा देंगे, उसी से मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम सार्थक हो गया, मेरे दरिद्र के घर की भी यह तुच्छ सामग्री धन्य होगई।

एना ने फिस-फिस करके पुण्डरीकाक्ष के कान में कहा—वाक्य-वागीश, बातों में आपसे कोई भी पार न पायेगा।

राजाबहादुर ने समझ लिया कि हम लोगों ने जो उस दिन निमंत्रित करके भोजन पुण्डरीकाक्ष को कराया था, उसका यह उलटा जवाब है। उसने भी तय कर लिया है कि बदला चुकाने में हम एक हाथ आगे ही रहेंगे। इसी लिए वे कुछ बोले नहीं, चुपचाप भोजन करने लगे। मुँह में ग्रास डालकर उन्होंने कहा—सब चीज़ें चख-चखकर देख लेनी चाहिए, कण-कण खाते-खाते ही पेट भर जायगा।

पिता की देखा-देखी मेना ने भी भोजन करना आरम्भ कर दिया। परन्तु एना हाथ सिकोड़े ही बैठी रह गई।

पुण्डरीकाक्ष ने पूछा—आप तो थाल में हाथ ही नहीं डाल रही हैं?

एना ने कहा—ठहरिए। पहले ज़रा गिन कर देख लूँ कि कितने प्रकार का भोजन बना है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा––गिनने की आवश्यकता नहीं है, मैं ही बतलाये देता हूँ। कुल मिलाकर सौ प्रकार का है।

बातचीत और हँसी-मजाक में भोजन समाप्त हुआ। धोबी के यहाँ से इस्तिरी करके तुरन्त के आये हुए दगदगाते हुए सफ़ेद कपड़े पहने चार नौकर हाथ धुलाने के लिए तैयार थे। वे सब एक-एक गमछा, एक-एक बट्टी नया साबुन और एक-एक नया तौलिया लिये हुए खड़े थे। उन सबने सबका हाथ धुलाया। तब वे लोग नीचे की बैठक मे आकर बैठे। वहाँ नौकरों ने चाँदी की दो तश्तरियाँ लाकर रख दीं, जिनमे पान और मसाला सजाकर रक्खा हुआ था। कस्तूरी से सुवासित अम्बरी तम्बाकू चढ़ाकर राजा-बहादुर के सामने फिर रक्खी गई।

ज़रा देर की बातचीत के बाद राजाबहादुर ने कहा––अब तो चलना चाहिए। भोजन के बाद बिस्तरे की शरण लिय बिना निर्वाह नहीं है।

पुण्डरीकाक्ष उठा और ढाका का सोने-चाँदी के तार का बना हुआ इत्रदान लाकर सबके सामने रख दिया। उसमें बहुत क़ीमती और उत्कृष्ट श्रेणी का महमहाता हुआ इत्र रक्खा था। सब लोगों ने उँगली डुबा कर ज़रा-ज़रा-सा इत्र लिया और उठकर खड़े होगये।

मेना ने पुण्डरीकाक्ष से कहा––चलिए, ज़रा-सा बुआ जी से आज्ञा ले आयें।

पुण्डरीकाक्ष मेना और एना को साथ में लिये हुए बुआजी के पास गया।

बुआ ने पूछा––भोजन होगया बिटिया? तुम लोगों के भोजन के आयोजन के लिए पुण्डरीकाक्ष कितना चिन्तित था। तुम्हें क्या-क्या चीज़ें अच्छी मालूम पड़ेंगी, यह वह निश्चय नहीं कर पाता था, इससे कलकते भर में जितने प्रकार की चीज़ें मिल सकती है, उन सभी को एकत्र करने का उसने प्रयत्न किया है। तुम लोगों ने कुछ खाया तो है न बिटिया?

मेना ने कहा—बुआ जी, शिष्टाचार प्रदर्शित करके पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है। जितने प्रकार के खाद्य पदार्थ परोसे गये थे, उन सबमें से चुटकी-चुटकी निकालकर मुँह में डालने पर भी एक आदमी के खाये न खाया जाता। अच्छा, तो अब हम चलती हैं बुआ जी?

बुआ ने कहा—अच्छी बात है। बिटिया, अब चलो। बड़ी रात हो गई है। पुण्डरीक, जाकर इन लोगों को पहुँचा आओ।

एना हँसती हुई बोली—नहीं, पहुँचाने जाने की जरूरत नहीं है। हम लोग रास्ता खोजकर ठीक जगह पर पहुँच जायँगी।

पुण्डरीकाक्ष सबको साथ में लिये हुए जाकर उनके फाटक तक पहुँचा आया। अन्त में बिदा लेने के लिए जब उसने मस्तक झुकाया और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये हुए सबको प्रणाम किया, तब एना ने प्रफुल्ल-मुख से कहा—आज आपके घर में जो कुछ देखा और जो-जो चीज़ें खाईं, वे सब हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेंगी।

एना के मुख से प्रशंसा के ये वाक्य सुनकर पुण्डरीकाक्ष कृतार्थ हो गया। वह जब लौटकर घर आया तब उसके हृदय में आनन्द की इस प्रकार की प्रबल तरंगें उठीं कि मानो नशे में चूर हो गया, उसके पैरों के नीचे से पृथिवी हट गई, उसके शरीर का सारा भार मानो जाता रहा, वह हलका होकर शून्य आकाश में उड़ उड़कर विचरण-सा करने लगा।

बारहवाँ परिच्छेद

दान और दान का बदला

पुण्डरीकाक्ष ने जिस दिन गृह-प्रवेश किया, उसके दूसरे ही दिन साँझ को वह राजाबहादुर के घर पर जा पहुँचा। साथ में वह उनके ऋण के सम्बन्ध के सारे काग़ज़-पत्र भी लेता गया था। पहुँचते ही उसने आफ़िसवाले कमरे में जाकर राजाबहादुर से मुलाक़ात की।

पुण्डरीकाक्ष को देखते ही राजाबहादुर ने प्रसन्नभाव से उसका स्वागत किया और मुस्कराते हुए कहा--आओ, आओ! कल से हम लोग बराबर तुम्हारे ही सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। भगवान् की कृपा से तुम्हें इस प्रकार का अतुलित ऐश्वर्य मिल गया है, साथ ही इन्द्रजाल-रचना करने की तुममें अद्भुत रुचि और क्षमता है, कल से यही एकमात्र हम लोगों की चर्चा का विषय बन बैठा है। तुम्हारे हाथ में यह सब क्या है?

पुण्डरीकाक्ष उठकर खड़ा हो गया। राजाबहादुर के पास जाकर उसने उनका चरण-स्पर्श किया और चरणों के समीप वह सब काग़ज़-पत्र रखकर कहने लगा--सेवा में कुछ तुच्छ भेंट ले आया हूँ, कृपा-पूर्वक वह स्वीकार करनी होगी।

पुण्डरीकाक्ष कौन-सी वस्तु भेंट में ले आया है, यह जानने के लिए राजाबहादुर को कौतूहल हुआ। झुककर उन्होंने पैर के पास से उन काग़ज़ों को उठा लिया और उन्हें खोलकर एक बार दृष्टि दौड़ाते ही वे बोल उठे--ये तो मेरे ही लिखे हुए दस्तावेज़ और प्रोनोट हैं। ये सब तुमने कहाँ से एकत्र कर लिये?

पुण्डरीकाक्ष का मुखमण्डल उस समय प्रसन्नता से विकसित हो उठा था। उसने कहा वह सारा ऋण मैंने चुका दिया है।

राजाबहादुर क्षण भर चुपचाप कुछ सोचते रहे। बाद को उन्होंने कहा—यह तुमने बड़ा अच्छा किया। सत्यनिधन एटर्नी ने मुझसे इस बात की चर्चा अवश्य की थी कि एक आदमी ने सारा ऋण ख़रीद लिया है। यह सुनकर पहले तो मैं घबरा उठा था। मेरे मन में यह बात आई थी कि सारा ऋण जब एक आदमी ने ख़रीद लिया है, तब वह किसी न किसी दिन आकर यह अवश्य कहेगा कि मेरे सारे रुपये चुका दो, अन्यथा उनके बदले में मैं तुम्हारी ज़मींदारी नीलाम करवा लूँगा।

ज़रा-सा विराम लेने के बाद राजाबहादुर ने कहा—सत्यनिधन ने उस समय तुम्हारा नाम नहीं बतलाया था। उसने मुझसे केवल इतना ही कहा था कि जिस आदमी ने यह ऋण ख़रीदा है, वह साइलक* की तरह का सूदख़ोर नहीं है। उसने यह भी कहा कि वह आपका शत्रु भी नहीं है, केवल हित-भावना से, बहुत-से महाजनों के तकाज़े और अपमान से आपको बचाने के ही विचार से, उसने सारा ऋण अकेले ही ख़रीद लिया है। परन्तु आज तक मैं यह नहीं जान पाया था कि वह ख़रीदार तुम्हीं हो। यह बात यदि पहले मुझे मालूम होगई होती तो इतने दिनों तक निरर्थक चिन्ता का क्लेश मुझे न सहन करना पड़ता। ख़ैर, यह बड़ा अच्छा हुआ कि सारे ऋण के तुम्हीं महाजन होगये हो। अब मैं निश्चिन्त होकर तुम्हारा ब्याज और मूलधन धीरे-धीरे चुकाता रहूँगा। परन्तु ये सब दस्तावेज और प्रोनोट मेरे पास क्यों ले आये हो? ये सब तुम्हारे ही पास रहने चाहिए। इन्हें तुम रक्खे रहो।

---

*एक यहूदी महाजन, जिसने एक व्यापारी को वादे की अवधि समाप्त हो जाने पर रुपयों के बदले में शरीर का मांस काटकर देने को बाध्य किया था।

ज़रा-सा संकुचित-सा होकर पुण्डरीकाक्ष बोला—यह भी आपने अच्छा कहा। मैंने आपका सारा ऋण चुका दिया है तो क्या इसलिए कि महाजन बनकर आप पर रोब जमाऊँ? आपको चिन्ता से मुक्त करने के विचार से आपका ही होकर मैंने यह सारा ऋण चुकाया है। जितने भी दस्तावेज़ और प्रोनोट हैं, उन सब पर भरपाई लिखी हुई है, सूद असल सब वसूल दे दिया गया है। इसलिए आप तो ऋण से मुक्त हो गये हैं अब।

राजाबहादुर ने गम्भीर होकर कहा—हाँ, पहले के महाजनों से मैं अवश्य ही ऋण-मुक्त हो गया हूँ; परन्तु तुम्हारा मैं केवल इतने ही रुपयों के लिए नहीं ऋणी हूँ; बल्कि यह ऋण और भी कई प्रकार से बढ़ गया है।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीत भाव से कहा—नहीं, नहीं, आपके ऊपर मेरा किसी प्रकार का भी ऋण नहीं है। आप पर किसी प्रकार की कृतज्ञता का भी भार नही है। आप कृपा-पूर्वक इन सबको ले लीजिए, तभी मैं सुखी होऊँगा और समझूँगा कि मेरा सारा ऋण चुकता होगया।

पुण्डरीकाक्ष में इतनी अधिक सज्जनता है, यह देखकर राजाबहादुर चकित हो गये। उसके प्रति उनके हृदय में श्रद्धा का भी बहुत अधिक भाव उदित हो आया। उन्होंने कहा—इतने रुपयों के दस्तावेज़ तुम मुझे मुफ़्त में देने आये हो और स्वेच्छा से आये हो। तुम्हारी दान-शक्ति अपरिमित है। परन्तु तुम्हारा यह दान मैं क्यों ग्रहण करूँ? मैं तुम्हारा कौन हूँ?

पुण्डरीकाक्ष ने अपना लज्जित मुख नीचा करके धीरे से कहा—आप मेरे पिता के तुल्य हैं।

राजाबहादुर ने गम्भीर भाव से ही कहा—यदि मैं तुम्हारे पिता के समान हूँ, तो मैं तुम्हें एक उपदेश देता हूँ, उसे तुम स्मरण रक्खो। केवल दान ही करते रहने पर कुबेर का भी भाण्डार शून्य

हो जाता है। केवल व्यय करते रहने पर अन्नपूर्णा के भाण्डार मे भी अभाव दिखाई पड़ने लगता है। तुम्हें कुछ रुपये मिल गये हैं। तुमने उन्हें इस प्रकार उपेक्षा के साथ व्यय करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी दशा में भला ये रुपये तुम्हारे पास कितने दिनों तक रुक सकेंगे ?

पुण्डरीकाक्ष ने फिर उसी प्रकार लज्जित भाव से कहा—आपसे सारी बातें कहने में मुझे संकोच मालूम पड़ता है। तो भी कहना पड़ रहा है कि यह जो कुछ व्यय मैंने किया है, यही मेरा अन्तिम व्यय है। यदि किसी दिन मेरे घर में लक्ष्मी का पदार्पण होगा, तो वे ही अपने भाण्डार का भार ग्रहण करेंगी, उन्हें सब कुछ समर्पित करके मैं निश्चिन्त मन से अवकाश ले लूँगा।

राजाबहादुर ने मुस्कराते हुए कहा—तो तुम्हारी उन लक्ष्मी का शुभागमन जब तक न हो जाय, तब तक प्रतीक्षा करते रहो। बाद को उनके आदेश के अनुसार कार्य्य करना। इस समय ये सब ले जाओ, कम से कम अभी इन्हें अपने ही पास रक्खो।

राजाबहादुर की ये बातें सुनकर पुण्डरीकाक्ष लज्जा से गड़-सा गया। मस्तक नीचा किये हुए उसने कहा—आपको दान करने की स्पर्द्धा से तो मैं यह सब ले नहीं आया। मैं आया हूँ चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित करके प्रार्थना करने के लिए कि मेरी बहुत काल की सञ्चित आशा पूर्ण की जाय।

पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर राजाबहादुर को बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने उत्सुक भाव से पूछा—कौन-सी तुम्हारी प्रार्थना और आशा है, ज़रा बतलाओ तो।

पुण्डरीकाक्ष ने लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—यदि आप अनुग्रह करके मुझे......

पुण्डरीकाक्ष अपनी बात समाप्त न कर पाया। यह देखकर उसके उपसंहार के रूप में राजाबहादुर ने कहा—अपनी कन्या दान कर दूँ ?

अपनी इस अभिलाषा की सूचना तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ। मेरी जहाँ तक धारणा है, मेरी कन्या को भी इसमें किसी प्रकार की आपत्ति न होगी। परन्तु कन्यादान करना होगा तो मैं ही तुम्हें दहेज़ दूँगा। मैं कन्या-विक्रय तो कर न सकूँगा?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—नहीं, नहीं, कन्या-विक्रय क्यों करेंगे? आपकी कन्या यदि कृपा करके मेरे घर जाने को तैयार हों तो अपने मन में यह धारणा लेकर चल सकें कि मेरे पिता ऋण से मुक्त होकर निश्चिन्त हो गये हैं और जिसके घर में उनका शुभागमन हो रहा है वह मेरे पिता का महाजन नहीं; बल्कि मित्र और आत्मीय है।

राजाबहादुर ने दस्तावेज़ों को बढ़ाकर पुण्डरीकाक्ष के सामने रख दिया और कहा—दान की इच्छा प्रकट करके ही तुमने अपने हृदय की उदारता और दयालुता का परिचय दिया है। इस प्रकार के परिचय से भी पहले हम तुम्हें अपने मित्र और आत्मीय के रूप में स्वीकार कर चुके हैं। इसलिए तुम उन्हें ले लो। इन्हें लेकर मैं अपनी ओर से तुम्हें दे रहा हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने सचमुच ही अत्यन्त दुःखित और क्षुब्ध होकर कहा—यदि ऐसी बात है तो प्रकारान्तर से आप यह कह रहे हैं कि मैं आपकी कन्या के योग्य नहीं हूँ। इस अवस्था में मैं उन्हें प्राप्त करने की इच्छा न करूँगा, भले ही मेरा समस्त जीवन निरर्थक हो जाय। जिसका मैं सम्मान करता हूँ, जिसके प्रति श्रद्धा प्रकट करता हूँ और जिससे प्रेम करता हूँ, उससे मैं इस प्रकार की प्रार्थना कभी नहीं कर सकता कि वह एक अयोग्य व्यक्ति के साथ आजीवन के लिए बन्धन में आबद्ध हो जाना स्वीकार करे।

राजाबहादुर का मुँह बन्द हो गया पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर। क्षण भर तक सोच-विचार करने के बाद उन्होंने कहा—अच्छा, तुम यदि ऐसा कह रहे हो तो शायद मुझे ले ही लेना पड़ेगा

इन्हें। परन्तु लेने का निश्चय करने से पहले ज़रा एना से भी पूछ लेना है कि इस सम्बन्ध में उसकी क्या सम्मति है? उसके बाद में अपने निश्चय की सूचना तुम्हें दूँगा।

पुण्डरीकाक्ष ने विनीत भाव से कहा—मैं आपसे मेना देवी के सम्बन्ध में बातें कर रहा हूँ। मेरी कामना मेना देवी को प्राप्त करने की है।

राजाबहादुर अत्यन्त ही आश्चर्य में आगये। वे मानो अपनी श्रवण-शक्ति पर विश्वास नहीं कर पाते, इस प्रकार का-सा भाव व्यक्त करते हुए उन्होंने पूछा—किसको? मेना को? मेरी बड़ी लड़की का नाम मेना है और छोटी का एना।

पुण्डरीकाक्ष ने धीमे स्वर से कहा—जी हाँ, मुझे यह मालूम है। मैंने भूल से नहीं कहा। आपकी ज्येष्ठा कन्या मेना देवी का ही पाणि-ग्रहण करने की मेरी कामना है।

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से राजाबहादुर को इतना विस्मय हुआ कि वे पूरे मिनट भर तक मुँह से कोई बात ही नहीं निकाल सके। अवाक् होकर वे उसके मुँह की ओर ताकते रह गये। उन्हें सन्देह होने लगा कि पुण्डरीकाक्ष कहीं पागल तो नहीं हो गया है? यदि पागल न हो तो क्या कोई लाख-लाख रुपयों के दस्तावेज़ यों ही दे देना पसन्द करेगा या इस प्रकार आँखें बन्द करके ही रुपया पैसा फूँकता फिरेगा। इसके सिवा यह जो इतने दिनों से एना से प्रेम करके मेना से दूर-दूर रहता आया है और बाद को मेना के ही साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट कर रहा है, यह क्या, पागलपन का लक्षण नहीं है?

राजाबहादुर के मुखमण्डल पर विस्मय और संकल्प-विकल्प का भाव देखकर पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मैं यह जानता हूँ कि मैं मेना देवी के योग्य बिलकुल ही नहीं हूँ। यदि वे या आप मुझे अयोग्य सिद्ध कर देते हैं तो इसके लिए मैं दुखी न होऊँगा। बात यह है कि मैं बराबर

ही उन्हें अपनी पहुँच से बाहर समझता आया हूँ। मैं यह समझता हूँ कि स्वप्न में भी वे मुझे नहीं मिल सकतीं, जीवन-पर्यन्त तपस्या करके भी उनके योग्य अपने को बनाने में समर्थ न हो सकूँगा। मेना देवी को मैं पा सकूँ या न पा सकूँ, इससे कोई मतलब नहीं। ये दस्तावेज़ तो आपको लेने ही पड़ेंगे। मैं किसी प्रकार के लेने-देने के विचार से ये दस्तावेज़ आपको देने नहीं आया हूँ। आप मेना देवी के पिता हैं, आपकी मुझ पर दया रहती है, केवल इसी लिए आपको चिन्ता से मुक्त करने के विचार से मैं इन सबको एकत्र करके ले आया हूँ।

राजाबहादुर ने मन ही मन यह निश्चय कर रक्खा था कि मेना का विवाह तो एक आदमी के साथ निश्चय हो ही चुका है, एना के ही विवाह के लिए एक योग्य वर की आवश्यकता है। यही बात सोचकर उन्होंने पुण्डरीकाक्ष को अपने घर पर बुलाया था। उन्होंने पुण्डरीकाक्ष के सम्बन्ध में यह भी स्थिर कर लिया था कि इसी के साथ एना का विवाह कर दूँगा। उसे यह बतलाने का अभी तक उन्हें ध्यान ही नहीं हुआ कि मेना को प्राप्त करने की कामना वह न करे, एना की ही आराधना उसे करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पुण्डरीकाक्ष ने जब से उनके यहाँ का आना-जाना आरम्भ किया है, तब से एना से उसकी घनिष्ठ प्रीति हो गई थी। वह उसके साथ खूब घुल-घुलकर बातें करता, आनन्दपूर्वक हँसता-खेलता। एना से उसका इस प्रकार का घनिष्ठतामय व्यवहार देखकर राजाबहादुर के मन में कभी इस प्रकार की कल्पना भी नही उदित हो पाई कि किसी दिन पुण्डरीकाक्ष को मेना के प्रति आकर्षित होने से रोकना पड़ेगा। आज तो अकस्मात् इस प्रकार का आविष्कार हो उठा! पुण्डरीकाक्ष मेना का पाणिग्रहण करने का इच्छुक है!

राजाबहादुर फिर नीरव होकर चिन्तामग्न हो उठे।

पुण्डरीकाक्ष ने जब यह देखा कि राजाबहादुर चिन्ता में पड़े हुए

हैं, तब उसने कहा—मैंने कोई अनुचित प्रार्थना की हो तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं फिर कभी यह बात मुँह से न निकालूँगा। इसके सिवा यह बात आज तक आपको छोड़कर मैंने न तो और किसी से कही है और न कभी कहूँगा। आप निश्चिन्त रहिए।

पुण्डरीकाक्ष बिदा लेने के लिए उठकर खड़ा हो गया। उसने यह कहा तो अवश्य था कि मेना देवी को यदि मैं न भी पा सकूँगा तो मुझे किसी प्रकार का दुःख न होगा, परन्तु उसने जब यह अनुभव कर लिया कि मेरी आशा भंग हो गई, तब अनुत्साह से सूखकर उसका मुँह कान्तिहीन हो उठा। ज़ोर देकर मुँह पर हँसी का जो भाव ले आने का प्रयत्न वह कर रहा था, वह बहुत ही करुण हो उठा। उसका मुस्कराहट का भाव ले आने का प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल था जिस प्रकार कि बादल से घिरे हुए दिन में सूर्यास्त के समय धूप देखने की कामना करना सर्वथा निरर्थक सिद्ध होता है।

पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर राजाबहादुर व्यथित हो उठे। आवेग से काँपते हुए मृदु स्वर से उन्होंने कहा—अच्छा, तुम्हारे इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मैं अपनी लड़की से बातें करूँगा। देखूँ, वह क्या कहती है? उसी की स्वीकृति या अस्वीकृति पर सब कुछ निर्भर है। मैं इस विषय मे बिलकुल ही असमर्थ हूँ, शक्तिहीन हूँ।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय में फिर संजीवनी आशा जाग्रत् हो उठी। उसने सोचा, तो अभी मेरी प्रार्थना अन्तिम रूप से अस्वीकृत नहीं हुई है। जीवन और मरण के बीच की-सी अवस्था में आकर क्षीण आशा उसके हृदय में डगमग करने लगी। बिदा लेकर वह कमरे से निकल गया।

पुण्डरीकाक्ष आज एना और मेना के सम्मुख जाने का साहस नहीं कर सका। वह इस प्रकार भयभीत-सा होकर उस स्थान से निकलकर भागा, मानो उसने कोई बहुत बड़ा अपराध कर डाला है और शीघ्र ही उसके प्रमाणित हो जाने की आशङ्का है।

पुण्डरीकाक्ष जब आया था एना की दृष्टि तभी उस पर पड़ गई थी। वह तो उसी की प्रतीक्षा में बरामदे में खड़ी थी। उसने देखा कि पुण्डरीकाक्ष और दिनों की तरह आज बराबर उसके पास ऊपर न जाकर उसके पिता के कमरे में चला गया। बड़ी देर के बाद वह कमरे से निकला; परन्तु फिर भी ऊपर न जाकर वह घर के बाहर ही गया। और किसी दिन जब वह जाने लगता था, चलते-चलते भी कितनी बार मुँह उठा-उठाकर वह एना की ओर देख लिया करता था। परन्तु उसी पुण्डरीकाक्ष ने आज एक बार भी मुँह फेरकर नहीं देखा। पीछे फिरकर ताकने पर कहीं उसका सामना न पड़ जाय, इसी भय से मानो माथा नीचा करके भूमि में दृष्टि गड़ाये हुए वह चला गया। क्यों? क्या हो गया है? यह मामला क्या है?

एना मेना के कमरे की ओर चली उसे इस घटना का हाल बतलाने के लिए। वह उसके कमरे के पास पहुँच भी नही पाई थी कि एक नौकर की आवाज उसे सुनाई पड़ी। नौकर कह रहा था---बड़ी दीदी रानी, राजाबहादुर आपको जरा देर के लिए नीचे बुला रहे हैं।

एना ने समझ लिया कि इस बुलावे के साथ पुण्डरीकाक्ष के आगमन और प्रस्थान का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। वह उतावली के साथ वहाँ से खिसककर चली गई; परन्तु मन ही मन इस बात का अनुमान करने लगी कि मेना कहाँ जाती है, क्या करती है, क्या कहती है और पिता जी ही क्या करते हैं या उससे क्या कहते हैं? छिपकर सुने बिना भी वह ये सारी बातें जान लेने की चिन्ता में थी।

मेना ने पिता के पास जाकर देखा तो वे शान्त बैठे थे। उनके मुख पर गम्भीर चिन्ता की रेखा विराजमान थी।

कमरे में जाकर मेना खड़ी होगई। फिर भी कुछ क्षण तक राजा-बहादुर उससे कोई बात कह न सके। अन्त में पुण्डरीकाक्ष जितने भी दस्तावेज़ और प्रोनोट दे गया था, उन सबको उठाकर उन्होंने

मेना के हाथ पर रख दिया। देखते ही मेना ने समझ लिया कि ये दस्तावेज हैं। देखकर वह घबरा उठी। सोचने लगी कि कहीं महाजनों ने रुपयों के लिए पिता जी को तंग करना तो नहीं आरम्भ कर दिया ? यह भी सम्भव है कि उन लोगों के ऋण के कारण सारी जमींदारी बिकना चाहती हो यही दुःसंवाद देने के लिए पिता जी ने मुझे बुलाया हो।

उन दस्तावेज़ों को देखने के लिए मेना ने जैसे ही पिता की ओर से दृष्टि हटाई, राजाबहादुर ने धीरे एवं गम्भीर स्वर से कहा——ये सब दस्तावेज मेरे ऋण के हैं। सारा ऋण चुका कर पुण्डरीकाक्ष इन्हें ले आये हैं। वे अभी ही इन्हें ले आये हैं। इन सबको उन्होंने मुझे यों ही दे डाला है, इन्हें लेने के लिए बहुत अधिक अनुरोध और आग्रह किया है। इसके बदले में मुझसे कुछ प्राप्त करने की कामना उनकी नहीं है। वे यह सब मुझे मुफ़्त ही दे डालना चाहते हैं ? परन्तु क्या मैं इन्हें इस प्रकार ले सकता हूँ ? इतना बड़ा दान उनसे मैं किस प्रकार ले सकता हूँ ? इसी लिए मैंने उनसे पूछा कि इस दान के बदले में मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ ? इस प्रश्न के उत्तर में द्विधा से काँपते हुए कण्ठ से उन्होंने कहा——मेरी कामना है कि मैं आपकी ज्येष्ठा कन्या मेना देवी का पाणिग्रहण करूँ।

पुण्डरीकाक्ष के इतने बड़े दान का संवाद सुनते-सुनते मेना का मुख आनन्द से विकसित होता जा रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि पुण्डरीकाक्ष को इस प्रकार की अपरिमित उदारता प्रदर्शित करने का साहस कैसे हुआ ? मन ही मन उसकी इस उदारता की वह प्रशंसा भी कर रही थी। परन्तु पिता के मुख से जब उसने सुना कि पुण्डरीकाक्ष उसे ही प्राप्त करना चाहता है, तब उसका मुख मृत्यु-दण्ड की आज्ञा पाये हुए अभियुक्त के समान रक्तशून्य और पीला हो उठा। वह विस्मयपूर्ण एवं चकित दृष्टि से पिता की ओर ताकने लगी।

कन्या के मुख के भावों में जो परिवर्तन हो रहा था उसे

ध्यानपूर्वक देखकर राजाबहादुर ने कहा——मैंने उन्हें किसी प्रकार का वचन नहीं दिया है। इस सम्बन्ध में मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति तुम्हारी ही सम्मति पर निर्भर है, यह बात मैंने उनसे स्पष्ट रूप से कह दी है। तुम तो यह जानती ही हो मेना कि हम लोगों की अवस्था आजकल कितनी संकटापन्न हो उठी है। इन हैंड नोटों और दस्तावेज़ों के वापस मिल जाने पर हम ऋण की अत्यधिक कष्टदायक चिन्ता से ही नहीं मुक्त हो जायँगे; बल्कि पिता-पितामह की ज़मींदारी भी हमें वापस मिल जायगी। परन्तु मुझे इस परम लाभ की उतनी चिन्ता नहीं है। तुम्हारे जीवन को सुखी और आनन्दमय बनाने की कामना मुझे इससे कहीं अधिक है। तुम यदि अपनी इच्छा से पुण्डरीकाक्ष के साथ विवाह करना पसन्द करो तभी मैं इन्हें लूँगा। अन्यथा मैं इन्हें पुण्डरीकाक्ष को वापस कर दूँगा। यह बात मैंने उनसे कह दी है। तुमसे मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि इस विषय में तुम पूर्णरूप से स्वाधीन हो। यह बात यदि ज़रा भी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हो तो मुझसे कह देने में संकोच न करना।

राजाबहादुर चुप होकर कन्या के मुँह की ओर ताकने लगे। मेना भी गम्भीर होकर बैठी रही। बात मुँह पर आते-आते रह जाती, वह बोल न सकती। यह देखकर राजाबहादुर फिर कहने लगे——तुम अच्छी तरह से सोच-समझ लो, तब अपने निश्चय की सूचना देना। तुम्हारे विवाह की बातचीत कुमीरखाली के ज़मींदार कन्दर्पकुमार के साथ बहुत दिनों से चल रही है। एक बार उनसे तुम्हारी मुलाक़ात भी हो चुकी है। यदि तुमने कल्पना से उन्हें अपना पति स्वीकार कर लिया हो या अपने भावी पति के रूप में उनसे प्रेम करने लगी होओ, तो भी मुझसे यह बात कह देने में सकल्प-विकल्प न करना।

क्षण भर के विराम के बाद राजाबहादुर फिर कहने लगे—— रवि बाबू ने एक बार कहा है कि हमारे देश की स्त्रियाँ किसी आदमी को स्वामी समझकर नहीं प्यार करतीं। वे प्यार करती हैं अपने हृदय

मे वर्त्तमान स्वामी नामक 'आइडिया' को, धारणा को। इस प्रकार का प्रेम दिखलाया है उन्होंने अपने 'नौका डुबी'* नामक उपन्यास में कमला के चरित्र में। और 'योगायोग' नामक उपन्यास में कुमुदिनी के चरित्र मे। यदि तुम उसी प्रकार मन ही मन कन्दर्प को अपना पति स्वीकार कर चुकी होओ, तो वे ही तुम्हारे पति होंगे। परन्तु यदि तुम्हारा हृदय स्वतंत्र हो तो इस बात पर विचार करो कि इन दोनों में किसके साथ विवाह करना तुम अधिक पसन्द करोगी।

मस्तक नीचा किये हुए मेना बहुत धीमे स्वर में कहने लगी—मैंने इन दोनों व्यक्तियों में से एक को भी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया है। मैंने यह सदा से स्थिर कर रक्खा है कि आप मुझे जिसे दान कर देंगे वही मेरा स्वामी होगा। उसी से मैं प्रेम करूँगी। यदि किसी कारण से मैं उससे प्रेम न कर सकूँगी तो भी उसके प्रति स्त्री का जो कर्त्तव्य है, उसका पालन करने में असावधानी न होने दूँगी। मेरे पुण्डरीकाक्ष के साथ विवाह कर लेने पर आप यदि चिन्ता से मुक्त हो सकें तो मै प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ विवाह कर लूँगी। आपका चिन्ता से मुक्त होना यदि मेरी ही सम्मति पर निर्भर है तो समझ लीजिए कि मैंने पूर्ण सम्मति दे दी है। मैंने तो कुमीरखाली के ज़मींदार को केवल एक दिन देखा है। वह भी कितने दिन पहले। इसके विरुद्ध इन्हें मैं कितने दिनों से देखती आ रही हूँ। बहुत दिनों से मेरी इनकी मेल-मुलाक़ात भी है। इनके हाथों में यदि आप मुझे समर्पित करना चाहते हैं तो इसमे मुझे कोई आपत्ति नही हो सकती। क्या बाबू जी, मैंने कभी आपकी इच्छा के विरुद्ध भी कोई कार्य्य किया है?

राजाबहादुर ने मेना की ओर हाथ बढ़ा दिया। मेना धीरे-धीरे जाकर पिता के पास खड़ी हुई। राजाबहादुर ने कन्या को स्नेह-

---

* रवीन्द्र बाबू के इस उपन्यास का हिन्दीरूपान्तर आश्चर्य्य घटना के नाम से इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

पूर्वक पकड़कर अपनी गोद के पास खींच लिया और कहने लगे—तुम मेरी अतिशय पितृभक्त कन्या हो, यह मैं जानता हूँ बेटी, इसी लिए तो मुझे भय है कि कहीं मैं तुम्हारे ऊपर अपनी इच्छा लादकर तुम्हारे सुखों का बलिदान न कर बैठूँ ?

मेना के नेत्रों में जल आ गया। वाष्प से आकुल कण्ठ से वह कहने लगी—नहीं बाबू जी, आप मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। मेरे लिए आप जो भी व्यवस्था करेंगे वही मेरे लिए शुभाशीर्वाद होगी।

कन्या के आँसुओं से आच्छादित नेत्रों की ओर ताकते हुए राजाबहादुर ने पूछा—तो क्या पुण्डरीकाक्ष को यह शुभ समाचार सूचित करके उसे सुखी कर सकता हूँ ?

मेना के कण्ठ से बहुत ही क्षीण स्वर सुनाई पड़ा—हाँ।

मेना की इस स्वीकृति से राजाबहादुर ऋण की चिन्ता से मुक्त हो गये, साथ ही कन्या के विवाह की भी व्यवस्था हो गई। इससे वे आनन्दित हो उठे। उन्होंने सोचा कि मेना में इस समय जो इतनी गम्भीरता आ गई है, उसका कारण कन्या के द्वारा पिता के समीप प्रकट की जानेवाली केवल लज्जा तथा सङ्कोच के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसके मुख पर गम्भीरता का जो भाव है, उसकी आड़ में एक आनन्द का भाव अवश्य छिपा हुआ है। पुण्डरीकाक्ष-जैसे विभवशाली व्यक्ति के ऐश्वर्य्य की स्वामिनी बनना वह अपने लिए सौभाग्य की ही बात समझती होगी। इस प्रकार इस सम्बन्ध से मेना की अन्तरात्मा अवश्य सुखी होगी। राजाबहादुर ने उसी समय यह भी सोच लिया कि कुमीरखाली के ज़मींदार कन्दर्पकुमार के साथ एना का भी विवाह किया जा सकता है, क्योंकि इससे उसके असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं है।

मेना पिता के पास से चली गई।

एना अभी तक अपने प्राण हथेलियों पर लिये हुए मेना के

लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसका एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से व्यतीत हो रहा था। जैसे ही उसने मेना को लौटती देखा वह दौड़ कर दीदी के पास गई पूछने के लिए कि मामला क्या है ? पुण्डरीकाक्ष आकर पिता जी के पास माथा नीचा किये हुए बैठा था और अन्त में उठकर वह चुपचाप चला गया। हम लोगों से मुलाक़ात किये बिना ही वह आज क्यों चला गया ? पिता जी ने उसके जाते ही मेना को बुलवा क्यों भेजा था ? और वे इतनी देर तक उससे कह क्या रहे थे ? यही सब बातें एना जानना चाहती थी; किन्तु दीदी के सामने जाकर जैसे ही उसने उसके मुँह का भाव देखा, वह ठमककर खड़ी होगई।

उस समय मेना का मुख मुर्दे का-सा निस्तेज हो उठा था। उसकी ओर दृष्टि डालते ही एना चकित हो उठी। उसने जितनी भी बातें पूछने का निश्चय किया था, वे सभी उसे भूल गईं। उसने आकुलभाव से केवल इतना कहा—कहो दीदी, क्या हुआ ? क्या कोई सङ्कट का विषय आगया है ? तुम्हारी तबीअत तो ठीक है न ? कुछ दर्द तो नहीं कर रहा है ? तुम्हारा चेहरा इस प्रकार उतरा हुआ क्यों है ?

मेना ने हँसने का प्रयत्न किया। परन्तु उसका वह प्रयत्न इतना करुण मालूम पड़ा कि एना काँप उठी। मेना ने कहा—नहीं, कोई संकट का विषय नहीं है; बल्कि आनन्द का ही विषय है। पुण्डरीक बाबू ने पिता जी का सारा ऋण चुकता करके सारे दस्तावेज़ और प्रोनोट इन्हें दे दिये हैं, मुफ़्त में। उनके इस इतने बड़े दान के बदले में पिता जी ने उन्हें भी कुछ देने का आग्रह प्रदर्शित किया। तब पुण्डरीक बाबू ने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

एना के मस्तक पर मानो बिजली गिर पड़ी। चकित होकर मुहूर्त भर मेना के मुँह की ओर एक दृष्टि से निस्तब्धभाव से वह ताकती रही। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

मेना की इस बात में सत्यता का लेश तक उसे नही मालूम पड़ रहा था। इस बात को वह कभी मन में भी नही ला सकती थी कि पुण्डरीकाक्ष ने कभी इस तरह की असम्भव बात मुँह से निकाली होगी।

एना ने पहले तो यही सोचा कि दीदी मुझसे हँसी कर रही है। पुण्डरीकाक्ष ने मेरे ही साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। केवल मुझे चिढ़ाने के लिए वे कह रही हैं कि उन्होंने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। वास्तविक बात इन्हो ने मुझसे छिपा रक्खी है। इससे वह हँसी में ही यह बात उड़ा देना चाहती थी। परन्तु उसने जब दीदी के सूखे हुए और गम्भीर मुँह की ओर देखा तब वह इस विषय को इतना तुच्छ समझने का साहस न कर सकी। जरा-सा अपने को सँभालते हुए इस दुःसंवाद के सम्बन्ध में अपने कानों का सन्देह निवृत्त करने के विचार से गम्भीर भाव से ही उसने पूछा—कहो दीदी, क्या यह सच है ?

मेना ने करुण एवं क्षीण कण्ठ से कहा—हाँ भाई, सच है।

एना मुहूर्त्त भर के लिए फिर निस्तब्ध हो गई। बाद को उसने कहा—तो क्या पिता जी ने उन्हें वचन दे दिया है ?

मेना ने कहा—नहीं, अभी तक उन्होंने वचन नहीं दिया है। उन्होंने मुझसे पूछ कर बतलाने को कहा है, इसी लिए उन्होंने मुझे बुलाया भी था।

तीक्ष्ण दृष्टि से दीदी के मुँह की ओर ताकती हुई एना बोली—तो तुमने क्या कहा ?

यह प्रश्न करने के बाद एना इस प्रकार के व्यग्रतापूर्ण आग्रह के साथ दीदी की ओर ताकती रही कि मानो इस प्रश्न के उत्तर पर ही उसके जीवन का भविष्य निर्भर है।

मेना बहन की ओर न ताक सकने के कारण दूसरी ओर ताकती

हुई बोली—-पिता जी की दुश्चिन्ता दूर हो जायगी, वे ऋण से मुक्त हो जायँगे, इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया है।

मेना की यह बात सुनते ही एना एकाएक क्रोधमय स्वर में बोल उठी—-और पिता जी के प्रति ममता दिखलाकर रानी नहीं बनोगी ? मन ही मन तुम्हें इस बात की इच्छा थी, तो बतलाने में लज्जा क्यों आ रही है। मैं तो यह बात बहुत पहले से ही जानती थी ! ऐसा तुम केवल पिता जी को सुखी करने के ही लिए तो नहीं कर रही हो। साथ ही साथ तुम स्वयं भी तो सुखी होओगी ! परन्तु तुम्हारे कुमीरखाली के ज़मीन्दार जो मुँह बाये ताक रहे हैं, उनके भाग्य की क्या व्यवस्था हुई ? लीप दिया उन्हें ? उस दिन जो ऐश्वर्य का आडम्बर देख आई हो, उसके कारण तो पिता जी के प्रति कृपा का सागर उच्छ्वसित हो उठेगा ही !

मेना का हृदय फाड़-फाड़कर रुलाई आ रही थी। मेना को ऐसी आशा नही थी कि उसके सामने इस प्रकार का भी प्रस्ताव आयेगा। परिस्थिति की प्रेरणा से उसे इस प्रकार का अत्यधिक और असाधारण आत्म-त्याग करना पड़ा था। परन्तु इस आत्म-त्याग के कारण उसे जो वेदना हुई थी, उसके कारण उसका हृदय व्यथित हो रहा था। उसे आशा थी कि एना से बातें करके इस असह्य मनोवेदना को बहुत कुछ शान्त करने में समर्थ हो सकूँगी। बात यह थी कि एना ही उसके लिए सब कुछ थी, चाहे वह उसे सहचरी समझती चाहे सखी समझती और चाहे बहन समझती। परन्तु एना से तो वह किसी प्रकार की सहानुभूति या सान्त्वना प्राप्त न कर सकी। सहानुभूति के बदले में उसे कितना निष्ठुरतामय और कठोर आघात मिला ! उससे मेना उस आघात से बहुत ही मर्माहत होकर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई। अपने कमरे में जाकर वह छिप गई। बिस्तरे पर बैठकर शून्य दृष्टि से एक ओर वह ताकती रही। मानो कठोर आघात के कारण उस समय उसकी चेतना ही

नष्ट हो उठी थी। आज वह बिलकुल ही अकेली थी, नितान्त ही असहाय थी।

एना भी दौड़ती हुई अपने कमरे में गई। उसने बिस्तरे पर अपना शरीर डाल दिया। तकिये में मुँह छिपाकर उमड़े हुए आँसुओं को रोकने के लिए वह निरर्थक प्रयत्न करने लगी।

इस प्रकार वह समय मेना और एना के लिए बहुत ही क्लेशकर था। इसके विरुद्ध पुण्डरीकाक्ष प्रसन्नता के मारे अपने आपे में नहीं समा रहा था। राजाबहादुर का पत्र उसके पास उसी समय पहुँचा था। पत्र को शङ्का से काँपते हुए हाथ से उसने खोला। खोलते ही जब उसने देखा कि मेना ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है और राजाबहादुर ने भी अपनी स्वीकृति देकर उसे आशीर्वाद लिख भेजा है, तब उसके आनन्द का आवेग इतना प्रबल हो उठा कि वह हृदय में उसके रोके नहीं रुकता था। उसी असह्य आनन्द में वह तुरन्त ही भूमि पर लोटकर भगवान् की स्तुति करने लगा। आनन्द के प्रबल आघात से पुण्डरीकाक्ष में जो विह्वलता का भाव आया था, उसे किसी प्रकार कुछ दूर करके वह पूजा के कमरे में जाकर आसन पर बैठा। आज वह इतने आनन्द में था, उसके हृदय में इस प्रकार की कृतज्ञता का भाव था कि वह अपने सारे तन-मन को भगवान् की दया के सामने निपतित कर देना चाहता था।

तेरहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन साँझ को नियमित समय पर पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर के घर पर मनोविनोद के लिए आया। आज उसका हृदय आनन्द के मारे नाच रहा था। कल जब उसे राजाबहादुर की स्वीकृति का पत्र मिला था तब से लेकर आज साँझ तक अपने आपको सम्हाल रखने मे उसे कितने अधिक अन्तर्द्वन्द्व का सहन करना पड़ा था, यह उसके अन्तर्य्यामी ही जानते होंगे। उसके मन में बार-बार यही बात आती कि दौड़ता हुआ मेना के पास पहुँचूँ और उसके चरणो के समीप लोटकर अपने हृदय का आनन्द और कृतज्ञता उसके समक्ष प्रकट कर दूँ। परन्तु उसे भय था कि तुरन्त ही पहुँचकर अधीरता प्रकाशित करने पर मेना को कही किसी प्रकार का असन्तोष न हो जाय। इसी लिए अभी तक वह रुका रहा। इतने समय मे हृदय के आनन्द को पुण्डरीकाक्ष ने बहुत कुछ परिपक्व कर लिया, तब वह राजाबहादुर के यहाँ पहुँचा।

पुण्डरीकाक्ष ने पहले-पहल राजाबहादुर के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उसे देखते ही राजाबहादुर हँसते हुए खड़े हो गये। उसे छाती से लगाकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। बाद को उन्होंने कहा—जाओ, तुम ऊपर जाओ, वहाँ मेना-आदि हैं।

पुण्डरीकाक्ष इतने दिनों से इस घर मे आया करता था, परन्तु मेना के सामने मस्तक उठाकर कभी निस्सङ्कोच-भाव से बातचीत वह नहीं कर सका। मेना को देखते ही पुण्डरीकाक्ष का हृदय आदर और सम्मान से इस प्रकार अभिभूत हो उठा करता कि मुँह खोलने का उसे साहस ही न होता।

पुण्डरीकाक्ष एना से अवश्य हँसी-मज़ाक किया करता था, वह भी मेना की अनुपस्थिति में ही। मेना के सामने आते ही पुण्डरीकाक्ष का मुँह बन्द हो जाया करता था। इससे आज जब मेना के सामने जाने की बात आई तब उसका हृदय धक-धक करने लगा। वह सोच रहा था कि मैंने जो यह विवाह का प्रस्ताव किया है, इसके कारण मेनादेवी के मन में न जाने कैसा भाव आया हो। सम्भव है कि उन्होंने मेरे सम्बन्ध में यह धारणा कर ली हो कि पुण्डरीकाक्ष बड़ा लोभी है, वह बड़ी ऊँची-ऊँची आकांक्षायें किया करता है।

पुण्डरीकाक्ष धड़कते हुए हृदय से गिन-गिनकर एक-एक सीढ़ी पर पैर रखते-रखते ऊपर पहुँच गया। और दिन उस समय एना बरामदे में खड़ी रहा करती थी। पुण्डरीकाक्ष के फाटक के पास पहुँचते ही वह मुस्कराती हुई उसका स्वागत करती और उसे बुला ले आती। उसका मुस्कराता हुआ मुख देखकर ही पुण्डरीकाक्ष इतने दिनों तक मेना के दर्शन के निमित्त आने का साहस कर सका है। आज उसे एना की सहायता और समर्थन की सबसे अधिक आवश्यकता थी। ऐसे अवसर पर एना कहाँ जाकर छिपी? आज तो एना बरामदे में उपस्थित थी नहीं?

पुण्डरीकाक्ष दबेपाँव से एक बार सारे बरामदे में चक्कर लगा आया। परन्तु बैठक के कमरों में से किसी में भी उसे कोई न दिखाई पड़ा। किसी नौकर पर भी उसकी दृष्टि न पड़ सकी कि वह उसी के द्वारा अपने आगमन की सूचना मेना के पास भेज देता। परन्तु मेना को सूचना देने से ही पुण्डरीकाक्ष को क्या लाभ हो सकता था? एना की सहायता के बिना तो मेना के सामने भी वह नहीं जा सकता था, समीप जाना तो दूर की बात थी।

आज एना ने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि मैं किसी प्रकार भी पुण्डरीकाक्ष के सामने न जाऊँगी, उससे बातें न करूँगी, उसकी ओर दृष्टि उठाकर देखूँगी भी नही। उसने यहाँ तक निश्चय कर लिया

था कि आज मैं कमरे से निकलूँगी ही नहीं। परन्तु पुण्डरीकाक्ष प्रतिदिन जिस समय आया करता था, वह समय जैसे-जैसे समीप आता गया वैसे ही वैसे एना की अधीरता और उत्कण्ठा बढ़ने लगी। फिर भी बिस्तरे को ज़ोर से पकड़े हुए वह पड़ी रही। उसने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि मैं पुण्डरीकाक्ष के प्रति बहुत ही कठोर और कठिन होऊँगी। उसे इस प्रतिज्ञा का पालन तो करना ही था, इससे स्वभावतः उसे किसी प्रकार अपने को रोकना पड़ा।

कुछ ही मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद एना यह अनुभव करने लगी कि मानों मुझे इस तरह पड़े पड़े एक युग बीत गया। अन्त में अधीरभाव से उठकर वह बिस्तरे पर बैठ गई। एक बार बड़ी बहन के कमरे की ओर कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुनने का उसने प्रयत्न किया कि उधर से किसी प्रकार का शब्द आता है या नहीं। बड़ी देर तक कान लगाये रहने पर भी उसे किसी प्रकार की आहट न मिली।

अब एना के मन मे यह बात आई कि हो न हो, पुण्डरीकाक्ष आया अवश्य है और दीदी उससे घुल-घुलकर बातें कर रही हैं। मन में यह बात आते ही क्रोध के मारे उसका सारा शरीर जल-सा उठा। झम से कूदकर वह चारपाई पर से उतर गई और बड़ी बहन के कमरे के द्वार के पास आकर खड़ी हुई। कमरे का द्वार उस समय खुला था। परन्तु उसके भीतर से मनुष्य का किसी प्रकार का भी शब्द और किसी प्रकार की आहट नहीं आ रही थी। अब एना का सन्देह बिलकुल ही जाता रहा। उसने निश्चय कर लिया कि दीदी आज मुझे बुलाये बिना ही प्रेमी के एकान्त-मिलन के लिए चली गई हैं।

एना ने मन में इस प्रकार का निश्चय कर तो लिया, किन्तु फिर भी सन्देह निवृत्त करने के लिए एक बार झाँककर उसने कमरे में देखा। मेना उस समय कपड़े पहने हुए बिस्तरे पर निष्पन्द, निश्चल-भाव से बैठी थी। यह देखकर एना एक तीखा-सा व्यङ्ग

कसती हुई बोली---कहो जी, बासकसज्जा हो रही हो क्या ? सखी री श्याम नहिं आये !

मेना जिस प्रकार निष्पन्द निश्चल होकर बैठी थी, उसी प्रकार दोनों हाथ जोड़कर वक्ष पर लगाये हुए वह बैठी रही। उसने मुँह फेरकर न तो एना की ओर देखा, न मुँह से कोई बात निकाली और न ज़रा-सा आह ही भरी। शायद वह उस समय अपने जीवन-विधाता से करुणा की भिक्षा माँग रही थी। वह जो इस प्रकार का भयङ्कर आत्म-त्याग करने जा रही थी, उसके अनुकूल बल प्रदान करने के लिए भगवान् से प्रार्थना कर रही थी। उसे क्षण-क्षण पर यह अनुभव होता कि पुण्डरीकाक्ष अब आता होगा। वह आज मुझसे उस प्रकार की बातें करेगा, जैसी कि कोई भी पति अपनी पत्नी से किया करता है। अपनी भावी पत्नी समझकर वह मुझसे कितनी प्रेम की बातें करेगा। परन्तु मैं अपनी मानसिक अवस्था को तो अभी तक इस रूप में नहीं ला सकी हूँ कि उसकी उन सब बातों को सहन करूँ और प्रसन्नभाव से उन्हें ग्रहण करूँ !

उस समय मेना के हृदय में वे बातें आने लगीं, जो कि उसने पिता से कही थीं। उसने कहा था कि जिस किसी को भी मैं पति के रूप में ग्रहण करूँगी, उसी से प्रेम करूँगी। यदि किसी कारण से उससे प्रेम न भी कर सकूँ तो पति के प्रति पत्नी का जो कर्त्तव्य है, उसका पालन करने में मैं किसी प्रकार की त्रुटि न होने दूँगी। परन्तु आज जब उस कठोर सत्य का सामना करने का अवसर आ गया तब तो उसका साहस ही जाता रहा। मेना के मन में बार-बार यह बात आने लगी---यदि कहीं मेरा हृदय प्रसन्नभाव से कर्त्तव्य-पालन भी न कर सका !

मेना यह भी अनुभव कर रही थी कि एना पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करती थी। इसी लिए उसे मुझसे ईर्ष्या हो रही है और वह क्रोध में आकर मेरे साथ रुखाई का व्यवहार कर रही है। परन्तु इससे बहुत

के प्रति उसे ज़रा भी क्रोध नहीं आ रहा था। इसके विपरीत उसका हृदय ममता और समवेदना से ही परिपूर्ण हो उठता था। वह सोच रही थी कि बड़ी बहन होकर मैंने छोटी बहन की आशा और प्रेम पर जो आघात किया है, उसके बदले में मेरे हृदय पर जो भी आघात पहुँचे, उसका तो मुझे सहन करना ही पड़ेगा। वह चाहती थी कि अपनी सफ़ाई देकर एना को ज़रा-सी सान्त्वना देने का प्रयत्न करे। परन्तु ऐसा करने में भी उसे भय था कि एना इस प्रकार की बातें सुनते ही पुण्डरीकाक्ष से भी रुष्ट हो जायगी। यह सोचकर मेना बहन से सान्त्वना की भी कोई बात नहीं कह पाती थी। वह यह भी नहीं कह पाती थी कि कितनी अनिच्छा से इस प्रेम-शून्य विवाह के लिए मैं अपनी स्वीकृति दे सकी हूँ, केवल पिता का मुँह देखकर।

मेना सोच रही थी कि मैं चाहे कितना ही समझाकर कहूँ, लेकिन एना उसे उल्टा ही समझेगी, उसके हृदय का भ्रम दूर न होगा, इसलिए उसे समझाना निरर्थक है। इसके सिवा उस समय वह एक ऐसी सङ्कटमय अवस्था में थी कि मुँह से कोई बात निकालने का उसे साहस ही नहीं होता था। उसे भय था कि बोलने का प्रयत्न करने पर कहीं बातों के बदले में आँसुओं की धारा ही न प्रवाहित होने लगे।

इधर एना ने जब देखा कि मेना किसी बात का उत्तर न देकर निस्पन्दभाव से बैठी है, तब उसकी अन्तरात्मा और भी जल उठी। वह बोल उठी—ऐसा दारुण-विरह है—

कन्त पाहुन विरह दारुण,
सघने खर शर हन्तिया।
मत्त दादुरि, डाके डाहुकी,
फाटि याओ त छातिया।

मेना की आँखें फाड़-फाड़कर जल के बिन्दु टपकने ही वाले थे।

उसके जी में आ रहा था कि वह दौड़ती हुई जाय और बहिन का गला पकड़कर रोती हुई उससे अनुरोध करे कि तू मेरे प्रति इतनी निष्ठुर न हो। परन्तु अपने हृदय को पत्थर की तरह कड़ा किये हुए वह स्थिर होकर बैठी ही रह गई। बहन की श्लेषमय बातें उसके हृदय को विदीर्ण करके उसे रक्त से रञ्जित-सा किये दे रही थीं, किन्तु बाहर से वह कोई भी ऐसा भाव नहीं प्रकट कर रही थी, जिससे कि उसकी चञ्चलता व्यक्त हो सके।

इस प्रकार बार-बार ताने देने पर भी एना को दीदी की ओर से किसी प्रकार का उत्तर नहीं मिला, तब वह और भी अधिक क्रुद्ध हो उठी। पुण्डरीकाक्ष के अभी तक न आने का क्या कारण है, यह बात जानने की भी एना को अत्यधिक उत्कण्ठा हो आई। मेना से और कुछ न कहकर वह चली गई यह देखने के लिए कि पुण्डरीकाक्ष आया है या नहीं।

एना जिस समय पूर्ववाले बरामदे में आई, उस समय पुण्डरीकाक्ष टहलते-टहलते दक्षिणवाले बरामदे में चला गया था। कोने की आड़ में पड़ जाने के कारण एना न तो पुण्डरीकाक्ष को देख सकी और न पुण्डरीकाक्ष ही एना को देख सका। बरामदे तथा दोनों बैठकों में जब कोई भी नहीं दिखाई पड़ा तब एना बरामदे के एक कोने में जाकर खड़ी हुई। उस कोने में खड़ा होकर देखने पर फाटक की साँस से थोड़ी-सी सड़क और पुण्डरीकाक्ष के मकान का थोड़ा-सा भाग दिखाई पड़ता था। एना वहीं खड़ी होकर मस्तक उठाये देख रही थी। इतने में टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष आकर उसके पीछे खड़ा हो गया।

पीछे पैर की आहट मिलते ही एना ने जैसे ही घूमकर देखा, मुस्कराते हुए पुण्डरीकाक्ष से उसका सामना हो गया। चोरी में एकाएक पकड़े जाने पर मनुष्य जिस तरह चकित हो उठता है, अँधेरी रात में घर से अकेले निकलने पर आदमी के मन में यदि यह

शङ्का आ जाय कि भूत से मेरा सामना हो गया है, तो उसका शरीर जिस प्रकार काँप उठता है, ठीक उसी प्रकार एना का भी शरीर काँप उठा। वह उतावली के साथ चकित भाव से वहाँ से भागने का प्रयत्न करने लगी। पीछे की ओर लौटकर वह चली।

एना के नेत्र और मुँह देखकर तथा उसे बिना कुछ कहे-सुने चली जाती देखकर पुण्डरीकाक्ष ने समझ लिया कि मामला कुछ गड़बड़ है। परन्तु फिर भी उसने पहले की ही तरह मज़ाक़ करने का प्रयत्न करते हुए कहा—क्रोधं देवि संहर, संहर। भक्त से विमुख न होइए। अपराध किया है, तो सरकार के सामने हाज़िर हूँ।

एना झटपट घूम पड़ी। पुण्डरीकाक्ष की ओर तीक्ष्ण एवं निष्ठुर दृष्टि से ताककर रूखे स्वर में वह बोली—जो बाहु-पाश में बाँधकर दण्ड देंगी, उन्हे मैं बुलाये देती हूँ। भीष्म ने तो इच्छा-मृत्यु स्वीकार कर ही ली है, अब आपको सामने शिखण्डी खड़ा करके वाण चलाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

एना जैसी तेज़ी के साथ पुण्डरीकाक्ष की ओर मुँह फेरकर खड़ी हुई थी, वैसी ही तेज़ी के साथ उसकी ओर से उसने फिर पीछा कर लिया और वह तेज़ी के साथ पैर बढ़ाती हुई वहाँ से चली गई।

पुण्डरीकाक्ष विह्वल होकर वही खड़ा रहा।

एना वहाँ से चलकर सीधे बहन के पास पहुँची। इस बार भी वह बड़ी रुखाई के साथ ताना देती हुई बोली,—दीदी, जाओ न! तुम्हारे श्याम नागर आ गये हैं। केलि-कदम्ब की छाया में वे राधा-राधा की टेर लगाते हुए वंशी बजा रहे हैं। जाओ, अब अभिसार में निकल क्यों नही पड़ती हो।

यह बात समाप्त करते-करते एना की आँखें डबडबा आईं। वह उतावली के साथ अपने कमरे मे गई। बिस्तरे में मुँह छिपाकर वह लेट गई।

मेना ने इतने पर भी हाथ-पैर नहीं हिलाया। वह वैसी की वैसी लेटी रही। पता नहीं, किसने उस पर जादू चलाकर उसे पत्थर की बना दिया था। उसकी जीवनीशक्ति मानो उस जादू के कारण स्तम्भित हो गई थी।

इधर एना जब चली गई तब बेचारा पुण्डरीकाक्ष बरामदे में फिर टहलने लगा। परन्तु इस प्रकार अकेले टहलते-टहलते वह क्लान्त-सा हो उठा। क्षण-क्षण पर वह उत्सुकभाव से भीतर की ओर ताकता। कभी वह मेना के आगमन की प्रतीक्षा करता तो कभी सोचता कि अब एना आ रही है। परन्तु आज का प्रत्येक मुहूर्त्त उसे निराशा से व्याकुल होकर ही व्यतीत करना पड़ रहा था।

मनुष्य का स्वभाव है कि जब उसे किसी की प्रतीक्षा करनी पड़ती है तब एक-एक मिनट का समय बहुत कष्टकर हो जाता है, बिताये बीतता ही नहीं। पुण्डरीकाक्ष के सम्बन्ध में भी उस दिन यही बात थी। मिनट भर प्रतीक्षा करने के बाद उसे ऐसा जान पड़ता कि मैं युग-युगान्तर से तपस्या कर रहा हूँ, देवता को प्रसन्न करने के लिए, किन्तु देवता की कृपा प्राप्त करने का कोई लक्षण ही नहीं दिखाई पड़ रहा है।

टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष जब थक गया और उसे मेना तथा एना में से कोई भी आती न दिखाई पड़ी तब वह हताश होकर लौटने का विचार करने लगा। परन्तु ज़रा ही देर के बाद फिर उसके मन में यह बात आई कि जाने से पहले मेना या एना के पास किसी के द्वारा सूचना भेज देनी चाहिए। चुपचाप चोर की तरह भाग जाने में उसे लज्जा आ रही थी। इधर एना ने जिस प्रकार की भाव-भङ्गी दिखलाई थी और उसके प्रति जिस तरह का व्यवहार किया था, उसके कारण उसकी प्रतीक्षा करने में भी पुण्डरीकाक्ष को लज्जा आ रही थी। केवल लज्जा ही नहीं, बल्कि भय भी मालूम पड़ रहा था।

पुण्डरीकाक्ष सङ्कल्प-विकल्प में पड़ा ही था कि सौभाग्यवश एक ौकर वहाँ आ पहुँचा। वह बैठक में रक्खी हुई चीज़ों की गर्द भाड़-र उन्हें साफ करने आया था। पुण्डरीकाक्ष ने उस नौकर से कहा—ुम अपनी बड़ी दीदी रानी से जाकर कह आओ कि पुण्डरीकाक्ष ाबू आये हैं।

नौकर जिस काम के लिए आया था, उसे छोड़कर चला गया। ह मेना के कमरे के द्वार के पास गया और बाहर से ही पुकार कर हने लगा—दीदी रानी, सामने की संगमरमरवाली कोठी के ाबू साहब आये हैं।

नौकर लोग पुण्डरीकाक्ष को 'संगमरमरवाली कोठी के बाबू' हा करते थे। उसका टेढ़ा नाम उच्चारण करते उनसे नहीं ानता था।

अब मेना से स्थिर न रहा गया। वह मन ही मन कहने लगी—ौकर की मार्फ़त बुलावा आया है। इससे स्वामी होने का जो धिकार है, वह प्रमाणित हो गया। यह अधिकार प्रमाणित करने ही लिए तो हुक्म लेकर नौकर भेजा गया है न! ऐसी दशा में वहेलना करने से तो अब काम चलेगा नहीं। यह सोचकर मेना धीरे-ीरे उठी। कठपुतली जिस प्रकार तमाशा करनेवाले के हाथ के तागे सहारे पर चलती है, उसी प्रकार वह भी निर्जीव-सी होकर चली।

मेना जाकर पुण्डरीकाक्ष के सामने खड़ी हुई। उसके मुँह की ओर ाकते ही पुण्डरीकाक्ष का कलेजा धक-से हो उठा। वह सोचने लगा—या यह मेना है, या मेना की छाया है! अथवा किसी ने मेना की ङ्गमरमर की मूर्ति लाकर यहाँ खड़ी कर दी है? एक रात्रि में ही ना में कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है!

मेना स्वभाव से ही गम्भीर थी। वह बोलती बहुत कम थी। किन्तु उसके मुखमण्डल में इस प्रकार की एक देदीप्यमान आभा ी कि उसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता था। उसका मौन-भाव से

समीप बैठा रहना भी चित्त के लिए एक रसायन था। किन्तु इस एक गत रजनी में ही कौन-सा ऐसा रजनीचर आया कि वह सारा का सारा मेना का प्राण-रस पान कर गया, वह एकदम से शुष्क हो गई !

पुण्डरीकाक्ष हक्का-बक्का होकर पाषाण-प्रतिमा के समान खड़ा रहा। उसने मेना को बुला भेजा था इसलिए कि अपने सौभाग्य की सूचना देकर उसके प्रति हृदय में जो कृतज्ञता का भाव है, उसे व्यक्त करे, साथ ही अपनी हृदयेश्वरी के रूप में उसकी पूजा करे। आज वह कितने उत्साह, कितने आनन्द के साथ यहाँ आया था। किन्तु वह सब उसे भूल गया। मेना की मूर्ति देखते ही उसके हृदय में किसी प्रकार का भी उत्साह अवशिष्ट न रह गया। वह आकर पुण्डरीकाक्ष के सामने खड़ी थी, इधर पुण्डरीकाक्ष को इतना भी ध्यान न रहा कि वह कम-से-कम उससे शिष्टाचार की दो चार बातें तो करे।

मेना पुण्डरीकाक्ष के सामने आकर खड़ी थी उसी की आज्ञा से, और पुण्डरीकाक्ष ने उससे बात तक न की। वह केवल विह्वल दृष्टि से मेना के मुँह की ओर ताकता भर रह गया। उसकी इस प्रकार की अवस्था देखकर मेना का हृदय एक प्रकार की व्यग्रता का-सा अनुभव करने लगा। क्षण भर तक तो वह प्रतीक्षा करती खड़ी रही, बाद को बोली—आइए, कमरे में बैठिए।

पुण्डरीकाक्ष यदि मेना का कण्ठ-स्वर सुन पाता तो वह यह अनुभव करता कि इतने दिनों के बाद मेरे हाथ में स्वर्ग आ गया है। आनन्द के मारे वह अपने आपको भूल जाता, वह अनुभव करता कि मेरे कानों में स्वर्ग की किसी अप्सरा का स्वर पड़ रहा है। परन्तु आज पुण्डरीकाक्ष के कानों में जो कण्ठ-स्वर पड़ा है, वह क्या मेना का था? वह कण्ठ-स्वर सुनकर पुण्डरीकाक्ष ने तो यह अनुभव किया कि मानो कोई अशरीरी आत्मा परलोक से बातें

कर रही है और जिस स्वर में बातें कर रही है, वह तैरकर आँसुओं के सागर को पार करता हुआ आ रहा है !

मेना ने एक बार पुण्डरीकाक्ष को फिर बुलाया। परन्तु पुण्डरीकाक्ष पहले की ही तरह स्थिर भाव से मौन धारण किये खड़ा रहा। मेना मुहूर्त्त भर तो प्रतीक्षा करती रही, बाद को धीरे-धीरे बैठक में जाकर उसने प्रवेश किया और वहाँ अकेली ही स्थिर होकर खड़ी रही।

कुछ क्षण के बाद पुण्डरीकाक्ष की चेतनता लौट आई। उसने भी अपराधी के समान काँपते हुए चरणों से जाकर बैठक में प्रवेश किया। एक काफ़ी लम्बा-चौड़ा हाल था। उसके ठीक मध्य में खड़ी थी मेना। उसके सामने ही ज़रा-सा दूर हटकर पुण्डरीकाक्ष भी खड़ा हो गया। अब मेना को ही फिर मुँह खोलना पड़ा। उसने कहा—बैठिए।

इस बार पुण्डरीकाक्ष का भी कण्ठ खुल गया। उसने कहा—जी हाँ। पहले आप तो बैठिए। यह क्या प्रणयिनी या भावी पत्नी के साथ का प्रेम-सम्भाषण था? मुँह से निकल जाने के बाद यह बात स्वयं पुण्डरीकाक्ष के ही कानों को बेतुकी मालूम पड़ने लगी। इस प्रकार के प्रेम-सम्भाषण को मेना ने भी बेतुका ही समझा।

मेना बैठ गई। पुण्डरीकाक्ष भी दूर ही उदासीन भाव से बैठ गया। फिर कुछ क्षण तक दोनों मौन धारण किये रहे।

मेना दो-दो बार बोल चुकी थी। इससे पुण्डरीकाक्ष ने भी हृदय का समस्त साहस सञ्चित करके कह डाला—आपने अनुग्रह करके मेरे मर्म्मर मन्दिर की अधिष्ठात्रीदेवी बनना स्वीकार कर लिया है, यह मेरा परम सौभाग्य है, जन्मजन्मान्तर की तपस्या का परिपक्व फल है !

पुण्डरीकाक्ष ने निश्चय किया था कवित्व-मय शब्द 'मर्म-मन्दिर' का प्रयोग करने का, परन्तु वह शब्द मुँह से न निकाल सका, कह गया मर्म्मर-मन्दिर।

मेना की आकृति पर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। विवाह की बात छिड़ने पर अन्य नवयुवतियों के कपोलों तथा नेत्रों एवं ग्रीवा में जिस प्रकार की लज्जा की लालिमा दौड़ जाती है, उसका मेना में आभास तक न मिला। मुर्दे के-से प्रभाहीन मुख से उसने कहा—पिता जी ने मुझसे आपकी इच्छा का हाल बतलाया। स्वयं पिता जी की भी इच्छा....

मेना का कण्ठ-स्वर धीरे-धीरे शून्य में विलीन हो गया, अपना वाक्य वह समाप्त न कर सकी। किन्तु उसके मुँह से जितने शब्द निकल गये, उन्हीं के कारण पुण्डरीकाक्ष चिन्ता में पड़ गया। वह सोचने लगा—मेना ने मेरी इच्छा और अपने पिता की इच्छा की बात तो कही, लेकिन स्वयं अपनी इच्छा के सम्बन्ध में उसने कुछ नहीं कहा। आखिर उसकी इच्छा का भी तो पता लगना चाहिए? जो सबसे मुख्य है, उसी का कोई पता नहीं चलता!

अब पुण्डरीकाक्ष को याद आ गई एना की बात—भीष्म ने तो इच्छा-मृत्यु स्वीकार कर ही लिया है—। वह सोचने लगा—तो क्या इस विवाह के लिए स्वीकृति देना मेना की इच्छा-मृत्यु है! क्या पिता को ऋण-मुक्त कर देने के लिए उसका यह आत्म-बलिदान है! यह सम्भावना मन में आते ही पुण्डरीकाक्ष काँप उठा। वह सोचने लगा—मेना से यदि मैंने प्रेम किया है तो उसे सुखी करने के लिए! किन्तु इस प्रकार उसकी अनिच्छा होने पर भी उससे विवाह करके मैं उसे दुःख देने जा रहा हूँ! उसे बन्दिनी बनाने जा रहा हूँ!

मेना की इस बात के उत्तर में पुण्डरीकाक्ष बहुत-सी बातें कहने की इच्छा कर रहा था। परन्तु मुँह से वह एक भी बात न निकाल सका। वह मस्तक नीचा किये हुए चुपचाप बैठा रहा।

मेना पुण्डरीकाक्ष को चुप देखकर बड़ी ही अधीरता का अनुभव कर रही थी। इधर मेना की नीरवता के कारण पुण्डरीकाक्ष की भी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी। उस समय उन दोनों ही को किसी

तीसरे व्यक्ति के आगमन की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। वे इस बात की आकांक्षा कर रहे थे कि एना और राजाबहादुर में से यदि कोई आ जाता या कोई नौकर ही आ जाता और हम दोनों के बीच में जो इस प्रकार की बर्फ़ की चट्टान पड़ गई है, उसे पिघला जाता तो कितना अच्छा था। उन दोनों ही के बीच में आँसुओं के अगाध सागर की लवणाम्बु-राशि अपनी तरङ्गें आन्दोलित कर रही थी। उसके व्यवधान को दूर करके उन दोनों का एक दूसरे के समीप आना तभी सम्भव था जब कि कोई तीसरा व्यक्ति आकर उनके बीच में सेतु का काम करता।

मेना और पुण्डरीकाक्ष के सौभाग्य से उनकी रक्षा का साधन आकर उपस्थित हो गया, सीढ़ी पर राजाबहादुर के जूतों का शब्द सुनाई पड़ने लगा। उन दोनों ने भी अब बड़ी देर की व्याकुलता के बाद ज़रा-सी शान्ति की साँस ली।

और दिनों की अपेक्षा राजाबहादुर आज बहुत ज़ोर-ज़ोर से अपनी चट्टियों का शब्द करते हुए आ रहे थे। सीढ़ियों पर पैर भी वे बहुत धीरे-धीरे, ठहर-ठहर कर रख रहे थे। उनकी चट्टियों का जोड़ा मानो यह कहता हुआ आगे बढ़ रहा था—चक्कबाअबहु आमन्तेहि सहचरं, णं उअत्थिदा रअणी! अर्थात् हे चक्रवाक-बधू (चकई), अब तुम अपने सहचर के साथ का सम्भाषण समाप्त कर लो, क्योंकि अब रात्रि आकर उपस्थित हो गई।

राजाबहादुर ने यह समझ रक्खा था कि पुण्डरीकाक्ष को ऊपर गये काफ़ी समय हो चुका है। इस बीच में मेना से उसकी बहुत-सी बातें हो गई होंगी। बहुत सम्भव है कि उनकी इस मिलन-सभा में एना भी आकर सम्मिलित हो गई हो। यह सोचकर उन सबको एक स्थान पर बैठे देखकर सुखी होने के विचार से वे ऊपर आ रहे थे। राजाबहादुर के मन में यह बात भी आई कि सम्भव है इन प्रेमिक-प्रेमिका की मिलन-सभा में एना न सम्मिलित हुई हो।

इसलिए उन्हें सावधान करने के विचार से वे धीरे-धीरे और चट्टियाँ खटखटाते-खटखटाते सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे।

इधर मेना और पुण्डरीकाक्ष को राजाबहादुर का यह विलम्ब असह्य हो रहा था। वे सोचते थे कि वे किसी प्रकार कमरे में आते तो हमें शान्ति मिल जाती।

राजाबहादुर ने आकर कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने देखा तो मेना और पुण्डरीकाक्ष वहाँ एक दूसरे से बहुत दूर-दूर बैठे थे, एना वहाँ नहीं थी। कमरे में पैर रखते हुए उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—तुम लोग यहाँ अकेले ही हो! मैंने समझा कि शायद एना भी होगी! एना कहाँ है?

कन्या और भावी जामाता की बातचीत तथा प्रणय-निवेदन के अवसर पर आकर राजाबहादुर कुछ संकुचित-से हो उठे। वहाँ से निकल भागने का बहाना बनाने के लिए उन्होंने कहा—देखूँ, मैं ज़रा एना को बुला ले आऊँ!

राजाबहादुर चले गये। अब कमरे में फिर मेना और पुण्डरीकाक्ष अकेले ही रह गये। परन्तु इतने समय में पुण्डरीकाक्ष ने कुछ साहस संचित कर लिया था। इससे वह किसी प्रकार मेना से पूछ ही बैठा—क्या आपने अनिच्छा होने पर भी केवल मुझे सुखी करने तथा मेरे परम सौभाग्य की सूचना देने के विचार से अपनी स्वीकृति दी है?

मेना ने बड़ी कठिनाई से अपने हृदय की आह दबाकर कहा—पिता जी ने मेरी स्वीकृति चाही थी।

पुण्डरीकाक्ष इस उत्तर का क्या अर्थ लगाता? मेना पिता को अपनी स्वीकृति दे चुकी है और पुण्डरीकाक्ष को भी उसके पिता से इस स्वीकृति की सूचना मिल चुकी है, ऐसी दशा में मेना से इस प्रकार का प्रश्न क्यों किया जा रहा है, क्या इसी आशय से मेना ने पुण्डरीकाक्ष को इस प्रकार का उत्तर दिया, अथवा उसके उत्तर का यह आशय था कि पिता जी ने मेरी स्वीकृति चाही, इसलिए

उनकी इच्छा के समीप मैंने अपनी स्वाधीनता का बलिदान करके स्वीकृति दे दी ।

राजाबहादुर फिर चट्टियाँ फटफटाते हुए लौट आये और कमरे में प्रवेश करने से पहले ही उन्होंने यह कहना आरम्भ किया—एना के मस्तक में पीड़ा हो रही है, वह लेटी हुई है। देखा तो उसकी आँखें भी सुर्ख़ हो आई हैं। आज-कल बड़े ज़ोर का इन्फ़्लूएंज़ा फैल रहा है, कहीं उसे ज्वर न हो आवे !

पुण्डरीकाक्ष और मेना दोनों ही चुप रहे, किसी ने कोई बात नहीं कही। राजाबहादुर ने उनके इस प्रकार मौन धारण कर रखने का यह अर्थ लगाया कि अभी इनके विवाह की नई-नई बात है और यह पहला ही दिन है कि ये लोग इस प्रकार मिले हैं, इसलिए लज्जा प्रकट करना इनके लिए स्वाभाविक ही है। यह सोचकर वे वहीं बैठ गये। परन्तु वे भी यह नहीं खोज पाते थे कि किस तरह बात छेड़ी जाय ? ज़रा देर तक मौन रहने के बाद उन्होंने कहा—पुण्डरीकाक्ष, तुम अभी ही न चले जाना, जलपान कर लेना, तब जाना। मैं जलपान की सामग्री लाने को कह आता हूँ।

राजाबहादुर की इस बात में पुण्डरीकाक्ष ने अपनी रक्षा के लिए एक उपाय खोज निकाला। वह तो उसी समय वहाँ से चले जाने में अपने लिए परित्राण की बात समझता था। इससे उतावली के साथ उठकर वह खड़ा हो गया और कहने लगा—जी नहीं, अब मैं इस समय जलपान न कर सकूँगा। मुझे कुछ कार्य है, इससे इस समय आज्ञा दीजिए।

पुण्डरीकाक्ष ने नमस्कार किया। परन्तु उसने नमस्कार किसको किया, राजाबहादुर को या मेना को, यह ठीक-ठीक न मालूम पड़ सका।

पुण्डरीकाक्ष बिदा होकर चला। परन्तु और दिनों की तरह आज उसका हृदय आनन्द के सागर मे गोते नहीं लगा रहा था, बल्कि किसी एक प्रकार के अभाव एवं विषाद ने उसके समस्त हृदय को

आच्छादित कर रक्खा था। उसके इस विषाद और चिन्ता का प्रधान कारण था उसकी और मेना की आज की बैठक में एना की अनुपस्थिति। उसके हृदय में बार-बार यही प्रश्न उदय होता कि आज की हम लोगों की सभा में आकर एना ने उसे क्यों नहीं शोभा और जीवनदान किया ?

पुण्डरीकाक्ष की इस चिन्ता का एक बहुत बड़ा कारण था। पुण्डरीकाक्ष आज तक कभी सरल और स्वाभाविक ढङ्ग से मेना से बातें नहीं कर सका था। प्रतिदिन एना ही उन दोनों की मध्यस्थ होकर उनके मिलन में सहायता देती आई है। आज जो पुण्डरीकाक्ष इस प्रकार लज्जित और संकुचित हो उठा था उसका एकमात्र कारण एना का वहाँ न होना ही था। वह यदि होती तो बातचीत करके, हँसी-ठट्ठा करके, उन दोनों ही को उभाड़ रखती, किसी को ख़ामोश न होने देती। वास्तव में एना ही पुण्डरीकाक्ष की समस्त वाणी की अधिकारिणी थी, वही तो उसके हृदय की बातों को प्रकट करने-वाली थी, वही तो उसके प्रणय-निवेदन की प्रतिनिधि थी। आज उस एना की अनुपस्थिति के ही कारण तो इतना गड़बड़ हुआ। पुण्डरीकाक्ष में इतना दम कहाँ कि वह सोचकर समय की दो बातें मुँह से निकाल सके ! उसका तो मेना के सामने पहुँचते ही हृदय का द्वार बन्द हो जाता है, जिह्वा स्तम्भित हो जाती है। परन्तु एना आज आई क्यों नहीं ?

पुण्डरीकाक्ष बार-बार सोचकर भी एना के न आने का कोई कारण नहीं ढूँढ़ पाता था। राजाबहादुर ने जो यह कहा कि एना के मस्तक में पीड़ा हो रही है, यह बात भी उसके मन में जम न सकी। वह सोचने लगा कि जिस समय मैंने उसे देखा था, उस समय तो कोई ऐसा लक्षण मालूम नहीं पड़ रहा था कि एना को किसी प्रकार की पीड़ा हो रही है। तब क्या इतने ही ज़रा-से समय में उसे इस प्रकार की पीड़ा होने लगी कि वह यहाँ आने के लायक़ न रह सकी ?

पुण्डरीकाक्ष का ध्यान एना की आज की बातों पर भी गया। वह सोचने लगा––आज मुलाक़ात होने पर एना ने जो बातें की थीं, उनमें और दिन की बातों की तरह का हास्य का पुट तो था नहीं। आज की बातों में तो पुण्डरीकाक्ष को कुछ तिक्त और कटु रस का-सा स्वाद मिला था। इससे वह सोचने लगा कि एना के मिजाज़ में इस प्रकार की गर्मी क्यों आ गई ?

पुण्डरीकाक्ष आज मन पर एक बहुत बड़ा भार लादकर घर की ओर चला। नीचे उतरते ही उसने देखा तो एना बग़ीचे में संगमरमर के एक चबूतरे पर बैठी थी। चबूतरे के आस-पास जो पेड़-पौधे लगे हुए थे उनकी आड़ में अपने शरीर का बहुत-सा भाग वह छिपाये हुए थी। एना की ओर दृष्टि जाते ही पुण्डरीकाक्ष हँस पड़ा। उसके मन का बहुत-कुछ भार मानो अकस्मात् उतर-सा गया. उसका मन बहुत-कुछ हलका मालूम पड़ने लगा।

पुण्डरीकाक्ष हँसा, किन्तु एना ने अपना मुँह फेर लिया, यद्यपि वह पुण्डरीकाक्ष का जाना देखने के ही लिए शायद बग़ीचे में जाकर बैठी थी। पुण्डरीकाक्ष कहीं उसे न देख ले, इसी विचार से उसने अपने आपको पेड़-पौधों की आड़ में यथाशक्ति छिपाने का भी प्रयत्न किया था।

एना के इस प्रकार मुँह फेरने की ओर ध्यान न देकर पुण्डरीकाक्ष उसकी ओर बढ़ गया और उसके समीप जाकर बोला––कहो जी छोटी घरैतिन, आज इस अधम अधीन के प्रति इस प्रकार करुणाहीन क्यों हो ?

एना ने कर्कश स्वर में कहा––आज-कल कोई भी भला आदमी बहुविवाह नही करता। भला एक ही घरैतिन को सँभाल लीजिए, छोटी घरैतिन की आवश्यकता अब नहीं है।

एना एकाएक उठकर दमदमाती हुई वहाँ से चली गई। पुण्डरीकाक्ष कैसा विह्वल-सा हो गया। उसकी समझ में ही कोई बात न आई। गोरखधन्धे में पड़कर भटभटाता हुआ वह अपनी कोठी के उदर में जाकर छिप गया। ——

चौदहवाँ परिच्छेद

पुण्डरीकाक्ष के चित्त मे समस्त दिन खिन्नता बनी ही रही। उसे ऐसा मालूम पड़ रहा था कि मानो उसने कोई बहुत ही मूल्यवान् वस्तु खो दी है। उस दिन उसका जीवन बिलकुल ही शुष्क, बिलकुल ही नीरस हो पड़ा था। जैसे-जैसे साँझ का समय समीप आता जा रहा था, वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष का चित्त बहुत ही उद्विग्न होता जा रहा था। मेना को उसने प्राप्त कर लिया था, अब विवाह करके उसे घर में ले आना भर बाक़ी था। इस अवस्था में भी वह उसका चित्त प्रसन्न क्यों नहीं हो रहा था!

पुण्डरीकाक्ष को अभी-अभी मेना के पास जाना होगा। जाकर वह उससे कहेगा क्या? मेना के सामने पहुँचकर छेड़ने योग्य एक बात भी तो उसे खोजने पर नहीं मिल रही थी। पहले भी वह मेना के सामने सहमकर बैठा रहा करता था। परन्तु उन दिनों में एना की मध्यस्थता के कारण वह किसी प्रकार बातचीत कर ही लिया करता था। इधर एना के असहयोग के कारण वह चिन्ता में पड़ गया था। पुण्डरीकाक्ष सोच रहा था कि यदि कल की ही तरह एना आज भी न उपस्थित रह सकी तो?

मेना के प्रति पुण्डरीकाक्ष के हृदय में जो एक आदरपूर्ण आकर्षण था, जो एक श्रद्धा-समन्वित अनुराग था, वह इस प्रकार का था, जैसा कि भक्त के हृदय में देवता के प्रति सेवा का भाव होता है। उसके इस अनुराग को ठीक प्रेम की आसक्ति नहीं कहा जा सकता। एना को पुण्डरीकाक्ष मानवी के रूप में देखता था, उसे वह आत्मीय के रूप में देखता था। यही कारण था कि एना को सामने करके उससे पुण्डरीकाक्ष ने जो-जो बातें कही थीं, वे मेना के ही लिए कही थीं

किन्तु उन बातों को वह इसी कारण से मुँह से निकाल सकता था कि उसके सामने एना होती थी। मेना की ओर मुँह करके तो वह कभी उस तरह की बात कहने के लिए ज़बान तक नहीं हिला सकता था।

पुण्डरीकाक्ष मेना के साथ विवाह करने का प्रस्ताव कर बैठा। अब उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह उसके पास प्रतिदिन जाया करे। परन्तु जाने का समय जैसे-जैसे समीप आता जाता वैसे ही वैसे पता नहीं क्यों उसके हृदय में कम्पन उठता जाता था। जाऊँ या न जाऊँ, इसी चिन्ता के कारण द्विविधा में पड़ा हुआ पुण्डरीकाक्ष अपनी छत पर टहल रहा था। मेना की छत की ही ओर उसकी दृष्टि लगी हुई थी। वह उस समय इस बात के लिए लालायित था कि क्या ही अच्छा होता कि एना आ जाती और प्रसन्न-भाव से मुस्कराती हुई मुझे बुलाती।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय में जिस समय ये सब बातें आ रही थीं, ठीक उसी समय उसे राजाबहादुर का एक पत्र मिला। उस पत्र में लिखा था—प्रिय पुण्डरीकाक्ष, तुम साँझ को आओगे, यह आशा मुझे है। तो भी शायद किसी कारण से न आ सको, इससे आज आने के लिए मैं विशेष रूप से अनुरोध कर रहा हूँ। आज रात को तुम यहीं भोजन भी करना। यहाँ आने पर एक सज्जन से मैं तुम्हारा परिचय करा दूँगा। तुम अवश्य, अवश्य आना।

यह पत्र मिलते ही पुण्डरीकाक्ष की जान में जान आ गई। अब उसे राजाबहादुर के यहाँ जाने का साहस हो आया। अब यह बात नहीं रह गई कि वह केवल मेना के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ जा रहा है। अब तो उसे इस बात का सहारा हो गया कि मैं स्वेच्छा से नहीं, बल्कि राजाबहादुर के अनुरोध से जा रहा हूँ। वह भी इस-लिए कि एक नये आदमी से परिचय होगा और कम-से-कम उससे कुछ बातें करने का अवसर मिलेगा। मन को इस प्रकार की सान्त्वना

मिल जाने पर वह नीचे आया और चलने के लिए तैयारी करने लगा।

राजाबहादुर के यहाँ पहुँचकर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो सब लोग ऊपरवाली बैठक में जमे थे। राजाबहादुर थे, मेना थी, एना थी, भास्कर था और एक नया आदमी था। इस आदमी के शरीर का रंग बहुत साफ़ था। नाक कुछ ऊँची थी। गोला-सा चेहरा था। ख़ूब साफ़-सुथरा, बना-ठना। देखने से ही जान पड़ता था कि यह कोई बड़ा आदमी है। वेश-भूषा बड़े क़ायदे की और क़ीमती थी। परन्तु सिर से पैर तक सब कुछ विलायती ही था। यह सारा ठाट-बाट देखने पर जान पड़ता था कि मानो जन्मकाल से ही यह लक्ष्मी के उल्लू के परों की छाया में ही रहकर इतना बड़ा हुआ है।

पुण्डरीकाक्ष ने जिस समय बैठक में प्रवेश किया, उस समय वह अपरिचित व्यक्ति शिकार-सम्बन्धी बातें कर रहा था। किस प्रकार एक सिंह ने गोली खाकर उसके एक हाथी पर आक्रमण किया था और हाथी को उसने घायल कर दिया था, इसी बात का वर्णन विस्तार के साथ चल रहा था। पुण्डरीकाक्ष के पहुँचने पर उसने केवल एक दृष्टि से उसे देख लिया और फिर उसकी उपेक्षा करके वह अपनी बातों में लगा। परन्तु उस शिकार की कहानी में व्याघात डालते हुए राजा-बहादुर ने कहा—आओ, आओ, पुण्डरीकाक्ष! कन्दर्प, तुमसे इनका परिचय करा दूँ। ये हमारे पड़ोसी हैं। सामने जो संगमरमर की कोठी दिखाई पड़ रही है, वह इन्हीं की है। इनका नाम है श्रीमान् पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड और पुण्डरीकाक्ष, ये हैं कुमीरखाली के जमींदार श्रीमान् कन्दर्पकुमार राय चौधरी। ये बहुत बड़े शिकारी हैं। शिकार का ही हाल ये बतला रहे हैं।

पुण्डरीकाक्ष ने कन्दर्प को नमस्कार किया। कन्दर्प ने भी अनिच्छा से ही उसके नमस्कार का उत्तर दे दिया। पुण्डरीकाक्ष

की ओर उसने ज़रा-सा देखा तक नहीं। इस ज़रा-से व्यवधान के बाद अपना शिकार का हाल उसने फिर छेड़ दिया।

इस गप-शप में ज़रा-सा विराम होते ही एना झट बोल उठी—चलिए भास्कर बाबू, हम-तुम बग़ीचे में टहल आवें। साँझ का समय है, घर के भीतर घुसकर बैठा रहना अच्छा नहीं मालूम पड़ता।

यह बात कहते ही कहते एना एकदम से उठ खड़ी हुई। भास्कर की ओर एक बार ताक दृष्टि के सङ्केत से ही उसने कमरे से अपने साथ में निकल पड़ने के लिए उसका आह्वान किया।

जिस दिन पुण्डरीकाक्ष को निमन्त्रण देकर भोजन कराया गया था, उस दिन भास्कर को निमन्त्रण देने में भूल हो गई थी। इससे उस दिन विशेष उपलक्ष्य में निमन्त्रित किये गये व्यक्ति के साथ भोजन करना उसने अस्वीकार कर दिया था, यद्यपि ऐसे वह प्रतिदिन ही राजाबहादुर के यहाँ भोजन किया करता था। उस दिन की भूल के कारण आज का निमन्त्रण भास्कर को बहुत पहले से दे दिया था। केवल इतना ही नहीं, बल्कि उसे भी बुलाकर इस सभा में बैठने को कहा गया था।

धनिकों की इस सभा में बैठने में भास्कर कुछ उद्विग्नता का-सा अनुभव कर रहा था। परन्तु फिर भी एक किनारे पर शान्त-भाव से आसन जमाये हुए वह कन्दर्पकुमार की लम्बी-चौड़ी बातें सुन रहा था। यहाँ से भागने का उसे कोई उपाय सूझता नहीं था। इससे उसने यह समझ लिया था कि विधाता ने आज का नौ-दस बजे तक का यह कर्मभोग ललाट में टाँक रक्खा है। परन्तु एना के इस प्रकार बुलाने से उसे छुटकारा मिल गया।

भास्कर इतने दिनों से राजाबहादुर के यहाँ रहता आया था, किन्तु आज पहला अवसर था जब कि एना ने स्वेच्छा से उससे बातें की थीं। आज तक मेना या एना ने कभी अपनी ओर से भास्कर से किसी प्रकार की बातचीत नही की। स्वयं भास्कर ने ही कार्यवश कई

बार मेना के पास जाकर उससे बातें की थीं, एना से बातें करने का उसे कभी कोई अवसर ही नहीं मिला। भास्कर ने इसके लिए प्रयत्न भी नहीं किया। वह सोचता था, कहीं कोई यह न समझ बैठे कि घर का नौकर होकर भी यह बराबरी करने का दावा करता है। परन्तु आज एना ने स्वयं उसे पुकारकर उससे बातें कीं, इससे भास्कर को बड़ा आश्चर्य, किन्तु साथ ही साथ कौतूहल भी हुआ। वह एना के साथ ही साथ उठ खड़ा हुआ।

राजाबहादुर ने जब यह देखा कि एना और भास्कर उठकर चले जा रहे हैं, तब वे कहने लगे—हाँ कन्दर्प, बग़ीचे में जाकर तुम लोग घूम-फिर आओ, तब तक मैं पूजा-आदि से निवृत्त हो लूँ।

कन्दर्प भी उठकर खड़ा हो गया। मेना की ओर सङ्केत करके उसने कहा—अच्छी बात है, चलो, बग़ीचे में ही ज़रा देर तक घूमा-फिरा जाय। इधर आज पूर्णिमा भी है।

मेना उस समय द्वैविध्य में पड़ी हुई थी। उठूँ या नहीं, उठकर जाऊँ भी तो किसके साथ जाऊँ, कन्दर्प के साथ या पुण्डरीकाक्ष के साथ, यह बात वह नहीं निर्णय कर पाती थी। इससे वह आना-कानी कर रही थी। परन्तु कन्दर्पकुमार तो किसी प्रकार का सङ्कोच करनेवाला था नहीं। अत्यन्त ही परिचित आत्मीय के समान मेना की पीठ पर हाथ रखते हुए उसने कहा—चलो, चलो, उठो न।

राजाबहादुर ने उस समय तक कन्दर्पकुमार से यह नहीं कहा था कि पुण्डरीकाक्ष के साथ मेना के विवाह की बात पक्की हो गई है। साथ ही पुण्डरीकाक्ष से भी वे यह न कह सके कि इस युवक के साथ मेना का विवाह बहुत दिन पहले ही एक प्रकार से स्थिर हो चुका था। इसका एक कारण तो यह था कि आज कन्दर्प-कुमार बिना किसी प्रकार की सूचना ही दिये आ पहुँचा था। उसकी बातचीत से कुछ इस प्रकार का भी आभास मिला कि वह यहाँ

कुछ दिन तक रहना चाहता हूँ। राजाबहादुर सोच रहे थे कि कन्दर्प के यहाँ कई दिनों तक रहने के कारण पता नहीं, उसका और मेना का सम्पर्क कैसा हो उठे। कन्दर्प को पहले से ही बात दी जा चुकी है, इससे सम्भव है कि मेना का और उसका प्रेम प्रगाढ़ हो गया हो। यदि ऐसी बात हुई तो पुण्डरीकाक्ष के साथ उसके विवाह की जो बातचीत हुई है, वह शायद भंग कर देनी पड़े। दूसरा कारण यह था कि पुण्डरीकाक्ष और मेना का विवाह स्थिर होते ही मेना और एना का चेहरा ही न जाने कैसा हो गया? इस सम्बन्ध में उन दोनों बहनों का मनोभाव क्या है, यह बात भली भाँति जाने बिना राजा बहादुर पूर्णरूप से कुछ स्थिर करना उचित नहीं समझते थे।

ऐसी भयङ्कर चिन्ता के समय वृद्ध राजाबहादुर को एकाएक पत्नी की याद आई। वे सोचने लगा कि इस अवसर पर यदि इन कन्याओं की माता जीवित होतीं तो वे आसानी से इनका मनोभाव जान लेतीं। पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर के जो दस्तावेज़ लाकर उन्हें दिये थे, उनके कारण वे उसके आभारी अवश्य हो उठे थे, परन्तु उनके अन्तःकरण में बार बार यह बात आती कि मेना का विवाह कन्दर्प के ही साथ करना उचित और शोभाजनक होगा। कन्दर्प की चोटी के सिरे से लेकर पैर के नाखून के सिरे तक बराबर कुलीनता के लक्षण भरे पड़े हैं। मेना-जैसी कन्या के उपयुक्त वर वही है, पुण्डरीकाक्ष नहीं। बात यह है कि नारी जाति की मर्य्यादा तथा महत्त्व के लिए जितनी बातें आवश्यक है, वे सभी मेना में भरी पड़ी हैं। ऐसी आदर्श कन्या के लिए कुलशील-सम्पन्न वर भी तो चाहिए। पुण्डरीकाक्ष एकाएक धनवान् हो उठा है अवश्य, किन्तु उसकी देह और मन पर लक्ष्मी के तेज का रंग अभी तक अच्छी तरह से चढ़ा नहीं।

कन्दर्प ने मेना की पीठ पर हाथ रखकर जब उससे चलने का तकाज़ा किया तब मेना ने एक बार जिज्ञासामयी दृष्टि से पिता की ओर देखा। उसे इस प्रकार ताकती देखकर राजाबहादुर

ने कहा——हाँ मेना, जाती क्यों नहीं हो ? तुम लोग जाओ, ज़रा-सा घूम-फिर आओ।

पिता की ओर से दृष्टि हटाते ही मेना ने पुण्डरीकाक्ष की ओर ताककर देखा। वह उस समय अपनी मछली की-सी आँखों से करुण-भाव से उसी की ओर ताकता हुआ बैठा था। उसकी दृष्टि में किसी प्रकार का रोष या आकांक्षा का भाव नहीं था, यद्यपि मेना उस समय उसकी वाग्दत्ता वधू थी और उस पर अकस्मात् किसी दूसरे आदमी को दखल जमाते देखकर उसका क्रुद्ध होना तथा मेना को स्वयं अपने साथ ले जाने का आग्रह प्रदर्शित करना पुण्डरीकाक्ष के लिए स्वाभाविक था।

मेना पत्थर की मूर्ति के समान जड़-सड़ होकर उठी और कन्दर्प के साथ-साथ कमरे से निकलकर चली गई। परन्तु अभी तक पुण्डरीकाक्ष का आसन नहीं डिगा। सबके चले जाने पर भी जब वह वहाँ का वहीं जमा रहा तब राजाबहादुर ने कहा——पुण्डरीकाक्ष, जाओ न, तुम भी इन लोगों के साथ घूम-फिर आओ।

पुण्डरीकाक्ष अब उठकर चला। परन्तु उन लोगों के साथ जाने में उसे न तो किसी प्रकार का उत्साह था और न उसके हृदय में इस बात के लिए किसी प्रकार का आग्रह था। वह यह भी नहीं अनुभव कर रहा था कि मुझे इनमें से किसी के साथ जाने का किसी प्रकार का अधिकार है। वह तो राजाबहादुर के कहने से इस प्रकार उठकर चला, मानो कोई समझदार और ज्ञाकारी बालक अपने किसी बड़े की आज्ञा का पालन कर रहा हो।

पुण्डरीकाक्ष जब कमरे से निकलकर बाहर आया तब वहाँ कोई था नहीं, सब लोग बग़ीचे में चले गये थे। पुण्डरीकाक्ष के हृदय में इस बात की प्रबल इच्छा हो रही थी कि बिना किसी से कुछ कहे-सुने चुपचाप यहाँ से चला जाऊँ और अपनी कोठी की आड़ में छिप रहूँ। परन्तु इस प्रकार चुपचाप भाग जाने का साहस उसमें नहीं

था। बड़े ही सङ्कोच के साथ धीरे-धीरे ऊपर-से उतरकर वह बग़ीचे में गया। उसके मन में बार-बार यही बात आती कि मुझे यहाँ आने का कोई अधिकार ही नहीं था। इतने बड़े आदमी के घर में पैर रखना भी मेरे जैसे आदमी के लिए अनधिकार चेष्टा है।

कोठी के पिछवाड़े एक बहुत ही बड़ा बग़ीचा था। छत्तीस बीघों में वह बग़ीचा फैला हुआ था। उसमें कितने रास्ते थे, कितने कुंज थे, कितने लता-गृह थे, कितने तरह-तरह के फलों के वृक्षों के बग़ीचे लगे हुए थे। ये सभी अलग अलग टुकड़ों में बँटे हुए थे। सारा बग़ीचा बहुत ही सुरुचि-पूर्ण ढंग से सजाया गया था।

बीच में तालाब था, जिसमें एक छोटी-सी नौका बँधी हुई थी। सफ़ेद, लाल और नीले रंग के उसमें कुमुद खिले थे। तालाब पर संग-मरमर का एक चबूतरा बँधा हुआ था। उस चबूतरे के एक बग़ल एक छोटी-सी अशोक-वाटिका थी। उस अशोक-वाटिका में दो ऐसे वृक्ष थे, जो एक-दूसरे से मिले हुए-से थे। उन दोनों वृक्षों में एक हिंडोला टँगा हुआ था। उस हिंडोले पर आ-आकर कभी-कभी लड़कियाँ झूलतीं और मनोविनोद किया करतीं। फूल और फल के बग़ीचे ऐसे कौशल से लगाये गये थे, कि बग़ीचा किसी भी ऋतु में फल-फूल से ख़ाली नहीं रहता था। ऋतु के अनुसार तरह-तरह के फूल और तरह-तरह के फल उस बग़ीचे को सुशोभित और समृद्धिशाली कर रखते थे।

बग़ीचे में प्रवेश करते ही पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि मैना और कन्दर्प एक ओर चले जा रहे हैं। एना और भास्कर टहलते-टहलते पुण्डरीकाक्ष की ही ओर आ रहे थे। परन्तु एना ने जब देखा कि पुण्डरीकाक्ष ठेल-कर एक किनारे कर दिया गया है और गोल से बिछुड़ा हुआ वह अकेला ही टहल रहा है तब वह हँसी। एना को इस प्रकार हँसती देखकर पुण्डरीकाक्ष का मन बिलकुल ही टूट गया।

पुण्डरीकाक्ष के समीप आते ही एना झटपट दूसरी ओर घूम गई

और उसे सुनाते हुए ऊँची आवाज़ से कहने लगी——चलिए भास्कर बाबू, हमतुम उस ओर चलकर टहलें, जिस ओर कोई नहीं है।

दो जोड़े पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि से परे होकर आड़ में चले गये। आज मानो एना विद्रोहिणी हो गई थी। उसने भास्कर का साथ किया था और शायद इसलिए किया था कि पुण्डरीकाक्ष अपने-आपको तिरस्कृत समझे। पुण्डरीकाक्ष यद्यपि बहुत सीधा और छल-प्रपञ्च-रहित आदमी था, परन्तु यह बात उसे भी समझने को बाक़ी न रह सकी।

पुण्डरीकाक्ष ने चोर की तरह एक लतागृह में प्रवेश किया। उसी में वह छिपा हुआ बैठा रहा। बैठने के ही लिए ख़ूब गढ़कर लगे हुए एक पत्थर पर बैठे-बैठे वह सोचने लगा——इस मण्डली के अनुकूल मैं अपने आपको किसी प्रकार भी नहीं बना पाता हूँ। पहले-पहल जब मैं इन लोगों के सम्पर्क में आया हूँ तब तो मुझे इस प्रकार का बेतुकापन, इस प्रकार की असङ्गति नहीं मालूम पड़ रही थी। कहाँ का कौन-सा ऐसा पुर्ज़ा यहाँ आकर बिगड़ गया कि मेरा इंजन यहाँ एकाएक रुक गया। जो विधाता मेरे सौभाग्य को इतनी दूर ढोकर उठा ले आये, वे अब घाट के बिलकुल समीप लाकर भरी हुई नौका क्यों डुबाना चाहते हैं? सभी लोग बड़ी सरलता के साथ मेना और एना से मिलते-जुलते हैं, उनसे बातें करते हैं। यहाँ तक कि घर का नौकर भास्कर भी उनका साथी और समकक्ष बन बैठा है। तब भला मुझे ही क्यों उनके दल में स्थान नहीं मिल सका? मैं क्यों इस तरह गोल के बाहर निकाल दिया गया हूँ?

बेचारे पुण्डरीकाक्ष ने अपने भाग्य-फल पर विचार करते-करते वहाँ कितने क्षण व्यतीत कर दिये, इसका उसे ध्यान नहीं था। एकाएक उस कुंज में आदमी के प्रवेश करने की आहट मिलने के कारण उसकी चेतनता लौट आई। उसने देखा तो मेना और कन्दर्प थे।

पुण्डरीकाक्ष जिस पत्थर के आसन पर बैठा हुआ था, वह लताओं की आड़ में था और घनी पत्तियों के कारण बिलकुल ढका हुआ

था। इससे मेना और कन्दर्प उसे देख नहीं सके। ऐसे एकान्त स्थान में किसी तीसरे व्यक्ति के भी होने की सम्भावना है, इसकी कल्पना भी उन दोनों के हृदय में नहीं उदित हो पाई। इधर इस युगल-मूर्ति के आविर्भाव के कारण पुण्डरीकाक्ष बहुत ही उद्विग्नता का अनुभव करने लगा। परन्तु इस विचार से कि कहीं मेरे उठकर यहाँ से चलने का उद्योग करने पर इन लोगों के एकान्त मिलन में व्याघात पड़ेगा, उसे अपनी सारी उद्विग्नता मन की मन में ही छिपा रखनी पड़ी। इच्छा न होने पर भी वह हाथ-पाँव समेटे हुए निश्चल-भाव से वहीं बैठा रहा। पुण्डरीकाक्ष यह भी सोच रहा था कि दो युवक-युवतियों का एकान्त मिलन देखना उचित नहीं है, परन्तु उसे कोई ऐसा मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा था, जिससे होकर वह निकल भागे।

पुण्डरीकाक्ष ने सोचा कि इस समय यदि मैं यहाँ से चलता हूँ तो इन लोगों को यह मालूम हो जायगा कि मैंने इनका एकान्त में आना देख लिया है। इससे शायद मेना को लज्जित होना पड़े। इसके सिवा इन लोगों में किस प्रकार का सम्पर्क है और मेना का स्वभाव कैसा है, यह बात जानने का अवसर जब अनायास आ गया है, तब इसे ही क्यों हाथ से जाने दूँ?

उस कुञ्ज में पुण्डरीकाक्ष स्थिर होकर शान्त भाव से बैठा ही रहा। उसके कानों में अब मेना और कन्दर्प के शब्द पहुँचने लगे। कन्दर्प कह रहा था,—मेना, मेरी इच्छा है कि अब इसी श्रावण में विवाह करके मैं तुम्हें अपने यहाँ ले चलूँ। हमारे-तुम्हारे विवाह का निश्चय हुए कितने दिन हो गये। तुमने जो यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि बी० ए० पास किये बिना मैं विवाह ही न करूँगी, इसी कारण हम दोनों के मिलन में विलम्ब हो रहा है। इस अनावश्यक विलम्ब के कारण हम दोनों का जीवन कितना निस्सार, कितना विड-म्बनामय है! इस बार तो तुम बी० ए० पास कर ही लोगी, फिर

विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ? इस श्रावण में ही हम लोगों का विवाह हो जाय। ठीक है न ?

मेना ने गम्भीर भाव से कहा—यह मैं कुछ नहीं जानती हूँ, पिता जी ही इस बात का उत्तर दे सकते हैं। आपको जो कुछ कहना हो, वह पिता जी से कहिए।

जान पड़ा कि कन्दर्प ने मेना का हाथ पकड़ लिया। पुण्डरीकाक्ष वृक्ष की आड़ में होने के कारण देख नहीं सका, परन्तु उसने सुना ज़रूर। मेना कह रही थी कि मेरा हाथ छोड़ दीजिए, हाथ न पकड़िए। कन्दर्प ने कोमल स्वर में कहा—अब भी तुम मेरे प्रति इस प्रकार निष्करुण क्यों हो ? मेरा नाम है कन्दर्प। किन्तु मैं कन्दर्प के वाण से बिलकुल जर्ज्जरित हो उठा हूँ। मुझे एक चुम्बन दो।

मेना ने कठोर स्वर में कहा—आह, छोड़िए। आप यह क्या कर रहे हैं। आपके मुख से मदिरा की गन्ध आ रही है। आपने मदिरा-पान किया है।

पुण्डरीकाक्ष को यह जान पड़ा कि शायद कन्दर्प मेना का चुम्बन करने का प्रयत्न कर रहा है। बैठे ही बैठे उसके शरीर से तर-तर पसीना चूने लगा।

पुण्डरीकाक्ष को ऐसा मालूम पड़ा कि कन्दर्प अपने इस प्रयत्न में बाधा पाकर कहने लगा—तुम्हारे अधरों में जो सुधा भरी पड़ी है, उसे प्राप्त न कर सकने के ही कारण तो मुझे मदिरा-पान करना पड़ता है। अधरसुधा का पान करने देने में तुम इस प्रकार की कृपणता क्यों कर रही हो ? दो दिन के बाद तो हमारा-तुम्हारा विवाह हो ही जायगा। ऐसी दशा में दो दिन बाद जो बात होनेवाली है, वह यदि दो दिन पहले ही हो जाय तो उसमें क्या हानि है ? इससे तो तुम्हारा सतीत्व नष्ट होने का है नहीं ! इतना कहकर कन्दर्प हो हो करके हँस पड़ा। उसके साथ ही एक धक्कम-धक्के की आवाज़ पुण्डरीकाक्ष के कानों में पहुँची।

जन्मकाल से दरिद्रता के ही बीच में पुण्डरीकाक्ष का पालन-पोषण हुआ था। छुटपन से ही वह देखता आ रहा था कि अधिकांश लोग उसे तुच्छ समझकर उसके सम्पर्क से दूर ही दूर रहते आये हैं। पिता की देखादेखी वह स्वयं भी सबको समान दृष्टि से देखता और सभी का सम्मान करता आया है। डर के मारे किसी के पास फटकने या मस्तक उठाकर किसी की बराबरी करने का साहस उसने कभी नहीं किया। बाद को पुण्डरीकाक्ष ने जब नौकरी करनी शुरू की तब भी एक साधारण-सा क्लर्क होने के कारण सबसे दब-दबकर ही वह रहा करता था, उस समय भी वह कभी इतना साहस नहीं कर सका कि सीधी निगाह से किसी से बातचीत कर सके। सभी की घुड़कियाँ खाते हुए सभी की आज्ञा का पालन करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा है। इससे उसके हृदय में यह बात भली भाँति जम गई थी कि मैं सभी से तुच्छ, सभी से हीन हूँ।

पुण्डरीकाक्ष के हृदय में अपने सम्बन्ध में जो इस प्रकार की भावना बद्धमूल हो गई थी, उसके कारण उसमें किसी प्रकार की तत्परता उत्पन्न ही नहीं हो पाई। उसमें न तो कभी इस प्रकार की भावना उत्पन्न हो पाई कि जब मन में किसी प्रकार का कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हो तब झटपट वह उसे कर चले और न उसे इसी बात का अभ्यास था कि आवश्यकता के समय कार्य्याकार्य का निर्णय करके अपनी कार्यपद्धति तुरन्त स्थिर कर ले। स्वतन्त्र इच्छा से किसी प्रकार का कार्य करने का तो उसका कभी का अभ्यास ही नहीं था।

पुण्डरीकाक्ष को इस बात का पूर्णरूप से ज्ञान हो गया था कि मेना के आपत्ति करने पर भी कन्दर्पकुमार उससे छेड़छाड़ कर रहा है और वह उस पर आक्रमण करने का उद्योग कर रहा है। परन्तु अपनी स्वाभाविक भीरुता के कारण वह तत्काल यह नहीं स्थिर कर सका कि ऐसी परिस्थिति में मेरा कर्त्तव्य क्या है? पुण्डरीकाक्ष ने जब कन्दर्प को देखा था, तभी से उसकी

चाल-ढाल और हर बात में उसका उपेक्षा का भाव देखकर वह उसके सामने कुण्ठित हो गया था। उसने यह समझ लिया था कि यह एक बड़ा आदमी है। इसका हर जगह बहुत बड़ा सम्मान है। इसके सामने मेरी गणना क्या है ? इस कारण मेना और कन्दर्प में धक्कम-धक्का होने का शब्द सुनकर भी पुण्डरीकाक्ष यह नहीं स्थिर कर सका कि इस परिस्थिति में मेरा कर्त्तव्य क्या है ? मैं उठूँ या न उठूँ, इसी सोच-विचार में वह पड़ा था, इतने में मेना का तीक्ष्ण स्वर सुनाई पड़ा—भास्कर बाबू, क्या आप इस बदमाश शराबी के हाथ से मुझे बचा सकते हैं ?

एना उस समय बग़ीचे से निकल गई थी। जब उसने पुण्डरीकाक्ष को दल से पृथक् होकर अकेले झुंड से पृथक् कर दिये गये पशु की तरह टहलते हुए देखा था तब निष्ठुर-भाव से हँसकर उसे झेंपाती हुई भास्कर को लिये हुए दूसरी ओर चली गई थी। परन्तु पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि के अन्तराल में जाते ही अपनी कृत्रिम हँसी को वह स्थायी न रख सकी। एकाएक अत्यन्त ही गम्भीर होकर उसने भास्कर से कहा—भास्कर बाबू, मुझे क्षमा कीजिए। अब टहलने को मेरा जी नहीं चाहता है। मैं घर लौटी जा रही हूँ। इतना कहकर वह दनदनाती हुई कोठी की ओर रवाना हुई। तब भास्कर ने कहा—क्या मैं आपको कोठी पहुँचा आऊँ ?

उसके उत्तर में भास्कर की ओर बिना देखे ही चलते-चलते एना ने कहा—जी नहीं, धन्यवाद। पहुँचाने की आवश्यकता नहीं है।

एना जब चली गई, तब भास्कर सोचने लगा कि आज कौन-सी ऐसी बात थी कि एना ने मुझसे अपने साथ चलने का अनुरोध किया, बाद को एकाएक साथ छोड़कर चली भी गई। जाते समय वह इतना भी नहीं सहन कर सकी कि मैं उसके साथ कोठी तक जाऊँ। बात कुछ भास्कर की समझ में न आई। तब ज़रा-सा मुस्कराता हुआ मन ही मन वह अग्रलिखित श्लोक की आवृत्ति करने लगा—

स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः !

भास्कर को बग़ीचे में टहलने की कोई विशेष इच्छा नहीं थी। इसके सिवा एना जब चली गई तब टहलने के लिए उसका कोई साथी भी नहीं रह गया। इससे उसने भी कोठी की ओर लौटने का निश्चय किया। परन्तु एना जिस ओर को गई थी, भास्कर उसकी विपरीत दिशा की ओर वेग से पैर बढ़ाता हुआ चला। एना कहीं यह सन्देह न कर बैठे कि भास्कर मेरा अनुसरण कर रहा है, इस आशङ्का से वह घूमकर स्थान की ओर जाने लगा।

उस समय तक रात्रि हो चली थी। पूर्णिमा का दिन था। परन्तु आकाश पर ज़रा-ज़रा मेघ होने के कारण चन्द्रमा का पूर्ण प्रकाश नहीं फैल पाया था। तो भी मेघ के पतले-से आवरण को भेदकर धुँधली-सी ज्योत्स्ना पृथ्वी पर फैल गई थी। इस कारण बग़ीचे का अन्धकार पतला होकर उस तरल प्रकाश में मिल गया था और उसने एक अपूर्व शोभा धारण कर ली थी। उसी प्रकाश में लताकुञ्ज में आने-जाने के लिए जो ज़रा-सा अन्तर छोड़ दिया गया था, उसी से होकर मेना की दृष्टि भास्कर तक पहुँच गई थी उसने भास्कर को जाते देख लिया। तभी उसने उसे पुकारकर कहा—भास्कर बाबू, क्या आप इस बदमाश शराबी के हाथ से मेरी रक्षा कर सकते हैं ?

एकाएक उसका नाम लेकर किसी के पुकारने की आवाज़ सुनकर भास्कर ठमककर खड़ा हो गया। लता-कुञ्ज की ओर कान लगाकर जब वह ध्यानपूर्वक सुनने लगा तब एक पटका-पटकी की आवाज़ उसके कान में आई, परन्तु वह कुछ देख न सका। तब वह एक साँस में दौड़ता हुआ जाकर कुञ्ज में घुस गया।

भास्कर के दौड़कर आने की आहट पाते ही कन्दर्प ने मेना को छोड़ दिया और वह हटकर अलग खड़ा हुआ। इधर पुण्डरीकाक्ष ने जब मेना की भास्कर को पुकारने की आवाज़ सुनी तब उसके

भी मन में आया कि उठकर दौड़ूं, परन्तु मन की बात मन ही में रह गई, वह उठ न सका।

भास्कर ने समीप जाकर देखा तो मेना की चोटी ढीली होकर अस्त-व्यस्त हो गई थी। उसकी साड़ी भी ठिकाने से नहीं रह गई थी। कन्दर्प के आक्रमण से बच जाने पर हाँफती-हाँफती वह मस्तक पर साड़ी खींच रही थी।

लता-कुञ्ज में पहुँचकर भास्कर ने कुछ कहा नहीं। परन्तु उसके पहुँचते ही कन्दर्प क्रोध से गरज उठा--दूर हो सूअर, भाग यहाँ से।

कन्दर्प अपना ज़मींदाराना रोब दिखाने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु उसकी यह बात समाप्त भी न हो पाई कि भास्कर का एक ज़ोर का घूँसा जाकर उसके मुँह पर पड़ा और वह चक्कर खाते-खाते दो हाथ की दूरी पर चला गया। वहाँ फूलों के पौधे और टब होने के कारण कन्दर्प भूमि पर नहीं गिरने पाया; उनसे टकराकर किसी प्रकार उसने अपने पैर सँभाल लिये। परन्तु भास्कर के घूँसे का जो मधुर स्वाद उसने प्राप्त किया था, उसके कारण मुँह से और कोई बात न निकालकर मार खाये हुए कुत्ते की तरह दुम दबाये लता-गृह से निकलकर वह चला गया। ज़रा-सा दूर निकल जाने पर कन्दर्प चिल्लाकर यह भी कह गया कि गुंडा लगाकर तेरी खोपड़ी फोड़वा कर न छोड़ी तब कहना। इसका बदला मैं लेकर रहूँगा।

कन्दर्प के मुँह पर आ-आकर कितनी ही भद्दी-भद्दी गालियाँ ज़बान खोलने के लिए उसे व्यग्र करने लगीं, किन्तु उनमें से एक को भी बाहर निकालकर भास्कर के कानों तक पहुँचा देने का साहस उससे न हो सका।

कन्दर्प के चले जाने पर भास्कर ने मेना से कहा--क्या मैं आपको पहुँचा दूँ ?

मेना ने कहा--आप ज़रा-सा बाहर चलकर खड़े हो जाइए, मैं ठीक से कपड़े पहनकर आती हूँ।

भास्कर कुञ्ज से बाहर निकल गया। परन्तु पुण्डरीकाक्ष उस समय भी अपने को सबसे छिपाये बैठा था। हाय, हाय, अब वह क्या करे? कहीं यह समझकर कि यहाँ कोई नहीं है, मेना अपने कपड़े एकदम से खोल न डाले? यह बात मन में आते ही पुण्डरीकाक्ष ने आँखें मूँद लीं, और वह अन्धा बनकर बैठा रहा।

मेना के साड़ी और जम्पर ठीक से सँभालकर बाहर आते ही भास्कर ने कहा—आपसे बहुत दिनों से एक बात कहने की इच्छा थी, किन्तु कहने का साहस नही कर सका। बात मुँह पर आ-आकर रह जाती थी। आज साहस करके उसे कह ही डालना चाहता हूँ। आप यदि आज्ञा दें, तो कहूँ।

मेना घर की ओर रवाना हो चुकी थी, परन्तु भास्कर की यह बात सुनते ही वह ठमककर खड़ी हो गई। कुछ आश्चर्य में आकर उसने कहा—कहिए।

भास्कर ने कहा—मुझे यह मालूम था कि आप कन्दर्प की वाग्दत्ता वधू हैं, इससे मैंने इतने दिनों तक अपने मन की अभिलाषा मन ही में दबा रक्खी थी, उसे प्रकट नहीं कर सका। परन्तु आज की इस घटना से मै जहाँ तक समझता हूँ, अब आप इस आदमी की पत्नी होना न स्वीकार करेंगी। ऐसी दशा मे यदि आप मुझे ग्रहण करें तो मेरा—

मेना एकाएक क्रोध में आ गई। कर्कश और तिरस्कारपूर्ण स्वर में वह बोल उठी—लोभी कहीं के! क्या आप समझते हैं कि उस लम्पट के हाथ से आपने जो मुझे बचा लिया है, उसके कारण मुझसे कृतज्ञता का मूल्य वसूल कर लेंगे? इतने दिनों तक आपकी यह इच्छा कहाँ गई थी? अब आपको शायद मालूम हो गया है कि पुण्डरीकाक्ष बाबू ने पिता जी का सारा ऋण चुका कर उनकी ज़मींदारी उन्हें वापस करा दी है। इससे अब आप भी आये हैं उस ज़मींदारी का आधा हिस्सा प्राप्त करने के लोभ से मुझे कृतार्थ करने!

यह बात कल आप क्यों नहीं कह सके ? यदि कल कहे होते तो मैं बहुत ही प्रसन्नता के साथ आपकी बात स्वीकार कर लेती, मुझे रुपयों के पीछे आत्म-विक्रय न करना पड़ता।

भास्कर को मानो किसी ने एकाएक इतने जोर की ठोकर मारी कि उसकी चेतना ही लुप्त हो गई। मुहूर्त्तभर वह निस्तब्ध भाव से खड़ा रहा। बाद को धीर और गम्भीर स्वर से उसने कहा—मैं नहीं जानता था कि पुण्डरीकाक्ष बाबू ने आपके पिता का ऋण चुका कर बदले में आपको प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। इसके सिवा यदि मुझे धन का लोभ होता तो मैं अपने पिता की ज़मींदारी छोड़कर आप लोगों की दासता करने क्यों आता ? मेरी यह धारणा थी कि आप मुझसे प्रेम करती हैं। मेरे हृदय में भी आपके प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था। इसी कारण यह अनुचित दुःस्साहस प्रकट कर बैठा हूँ। क्षमा कीजिए, अब मैं जहाँ तक हो सकेगा, शीघ्र ही आपके यहाँ से चला जाऊँगा। प्रयत्न मुझे केवल इस बात का करना है कि आपके पिता के मन में किसी प्रकार का सन्देह न उत्पन्न हो सके। मैंने यह जो मूर्खता की है, इसका पता कभी और किसी को न चल सकेगा।

और कोई बात न कहकर तेज़ी से पैर बढ़ाता हुआ भास्कर वहाँ से चला गया। मेना को घर तक पहुँचा देने की प्रतीक्षा अब वह न कर सका।

भास्कर के हटते ही मेना वहीं भूमि पर बैठ गई और वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

पुण्डरीकाक्ष के कानों में मेना के अन्तिम वाक्य के थोड़े से शब्द गूँज रहे थे—यही बात कल क्यों नहीं कह सके ? उस दशा में मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती, मुझे रुपयों के लिए अपने आपको बेचना न पड़ता।

पुण्डरीकाक्ष बैठे-बैठे सोच रहा था—हाय ! हाय ! अन्धा हूँ मैं।

मैंने केवल अपने ही सुख की ओर दृष्टिपात किया है। जिसको मैंने यह समझ रक्खा है कि मैं इससे प्रेम करता हूँ, उसके सुख की ओर मैंने दृष्टि ही नहीं डाली। मैंने रुपयों के बल पर प्रेम ख़रीदने की दुराशा की थी। जो मेना कल प्रस्ताव करने पर इस दरिद्र भास्कर को परम आनन्द के साथ वरण कर लेती, उसे मैंने रुपयों के जाल में फँसा रखने की इच्छा की है! हाय रे मूढ़, हाय रे अनभिज्ञ! प्रेम क्या पैसा देकर ख़रीदने की चीज़ है!

पुण्डरीकाक्ष अपने आपको बार-बार धिक्कारने लगा। अब किस प्रकार यह अदृष्ट की गुत्थी सुलझाई जाय, यही उपाय वह सोचने लगा।

मेना जो भास्कर को इस प्रकार एकाएक तीखी बात कह बैठी थी, उसका कारण उसके प्रति उसका अभिमान ही था। किन्तु अपने इस व्यवहार के लिए वह मन ही मन बहुत दुःखी होने लगी। वह सोचने लगी कि क्यों इस प्रकार निष्ठुरतापूर्वक मैंने उनके ऊपर आघात किया।

मेना को भास्कर के प्रति जो इस प्रकार का अभिमान हुआ उसका भी कारण था। भास्कर के प्रति जो मन ही मन वह प्रेम करती आ रही थी, वह क्या भास्कर ने उसके नेत्रों की दृष्टि और मुख की प्रसन्नता देखकर अनुभव नहीं कर लिया था? प्रेम क्या इस आभास-इंगित के अतिरिक्त भी किसी अन्य, अधिक स्पष्ट, वस्तु की प्रतीक्षा करता है आत्म-प्रकाश के लिए? भास्कर ने बात यदि समझ ली थी, तो क्यों नहीं उसने इससे पहले ही मेना का उद्धार कर लिया? भास्कर का इस प्रकार निश्चेष्ट रहने का अर्थ है कि उसकी प्रेमनिष्ठा में शिथिलता थी, प्रियपात्र के प्रति जो उसका कर्तव्य है, उसका पालन करने में वह उपेक्षा कर रहा था। ऐसी दशा में उसके प्रति मेना के मन में अभिमान का भाव उदित होना स्वाभाविक ही था।

ज़रा देर तक रोकर मेना ने हृदय का भार कुछ हलका कर लिया,

तब अपने आपको सँभालकर उसने आँख-मुँह पोंछा और उठक खड़ी हुई। उठने पर चारों ओर ध्यानपूर्वक ताककर उसने दे लिया कि मुझे किसी ने रोते देखा तो नहीं ? अन्त में वह धीरे-धी घर की ओर चली।

बग़ीचे में जिस समय कन्दर्प के साथ मेना का और भास्कर के सा कन्दर्प तथा मेना का संघर्ष हो रहा था, उस समय एना लौटकर घर पहुँ गई थी। सबसे पहले पहुँचकर वह सीधे अपने कमरे में जा रही थी इतने में रास्ते में ही उससे पिता से मुलाक़ात हो गई। उसे देखते ह राजाबहादुर ने कहा—एना, तुम इतनी जल्दी क्यों लौट आई हो

एना ने बहुत संक्षेप में उत्तर दिया—यों ही।

राजाबहादुर ने कहा—एना, तुम ज़रा मेरे साथ तो आओ तुम मुझे कुछ बातें करनी हैं।

आगे-आगे राजाबहादुर अपने कमरे में गये, उनके पीछे-पी एना गई।

कमरे में बैठकर राजाबहादुर ने एना को अपने पास बुलाय और उससे कहा—बैठ एना, मेरे पास आकर बैठ। तुझे मुझसे ए बात बतलानी होगी। तेरी मा तो हैं नहीं। वे यदि होतीं, तो ही सब कुछ कहतीं-सुनतीं, जो कुछ करना होता करतीं। परन्तु अ तो मैं ही तेरे लिए मा हूँ, मैं ही बाप हूँ। मुझसे किसी प्रकार क लज्जा न कर बेटी। तेरी दीदी के विवाह के लिए तो एक बड़ अच्छी व्यवस्था हो गई है। अब तेरे लिए भी यदि कोई व्यवस्थ कर पाता, तो अपने जीवन के कार्य्यों की चिन्ता से मुझे मुक्ति मिल जाती, मैं निश्चिन्त होकर मर सकता।

क्षण भर के विराम के बाद राजाबहादुर फिर कहने लगे—मेन के साथ कन्दर्प के विवाह की बात बहुत दिनों से पक्की हो चुकी है किन्तु एकाएक पुण्डरीकाक्ष उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रक कर बैठा। उससे मैं अस्वीकार न कर सका। परन्तु आज कन्दर्प अप

आप ही आ पहुँचा। अभी तक मैंने उससे बतलाया नहीं कि मेना के साथ पुण्डरीकाक्ष का विवाह निश्चित हो चुका है।

ज़रा-सा खिन्नता का-सा भाव प्रकट करते हुए राजाबहादुर एक क्षण के लिए रुक गये। उसके बाद उन्होंने कन्दर्प की प्रशंसा करते हुए कहा—कन्दर्प बड़ा अच्छा लड़का है। उसे अपना दामाद बनाने की मेरी इच्छा बहुत दिनों से है। इस समय यदि तू कन्दर्प के साथ विवाह कर लेती तो सारा सङ्कट टल जाता। कन्दर्प को भी सर्वथा हताश होकर न लौटना पड़ता। उसे क्या मैं तेरा—

एना अभी तक पिता की बातें चुपचाप सुन रही थी। किन्तु उनकी यह अन्तिम बात समाप्त भी न हो पाई कि क्रोध से भभककर कर्कश स्वर में वह बोल उठी—बाबू जी, तुमने मुझे क्या समझ रक्खा है? क्या तुम समझते हो कि सभी बातों में मैं दीदी का उच्छिष्ट ग्रहण करके सन्तुष्ट रहूँगी? जब कभी तुम गहना-कपड़ा खरीदकर ले आये हो, तो पहले दीदी ने अच्छा-अच्छा छाँटकर ले लिया है, बाद को उनका जूठन मुझे मिला है। यही बात अब विवाह के सम्बन्ध में होने जा रही है। अच्छा वर पसन्द कर लिया दीदी ने, जिसको उन्होंने छाँट दिया उसे मैं अपने गले बाँधूँ? रहने दीजिए, रहने दीजिए, मुझे आपसे कुछ न चाहिए, कुछ न चाहिए।

यह बात कहते ही कहते एना आवेश में आकर रो पड़ी। वह उठकर वहाँ से चली जा रही थी कि पिता ने उसे स्नेहपूर्वक पकड़कर अपनी गोद में खींच लिया। एना पिता की गोद में मुँह छिपाये हुए सिसक-सिसकर रोने लगी। राजाबहादुर बहुत ही स्नेह के साथ और सान्त्वना के भाव से उसकी पीठ तथा मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

एना ने आज जो इस प्रकार का विद्रोह का भाव प्रदर्शित किया, उसके कारण राजाबहादुर को बड़ी चिन्ता हुई। वे मन ही मन कहने

लगे—एना, मेरी एना, उसने तो आज तक कभी इस प्रकार की उद्धता के साथ मुझसे बातें नहीं की, वह कभी और तो मेरे ऊपर यह लाञ्छन नहीं लगा सकी कि मैं हृदयहीन हूँ, पक्षपाती हूँ। फिर आज वह एकाएक क्यों इस प्रकार मेरा तिरस्कार कर बैठी? किस विषय में मुझसे कैसी त्रुटि हो गई है? किस प्रकार की भूल करके मैंने अनजान में इसके कोमल हृदय पर आघात किया है? हाय, हाय! मैं वृद्ध, बालिकाओं के मन का रहस्य तो समझ नही पाता। पुरुष होने के कारण स्त्रियों के हृदय का रहस्य जानने का तो कोई उपाय मेरे पास है नहीं! राजाबहादुर एक नितान्त ही असमर्थ व्यक्ति की तरह विह्वल हो उठे।

आज इस संकट के समय राजाबहादुर के हृदय में पत्नी-वियोग की व्यथा ताज़ी हो आई। वे अधीर भाव से सोचने लगे—इस समय वे क्यों नहीं है? मुझे अकेला छोड़कर स्वार्थपरायण की भाँति क्यों वे पहले ही चली गईं? वे यदि होतीं, तो स्वयं ही अपनी कन्याओं के हृदय की बात कुछ अनुमान से और कुल लक्षण से जानकर उचित व्यवस्था करतीं। यह सब सोचते-सोचते व्यग्र होकर राजाबहादुर मन ही मन पुकार उठे—अरे, तुम आज कहाँ हो, अपने स्वामी और कन्याओं को छोड़कर कहाँ चली गई हो?

कन्या को रुदन करती हुई देखकर वृद्ध को जो व्यथा हुई, और पत्नी-वियोग की तीव्र वेदना जो आज नई हो आई, उसके कारण वृद्ध के मन ही मन विलाप करने का बाह्य लक्षण प्रकट हुआ उनके नेत्रों से निकलकर बहती हुई अश्रुधारा के रूप में। पिता के नेत्रों का जल टप-टप गिरकर कन्या के मस्तक पर स्नेह-सान्त्वना तथा शुभाशीर्वाद की वर्षा करने लगा।

बड़ी देर तक रोने के बाद एना झटपट उठी और कमरे से निकलकर चली गई। वृद्ध पिता अकेले ही व्यथित अन्तःकरण से स्तब्ध हुए बैठे रहे।

इधर उस लता-गृह में अकेले ही बैठे-बैठे बहुत-सा समय व्यतीत र देने के बाद पुण्डरीकाक्ष ने जब देखा कि अब किसी की किसी कार की आहट नहीं मिल रही है, तब वह बहुत धीरे-धीरे दबे पाँव बाहर निकल आया। चोर की तरह एकान्त में छिपा रहकर जो सने इतनी घटनायें देख लीं, इतनी बातें सुन लीं, इसका कहीं सी को पता न चल जाय, इस भय से उसका हृदय थर-थर ांप रहा था।

पुण्डरीकाक्ष बहुत धीरे-धीरे चलकर राजाबहादुर की कोठी पर आया। ाज यहाँ तक पहुँचने में उसने बड़े क्लेश का अनुभव किया। उसके मन र उस समय बहुत ही अधिक भार था। अनुत्साह एवं उद्वेग के कारण ह अपना शरीर भी आगे की ओर नहीं बढ़ा पाता था। कोठी पर कर पुण्डरीकाक्ष ने देखा तो नीचे कोई नहीं था। इससे वह ऊपर ग एक-एक डग गिनते-गिनते सीढ़ी के मोड़-मोड़ पर रुकते-रुकते, पर किसी का किसी प्रकार का शब्द या आहट सुनने में आती या नहीं, यह सुनते-सुनते। ऊपर पहुँचने पर भी उसे कोई नहीं दिखाई ड़ा। बैठक सूनी थी, भाँय-भाँय कर रही थी। पुण्डरीकाक्ष को ससे बड़ी घबराहट मालूम पड़ने लगी। वह निमन्त्रित होकर इस र में आया था, किन्तु जिसके घर पर आया, उसका कहीं पता नहीं था। अब न तो उससे जाते बनता था और न रुकते बनता था। ब कोई पूछने ही वाला न हो तब निराश्रय होकर आशा लगाये े रहना कितना क्लेशकर है। विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब ित्त ठिकाने से न हो। पुण्डरीकाक्ष का मन यदि प्रसन्न होता, तो ायद उसके लिए यह प्रतीक्षा इस प्रकार कष्टकर न होती।

पुण्डरीकाक्ष धीरे-धीरे बरामदे में टहलने लगा। इस सिरे से ह उस सिरे पर जाता और उस सिरे से इस सिरे पर आता! स प्रकार सारे बरामदे की वह कई बार परिक्रमा कर गया। सके कानों को स्वयं अपने पैरों की आहट भी भयङ्कर मालूम पड़

रही थी। उसे ऐसा जान पड़ता कि इस प्रकार के पद-सञ्चारण के द्वारा मैं एक शोकार्तपुरी की शान्ति भंग करके अपराध कर रहा हूँ, इस प्रकार के एक भय ने उसके हृदय को अभिभूत कर रक्खा था।

बड़ी देर के बाद एक नौकर आया। चारों ओर घूमकर उसने देखा और फिर चला गया। उससे ज़रा देर बाद फिर एक नौकर आया। पासवाले कमरे में वह भोजन की व्यवस्था करने लगा। पुण्डरीकाक्ष उसी कमरे के सामने से होकर आ-जा रहा था। उसने गिनती की—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः आसन बिछाये गये। छः गिलासों में जल रक्खा गया। बाद को छः छोटी-छोटी तस्तरियाँ आईं। उनमें रक्खा था नमक, नीबू, नमक डालकर नीबू के रस में भिगोये हुए अदरख के टुकड़े तथा अन्य प्रकार की चटनी अचार आदि। हर एक आसन के पास धुला इस्त्री किया हुआ एक-एक अँगौछा रक्खा गया। छहों आसनों के पीछे छः बड़े-बड़े पीकदान रक्खे गये और दो सुराहियों में जल रक्खा गया। जल के पास एक-एक रिक़ाबी में सजाकर एक-एक नया साबुन, ज़रा-ज़रा-सा मैदा, ज़रा-ज़रा-सा बेसन और दो-दो करके रख दिये गये। एक बार आकर नौकर ने हर एक आसन के पास एक-एक पानदान में पान और मसाला रक्खा। यह सारा आयोजन क्रम-क्रम से हो रहा था, एक के बाद एक करके सब सामग्रियाँ सजाई जा रही थीं, और पुण्डरीकाक्ष देख-देखकर सोच रहा था— (१)

इसके बाद कई नौकर बहुत ही व्यस्त भाव से घूमने-फिरने लगे। बीच-बीच में वे सब एकत्र हो जाते और फिस-फिस करके न जाने क्या परामर्श करते। केवल एक बात पुण्डरीकाक्ष के कानों तक पहुँच सकी—तू ही क्यों नहीं जाता? जाकर महाराज से पूछ आ कि भोजन तैयार हो गया है। क्या परसा जाय?

पुण्डरीकाक्ष खाकर किसी प्रकार भाग पाता, तो उस बेचारे को जीवनदान मिलता। इससे उसने जब यह सुना कि खाने को

तैयार हो गया है, तब उसे कुछ धैर्य्य हुआ। वह सोचने लगा कि तब तो अब जल्द ही पिंड छूट जायगा।

राजाबहादुर के ख़ास ख़ानसामा ने पहले उनके कमरे के समीप जाकर बाहर से ही ज़रा-सा खाँसने की-सी आवाज़ की, बाद को और भी समीप जाकर वह कहने लगा—खाने को तैयार हो गया है। क्या इसी समय परसना होगा?

एना को अपने कमरे में बुलाकर राजाबहादुर जिस तरह बैठे थे, उसके चले जाने पर भी वे अकेले वैसे ही बैठे रह गये थे। अब खानसामा की बात सुनने पर उन्हें होश हो आया। सचेत होकर वे सीधे बैठ गये और पूछने लगे—क्या मेना तथा बाबू लोग लौटकर बग़ीचे से आ गये?

खानसामा ने कहा—हाँ, वे सब लौटकर आये हैं। राजाबहादुर ने कहा—तो परसने को कह दो, मैं आता हूँ।

राजाबहादुर उठे। आँख-मुँह धोकर वे ज़रा कुछ ताज़े हुए, तब कमरे से निकले। सारी कोठी उस समय मानो सूनी थी। कहीं से किसी प्रकार का शब्द या आहट नहीं आ रही थी। बिलकुल सन्नाटा था। मच्छड़ तक के भनकने की आवाज़ नहीं आ रही थी।

राजाबहादुर उतावली के साथ बैठक में गये। किन्तु वहाँ पैर रखते ही वे एकाएक रुककर खड़े हो गये। बैठक में कोई था ही नहीं। वे सोचने लगे कि वे लोग जब बैठक में नहीं हैं, तब कहाँ गये? बैठक से निकलकर वे बरामदे में आ गये। राजाबहादुर ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष भूत की तरह अकेला ही बरामदे भर में टहलते-टहलते पैरों से वहाँ की छत में गड्ढे कर डालना चाहता है।

राजाबहादुर अवाक् होकर खड़े-खड़े पुण्डरीकाक्ष की ओर ताकते रहे। बाद को टहलते-टहलते उसके समीप जाकर उन्होंने पूछा—और सब लोग कहाँ गये? तुम अकेले ही हो!

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—पता नहीं, कौन कहाँ है?

राजाबहादुर ने पूछा—तुम यहाँ कितनी देर से अकेले हो?

पुण्डरीकाक्ष ने एक रूखी हँसी हँसकर कहा—घड़ी तो मैंने देखी नहीं। पाँच मिनट भी हो सकता है और पाँच घंटा भी हो सकता है। क्योंकि जब मुझे कभी अकेले प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तब थोड़ा-सा भी समय बहुत लम्बा मालूम पड़ता है।

पुण्डरीकाक्ष की इस बात से राजाबहादुर बहुत ही लज्जित हो उठे। लज्जित वे यह सोचकर हुए कि मेरी असावधानी के कारण निमन्त्रित व्यक्ति तथा भावी जामाता को अकेले उपेक्षित अवस्था में पड़ा रहना पड़ा। साथ ही साथ राजाबहादुर को आश्चर्य भी हुआ। वे सोचने लगे कि मेना यहाँ क्यों नहीं है? या भास्कर और कन्दर्प ही यहाँ क्यों नहीं आये?

राजाबहादुर ने एकाएक ज़ोर का कोलाहल आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा—अरे, कौन-कौन यहाँ हो। दौड़कर बिटिया रानी लोगों को तो बुला ले आओ। भास्कर बाबू को ख़बर दो कि खाने को तैयार है, कन्दर्प बाबू को भी ख़बर दो। दौड़ो, जल्दी करो। एक-एक आदमी एक-एक तरफ दौड़ पड़ो। जल्दी से सबको बुला ले आओ, सारा भोजन ठंडा होकर पानी हुआ जा रहा है! कैसी इन लोगों की बुद्धि है! घर में निमन्त्रण है और सब लोग अपने-अपने कमरे में घुसे बैठे हैं।

राजाबहादुर की यह तिरस्कार-वाणी दूसरों की ओर सङ्केत करके कही जाने पर भी स्वयं उन्हीं के ऊपर बरस रही थी।

वहाँ सबसे पहले पहुँचा भास्कर। उसे देखते ही राजाबहादुर ने कहा—मामला क्या है भाई, तुम लोग सबके सब अभी तक कहाँ थे? पुण्डरीकाक्ष आकर कब से अकेले खड़े हैं।

उसके बाद आई मेना। राजाबहादुर ने उसे भी मीठी फटकार बतानी शुरू की। उन्होंने कहा—यह कैसी बात है मेना? तुम्हारी मा तो अब है नहीं, पिता भी वृद्ध हैं। घर का सारा भार तुम्हें अपने

ऊपर तो लेना ही पड़ेगा। अब क्या लज्जा करके भागती फिरने मे काम चलेगा बेटी! पुण्डरीकाक्ष और कन्दर्प है, तो इसमें लज्जा करने की कौन-सी बात है। उन्हें देखो-सुनो.....

मेना के मुँह की ओर दृष्टि जाते ही राजाबहादुर चौंक पड़े। तो क्या दो-तीन दिन हुआ मेना मर गई है और वह अब भूत-योनि मे आकर उठकर घूम-फिर रही है! भयभीत-से होकर उन्होंने पूछा—मेना, क्या तुम्हारी तबीअत ख़राब है?

मेना ने कोमल स्वर मे धीरे से कहा—नहीं बाबू जी, मुझे कुछ तो नहीं हुआ है।

राजाबहादुर ने कहा—कहीं आँख से देखकर मा-बाप से भी बच्चों के शरीर का हाल समझने मे भूल हो सकती है रे? कुछ न कुछ तेरी तबीअत अवश्य ख़राब है। समझ-बूझकर खाना-पीना बिटिया। आज-कल चारों ओर इस तरह का इन्फ़्लूएंजा फैला हुआ है!

कन्दर्प आया। उसका भी मुख वर्षा के आरम्भकाल के नभ-स्तल के समान काला हुआ था। बहुत ही निष्प्रभ हो उठा था वह।

राजाबहादुर ने अब यह निश्चित रूप से समझ लिया कि कहीं कोई न कोई उलझन अवश्य पड़ गई है, और उसकी गाँठ पर मेरी वृद्धावस्था की क्षीण दृष्टि नहीं पहुँच पाती। इससे उन्होंने कन्दर्प से उसकी इस उदासी का कारण नहीं पूछा। उन्होंने नोकरों को पुकारते हुए कहा—चलो, कौन है यहाँ? महराज को परोसने को कहो, बड़ी रात हो गई है।

राजाबहादुर उस समय सोच रहे थे कि यदि कहीं एकान्त में जाकर विचार करूँ तो बहुत सम्भव है इस गुत्थी का सूत्र मुझे मिल जाय।

कन्दर्प के बाद एना आई। एना का भी मुँह गम्भीर था। उसकी आकृति पर भी प्रसन्नता की रेखा नहीं दिखाई पड़ रही थी। परन्तु उसकी खिन्नता का कारण राजाबहादुर को बहुत कुछ ज्ञात था,

इसलिए उसकी ओर अब उन्होंने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया।

एना यहाँ आने पर भी सबसे दूर ही दूर रही। बरामदे की रेलिंग पकड़े बाहर की ओर मुँह किये हुए वह खड़ी रही।

राजाबहादुर ने सबको बुलाते हुए कहा—आओ तुम लोग कमरे में बैठो, तब भोजन परोसा जाय।

पहले-पहल राजाबहादुर कमरे में गये, बाद को मेना गई। कन्दर्प द्वार के पास खड़ा ही रह गया और जिस कमरे में भोजन परोसा जा रहा था, भास्कर उसी में घुस गया। मानो वह देखने के लिए गया कि ठीक-ठीक परोसा जा रहा है या नहीं।

पुण्डरीकाक्ष धीरे-धीरे जाकर एना के पास खड़ा हुआ। एना ने उसकी ओर दृष्टि फेरकर देखा तक नहीं। पुण्डरीकाक्ष ने कहा—चन्द्रमा का कैसा सुन्दर प्रकाश फैला हुआ है?

एना का कण्ठ इस पर खुला नहीं। पुण्डरीकाक्ष ने फिर कहा—भोजन कर लेने के बाद क्या ज़रा-सा चन्द्रमा के इस प्रकाश में टहलने चलोगी?

"चन्द्रमा का प्रकाश मुझे अच्छा नहीं लगता।" यह बात एना ने ऊँचे स्वर में तो नहीं कही, किन्तु कही रूखेपन के ही साथ।

पुण्डरीकाक्ष ने फिर पूछा—यदि चन्द्रमा का प्रकाश आपको अच्छा नहीं लगता तो और क्या अच्छा लगता है?

एना ने पहले की ही तरह उत्तर दिया—जाइए, मुझे कुछ नहीं अच्छा लगता।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—आपको मेरी ज़रा-सी सहायता करनी होगी।

एना ने कहा—मुझे अवकाश नहीं है।

पुण्डरीकाक्ष ने बहुत ही विनम्रतापूर्ण और प्रार्थनामय स्वर में कहा—आपके अतिरिक्त और तो कोई मेरी सहायता करनेवाला है नहीं। आप मेरी ओर से अपनी दीदी से केवल एक बात कह दें।

एना ने कहा---आप स्वयं क्यों नहीं जाकर अपनी बात कहते ? मैंने आपकी बात कहने का ठेका तो लिया नहीं है !

पुण्डरीकाक्ष ने कहा---ठेका लेने की बात नहीं है, यह मेरे ऊपर आपकी दया होगी। मुझे स्वयं उनसे कोई बात कहने का साहस नहीं होता।

एना ने बहुत ही तीखे व्यङ्ग्य के साथ कहा---तो क्या आपकी सोहाग-रात में भी मैं जाऊँगी आपके प्रेम-निवेदन की प्रतिनिधि होकर ? न, यह मुझसे न होगा।

इतना कहकर एना वहाँ से हट गई।

बेचारा पुण्डरीकाक्ष वहीं रेलिंग के ऊपर शरीर का भार लादे हुए खड़े-खड़े बाहर की ओर अपनी लम्बी साँसें फेंकने लगा।

राजाबहादुर ने भीतर से पुकारा---पुण्डरीकाक्ष, एना, भोजन परोसा जा चुका है।

सब लोग खाने के कमरे में गये।

दो पंक्तियों में छः आसन लगाये गये थे। एक ओर राजाबहादुर जाकर बैठे। और दूसरी ओर उतावली के साथ जाकर मेना उनके पासवाले आसन पर खड़ी हो गई। राजाबहादुर ने पुकारा---कन्दर्प, तुम इस ओर आकर बैठो, और तुम तीन आदमी सामने बैठ जाओ।

कन्दर्प जाकर मेना के पासवाले आसन पर जम गया। एना एक किनारे के आसन पर खड़ी होकर बीचवाले आसन की ओर इशारा करती हुई कहने लगी---भास्कर बाबू, इस आसन पर आप आ जाइए।

पुण्डरीकाक्ष ने यह अनुभव कर लिया कि एना मेरे पास नहीं बैठना चाहती। इससे वह दूसरी बग़लवाले आसन पर बैठ गया। अब एना और पुण्डरीकाक्ष के बीच में एक आसन ख़ाली रह गया, उस पर बैठने जा रहा था भास्कर। इतने में कन्दर्प एकाएक आसन से उठकर खड़ा हो गया और कहने लगा---तो क्या इस गुमाश्ते के साथ बैठकर

मुझे भोजन करना होगा? कुमीरखाली का जमींदार किसी के घर के गुमाश्ते के साथ बैठकर भोजन नहीं करता।

कन्दर्प की बात सुनते ही प्रत्यञ्चा टूटे हुए धनुष के समान भास्कर उठकर खड़ा हो गया। उसने गर्वपूर्ण स्वर में कहा——मैं भी किसी शराबी, दुराचारी के साथ बैठकर भोजन नहीं करता। और तुम्हें जो यह ज़मींदारी का घमंड है, यदि मैं चाहूँ तो कुमीर-खाली-जैसी तीन-तीन जमींदारियाँ आज ख़रीद सकता हूँ।

यह बात कहकर भास्कर कमरे से बाहर निकल गया। उसके साथ ही साथ कन्दर्प भी दूसरे दरवाज़े से कमरे से निकल आया।

मिनट भर तक कमरे में किसी की साँस चलने की आहट नहीं मिली। मानो कमरे में बिजली गिरी और वहाँ जितने भी प्राणी थे, वे सब वैसे के वैसे ही प्राण-त्याग कर गये। मिनट भर के बाद राजाबहादुर ने नौकर को बुलाया। उससे उन्होंने कहा——महराज को बुलाकर कहो कि कन्दर्प बाबू तथा भास्कर बाबू का भोजन उठाकर ले जायँ और उनके कमरों में दे आवें। तुम जाकर उनके लिए वही आसन आदि रख दो।

रसोइया आकर दोनों ही आदमियों की थालियाँ उठा ले गया। राजाबहादुर ने इस घटना के सम्बन्ध में किसी से किसी प्रकार की बातचीत नहीं की। पुण्डरीकाक्ष और मेना का मुख देखकर ही राजाबहादुर ने यह समझ लिया था कि यह घटना इन लोगों को एकदम से आकस्मिक नहीं मालूम पड़ रही है। इसके सिवा इन दोनों के मुख पर जो विभिन्न प्रकार के भावों की छाप पड़ी हुई थी, उससे भी स्पष्ट ज्ञात होता था कि कोई न कोई दुर्घटना पहले ही हो चुकी है, यह घटना केवल उसका उपसंहार भर है।

निमन्त्रण-सभा उठे हुए बाज़ार की तरह निमेष भर में श्रीहीन हो उठी। पुण्डरीकाक्ष और एना के बीच से आसन और थाली उठा ली गई, इससे यह बिलकुल साफ़-साफ़ मालूम पड़ने लगा कि ये दोनों आदमी दूर-दूर बैठे हैं।

भगवान् को अर्पित करके राजाबहादुर ने भोजन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने और किसी से भी खाने के लिए अनुरोध नहीं किया। उनके मुँह में ग्रास डालते ही प्रत्येक व्यक्ति का हाथ थाली में पहुँच गया। परन्तु किसके मुख में कितना आहार गया, यह बतलाना कठिन है। किसी ने किसी से न तो और खाने के लिए आग्रह किया और न किसी ने किसी से पूछा कि और किसी वस्तु की आवश्यकता है या नहीं। शिष्टाचार-प्रदर्शन के लिए किसी ने इस आयोजन के सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार की वाहवाही भी नही दी। किसी के मुँह से यह बात भी नही निकली कि बहुत अच्छी सामग्री बन पड़ी है, मैंने खूब खाया।

यह निमन्त्रण-सभा विवाह के प्रारम्भ में नान्दीमुख श्राद्ध के रूप में की गई थी, किन्तु इसने ऐसा रूप धारण कर लिया कि मानो किसी के श्राद्ध के उपलक्ष में यह भोज दिया गया है। जरा देर के ही बाद सब लोग हाथ समेटकर बैठ गये। नौकरों ने जब देखा कि इन्होंने खाना बन्द कर दिया है, तब वे लोग हाथ धुलाने लगे।

हाथ-मुँह धो लेने और कुल्लियाँ कर लेने के बाद ही पुण्डरीकाक्ष ने कहा—तो अब मुझे आज्ञा दीजिए।

राजाबहादुर ने कहा—जाओगे? अच्छी बात है, रात भी बहुत अधिक हो गई है।

पुण्डरीकाक्ष ने वहाँ से भागकर जान बचाई। जो लोग घर के थे, वे भी चुपचाप सीधे अपने-अपने कमरे में ही गये। वह रात इस घर और उस घर के दो आदमियों ने जागकर ही बिताई, चिन्ता के मारे उन्हें नींद ही नहीं आ सकी। इन छः आदमियों के भाग्य-सूत्र में एक साथ ही बड़ी करारी गुत्थी पड़ गई थी, यह किस प्रकार सुलझाई जा सकती है, यही इनमें से हर एक की चिन्ता का कारण था। यद्यपि यह कारण किसी को पूर्णरूप से ज्ञात था, किसी को आंशिक रूप से ज्ञात था और किसी को बिलकुल ही नहीं ज्ञात था।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ग्रन्थि-मोचन

दूसरे दिन सबेरे उठते ही राजाबहादुर ने मेना को बुलाया। उन्होंने उससे कहा—मेना, इस समय ऐसे सङ्कट का विषय आ गया है कि मेरी बुद्धि ही नहीं काम दे रही है। सम्भव है कि कन्दर्प आज ही तुम्हारे साथ विवाह करने की बात छेड़े। उसे तो आज कुछ न कुछ निश्चित रूप से बतलाना ही पड़ेगा। मैंने उससे यह कहने का विच किया था कि तुम्हारा विवाह अन्यत्र करने के लिए मैं बाध्य हुआ हूँ। तुम्हारे बदले में एना के साथ उसका विवाह कर दिया जा सकता है! मेरी जहाँ तक धारणा है, इस प्रकार के परिवर्तन में कन्दर्प को किसी प्रकार की आपत्ति न होती। बात यह है कि वह मेरी ज़मींदारी का आधा भाग चाहता है, विशेषतः वे सब गाँव, जो उसके तालुक़े से मिले हुए हैं। वे गाँव तुम्हारे साथ विवाह करने पर भी उसे मिल सकते हैं, और वे ही एना के साथ विवाह करने पर भी मिल सकते हैं। इस कारण वह एना के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जाता। परन्तु मैंने जब एना की सम्मति जाननी चाही तब वह लगी फूट-फूट-कर रोने और आपत्ति प्रकट करने। उसने बड़े ज़ोर का विरोध प्रकट किया है। अब तुम क्या कहती हो? क्या तुम एना को ज़रा-सा समझा सकती हो?

मेना ने धीर और कोमल स्वर में कहा—वह आदमी मेना का स्वामी होने का पात्र नहीं है बाबू जी, वह मदिरा पान करता है। इसके अतिरिक्त ....

राजाबहादुर ने पूछा—इसके अतिरिक्त क्या?

मेना ने मस्तक नीचा किये हुए बहुत धीमे स्वर में कहा—वह दुराचारी है।

कन्या की इस बात से आश्चर्य में आकर राजाबहादुर ने कहा—यह बात तुम कह रही होगी भास्कर की बात सुनकर।

मेना ने पहले की ही तरह मृदु स्वर में कहा—नहीं, मुझे यह बात पहले ही मालूम हो गई थी।

राजाबहादुर ने मेना से और कुछ नहीं पूछा। उन्होंने उससे कहा—अच्छा, अब तुम जाओ।

मेना चली गई। तब राजाबहादुर ने भास्कर को बुलवाया। वह जब आया तब राजाबहादुर कुछ उदास-से हुए बैठे थे। उन्होंने उससे कहा—बैठो भास्कर, बैठो। जरा यह तो बतलाओ कि तुममें और कन्दर्प में जो झगड़ा हो गया, उसका कारण क्या है ?

हँसने का प्रयत्न करते हुए भास्कर ने कहा—कोई वैसा कारण तो मालूम नहीं पड़ता। या तो वह ज़मींदारी के रोब में आकर भड़क उठा होगा, या मदिरा के नशे की झोंक में रहा होगा।

राजाबहादुर ने पूछा—तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि यह मदिरा-पान करता है ?

भास्कर ने उत्तर दिया—कल उसके मुँह से मदिरा की गन्ध आ रही थी।

राजाबहादुर ने फिर पूछा—तुमने जो कन्दर्प पर दुश्चरित्र होने का आरोप किया है, उसका क्या कारण है ? उसके चरित्र के सम्बन्ध की बातें तुम्हें कैसे मालूम हुई ?

भास्कर के मुख पर झाँई पड़ गई। परन्तु इस प्रश्न को हँसी में उड़ा देने के विचार से उसने क्षण भर के बाद ही कहा—यह मेरा एक अनुमान है। या यों कहिए कि उसकी गाली के बदले में मैंने उसे भी गाली दे दी। जो मदिरा-पान करता है, वह यदि दुश्चरित्र नहीं है तो और क्या है ?

राजाबहादुर ने फिर पूछा--और तुमने उससे यह कहा है कि मैं यदि चाहूँ तो तुम्हारी कुमीरखाली की तरह की तीन ज़मीदारियाँ आज ही ख़रीद सकता हूँ, इसका क्या अर्थ है ?

भास्कर फिर हँस पड़ा। वह कहने लगा--यह भी एक कोरा दम्भ था। जिस तरह उसने गर्व की बात की उसी तरह मैंने भी सेर की जगह सवा सेर चढ़ा दिया। जो बातें अहङ्कार में कही जाती हैं, उनका भी कहीं कोई अर्थ होता है ?

राजाबहादुर ने समझ लिया कि भास्कर वास्तविक बात प्रकट नही करना चाहता। जो बात इतने दिनों तक वह छिपाता आया है, उसी की छाया कल क्रोध के बस में आकर उसने प्रकट कर दी। आज फिर उसे वह छिपाना चाहता है। किसी की कोई गुप्त बात सुनने का आग्रह करना उचित नहीं है, यह सोचकर उन्होंने भास्कर से और कोई प्रश्न नहीं किया। भास्कर भी राजाबहादुर को नमस्कार करके चला गया।

जरा ही देर के बाद राजाबहादुर के कमरे में आकर घुसा पुण्डरीकाक्ष। उसे देखते ही उन्होंने कहा--आओ पुण्डरीकाक्ष, बैठो।

पुण्डरीकाक्ष बैठ गया। राजाबहादुर उसकी ओर ताकने लगे। उसके मुख का भाव देखने से ही अनुमान होता था कि यह कुछ कहने आया है।

राजाबहादुर की दृष्टि का सामना पड़ते ही पुण्डरीकाक्ष संकुचित हो उठा। मस्तक नीचा किये हुए मृदु स्वर में वह कहने लगा--मैं आपसे एक बात कहने आया हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की ओर ताकते ही ताकते कौतूहल के साथ राजाबहादुर ने कहा--कौन-सी बात है ?

पुण्डरीकाक्ष बहुत ही नम्र भाव से कहने लगा--मुझसे एक भूल हो गई थी, उसी भूल को मैं सुधारने आया हूँ। पहले मैं यह जानता नहीं था कि मेनादेवी का किसी के लिए वाक्‌दान हो गया है। साथ

ही मुझे इस बात का भी ज्ञान नहीं था कि मन ही मन वे अन्य किसी से प्रेम करती हैं। इसी से मैं अपने मन के मोह में आकर भूल से उन्हें माँग बैठा। परन्तु मैं आपसे बारंबार निवेदन कर चुका हूँ कि आप जो मुझ पर कृपा करते हैं, मेरे प्रति जो स्नेह रखते है, उसके लिए मैंने जो तुच्छ भेंट अर्पण करने की इच्छा प्रकट की है, उसके सम्बन्ध में मेरे मन में किसी प्रकार की वणिक्-वृत्ति नही है। बदले में कसी प्रकार का लाभ उठाने की आशा से मैंने यह कार्य नही किया। मैं रुपये देकर आपकी कन्या को खरीदने की इच्छा करूँ, इस प्रकार की स्पर्द्धा मैं कभी नहीं कर सकता। उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा है, उनका मैं कभी अपमान नही कर सकता हूँ।

राजाबहादुर ने आश्चर्य में आकर पूछा--तुम यह बात कैसे कह रहे हो ?

पुण्डरीकाक्ष कहने लगा--जब मैंने मेनादेवी को माँगा है, तभी से उनके मुख की प्रसन्नता का अपहरण कर लिया है। उन्हें दुःखित देखकर उनकी बहन भी विषादयुक्त और व्यथित हो उठी हैं। मैंने पहले-पहल आपके यहाँ जिस आनन्द के घेरे में प्रवेश किया था, अपने असङ्गत और अज्ञानतापूर्ण लोभ के कारण मैं उस आनन्द-राज्य को खो बैठना चाहता हूँ। मेनादेवी के मन में यह बात आती होगी कि वे यदि मेरे साथ विवाह करने को न तैयार होंगी तो उनके पिता ऋण से मुक्त न हो सकेंगे, साथ ही ऋण से मुक्त हुए बिना उनकी चिन्ता न दूर हो सकेगी। परन्तु आप जानते हैं कि उनकी यह धारणा बिलकुल ग़लत है। मेरे साथ विवाह करने के सम्बन्ध में उनकी स्वीकृति या अस्वीकृति से आपके ऋण-मुक्त होने का कोई सम्पर्क ही नहीं है। वह तो बिलकुल स्वतन्त्र विषय है। यह बात आप उन्हे समझा दीजिएगा। यदि उनके मन में मेरे प्रति किसी प्रकार के बन्धन या बाध्यबाधकता का भाव है तो उससे मैं उन्हें प्रसन्नतापूर्वक पूर्णरूप से मुक्ति दे रहा हूँ। अब वे अपनी इच्छा के अनुसार किसी के साथ भी विवाह करके

सुखी हों। इससे मैं भी सुखी होऊँगा। मेनादेवी को पा जाने पर मुझे जितना सुख मिलता, उन्हें सुखी देखकर उससे कम सुख न मिलेगा। मैंने उनके साथ विवाह करने के लिए जो प्रार्थना की थी, उसे वापस ले रहा हूँ। जो वर उनके मन के अनुकूल हो, उसी को आप उन्हें सम्प्रदान कीजिए।

भौंह सिकोड़े हुए कुछ चिन्ता का-सा भाव व्यक्त करते-करते राजा-बहादुर ने पूछा—तुम ये सब बातें क्यों कह रहे हो? क्या मेना या एमा ने तुमसे कुछ कहा है?

पुण्डरीकाक्ष ने ज़ोर से मस्तक हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं। उन लोगों ने कुछ कहा नहीं। परन्तु संयोगवश मुझे यह बात मालूम हो गई है कि वे एक-मात्र पितृ-भक्ति की प्रेरणा से ही अपने आपको बलि के रूप में उत्सर्ग करने को उद्यत है। परन्तु मैंने यह भी जान लिया है कि आपने जिन्हें उनका वर निर्वाचित कर रक्खा है, वे कन्दर्प बाबू भी उनके लिए नितान्त ही अयोग्य हैं। जान पड़ता है कि मेनादेवी भास्कर बाबू को चाहती हैं। साथ ही भास्कर बाबू भी उनसे प्रेम करते हैं। इसके सिवा यह भी मालूम पड़ता है कि भास्कर बाबू किसी धनवान् के पुत्र हैं, किसी विशेष कारण से वे आपके आश्रय में आ गये हैं।

राजाबहादुर ने कन्दर्प की निन्दा पहले मेना से सुनी, बाद को भास्कर से। अब आकर पुण्डरीकाक्ष ने भी उसकी निन्दा की। इन तीनों ही व्यक्तियों ने उससे सावधान होने की सलाह दी। इससे राजा-बहादुर को इस बात का दृढ़ रूप से निश्चय हो गया कि कन्दर्प ने कम अवश्य कोई न कोई ऐसा आचरण किया है, जिससे इसके स्वभाव का हाल इन तीनों ही व्यक्तियों को मालूम हो गया। इस सम्बन्ध में अब उन्हें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया। परन्तु मेना भास्कर से और भास्कर मेना से प्रेम करते हैं? यह कैसे सम्भव है? वे दोनों एक मकान में रहते हैं, एक-दूसरे की देखा-सुनी भर होती है, उनमें से कभी

किसी को किसी से बातचीत करते या किसी प्रकार की घनिष्ठता प्रकट करते तो मैंने देखा नहीं ? यह संशय मन ही मे लिये हुए उन्होंने पुण्डरीकाक्ष से पूछा—भास्कर मैना से प्रेम करता है और मैना भी भास्कर से प्रेम करती है, यह बात क्या तुम्हें उन दोनों में से किसी ने बतलाई है ?

पुण्डरीकाक्ष को यद्यपि वास्तव में यह संवाद उन दोनों के ही मुख से ज्ञात हुआ था, परन्तु फिर भी उन्होंने उससे तो बतलाया नहीं था, इससे उसने अर्द्धसत्य और अर्द्धमिथ्या बात मस्तक हिलाते हुए कही—नहीं, नहीं। उन दोनों ने मुझसे कुछ नहीं कहा। मैं और तरह से जान पाया हूँ।

राजाबहादुर बड़े सङ्कट में पड़ गये। ये जितनी भी बातें कही गईं, वे सब उनकी समझ में ही नहीं आ रही थीं। उनके समक्ष यह सारा मामला किसी बहुत ही गूढ़ रहस्य से ढका हुआ था। वे सोचने लगे कि सभी लोग तो आ-आकर एक न एक नई बात कहते हैं, परन्तु कोई भी उस बात के समर्थन के लिए कोई कारण नहीं प्रदर्शित करता, कोई प्रमाण नहीं उपस्थित करना चाहता। चिन्तित भाव से उन्होंने फिर पूछा—तुमने किस तरह जान लिया कि भास्कर धनवान् वंश का लड़का है ? क्या उसने इस सम्बन्ध में तुमसे कुछ कहा था ?

पुण्डरीकाक्ष दो-दो बार भास्कर के ही मुँह से सुन चुका था कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही धनवान् हो सकता हूँ। परन्तु इस बात का भी आधा अंश छिपाते हुए उसने कहा—स्वतन्त्र रूप से मुझसे उन्होंने कुछ नहीं कहा। कल रात को तो उन्होंने हम सब लोगों के सामने ही कहा था कि यदि मैं चाहूँ तो जमींदारी खरीद सकता हूँ। इसी से मुझे अनुमान होता है कि वे अवश्य किसी धनवान् के घर के हैं।

राजाबहादुर ने पुण्डरीकाक्ष के मुख की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से ताकते हुए कहा—किन्तु सम्भव है कि कल की बात भास्कर की केवल कोरी डींग ही रही हो ?

पुण्डरीकाक्ष ने मुस्कराते हुए कहा——भास्कर बाबू को तो आप इतने दिनों से देखते आ रहे हैं। उनके व्यवहार में कितना संयम है ! कितने गम्भीर आदमी हैं वे ! ऐसी अवस्था में वे डींग हाँक सकते हैं, क्या आपको इस बात का विश्वास होता है ?

"हाँ, बात तो ठीक है। तब ?" क्षण भर तक सोच-विचार करने के बाद राजाबहादुर ने कहा——ये सारी बातें बतलाकर तुमने हमारे वास्तविक मित्र का काम किया है। मैं मेना और भास्कर का मनोभाव जानने के लिए पूर्णरूप से प्रयत्न करूँगा। पहले तो ध्यानपूर्वक उनका रग-ढंग देखकर वास्तविकता का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा, और यदि इस प्रकार सफलता न मिली तो उनसे पूछूँगा भी। परन्तु तुम्हें तो भैया, वे दस्तावेज़ वापस लेने ही होंगे। तुमने मेरा समस्त ऋण चुकाकर जिस सहृदयता का परिचय दिया है, वही तो मेरे लिए परम लाभ है। यदि तुम मेरे समस्त ऋण के एक-मात्र महाजन होकर रहो तो मुझसे कभी तकाज़ा न करोगे, मेरा कभी अपमान न करोगे और कभी अत्यन्त निष्करुण होकर हमें निःस्व करने का भी प्रयत्न न करोगे। मैं तुम्हारे कई प्रकार के ऋणों से बँधा हुआ हूँ, उनके साथ ही एक यह ऋण भी पड़ा रहे। यदि मैं चुकता कर सका तो अच्छा ही है, यदि मुझसे न हो सका तो मेरे बाद मेरी कन्यायें पिता का ऋण चुकाने की कोशिश करेंगी।

पुण्डरीकाक्ष का मुख बिलकुल ही सूख गया। उसने व्यथित स्वर में कहा——आप यदि ऐसा करते हैं, आप यदि वे दस्तावेज़ मुझे वापस देते हैं, तो ऐसे करने का अर्थ होगा मेनादेवी की धारणा को दृढ़ बनाना——अर्थात् मैंने उन्हें प्राप्त करने के ही लिए लोभ की वंशी फेंकी थी। परन्तु मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कह रहा हूँ कि ये दस्तावेज़ जो महाजनों के यहाँ से निकाल ले आया हूँ, वह केवल इसी मतलब से कि मेनादेवी और एनादेवी के पिता चिन्ता से मुक्त हो जायँ। इसके सिवा मेरा और कोई ऐसा अभिप्राय

नहीं था, जिसे मैंने मन में छिपा रक्खा हो। किसी प्रकार का अदला-बदला करने का विचार मन में लेकर मैं आप लोगों का अपमान करने नहीं आया।

राजाबहादुर ने जब देखा कि पुण्डरीकाक्ष मेरी इस बात से दुःखी हो रहा है, तब वे बहुत शीघ्र ही अपनी भूल का संशोधन करने का-सा भाव दिखलाते हुए कहने लगे—नहीं, नहीं, यह बात मैं इस मतलब से बिलकुल नही कह रहा हूँ। परन्तु प्रश्न यह है कि इतना बड़ा दान मैं ग्रहण कैसे करूँ? ज़रा तुम मेरे दृष्टिकोण से भी तो इस सम्बन्ध में विचार करके देखो।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अच्छा, यदि दान के बदले में ही दान लेने की बात हो तौ भी तो आप इसे स्वीकार कर सकते हैं। मैं जब कारागार में था तब मेरी निराश्रित बुआ की सहायता करके आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया था। उस उपकार के कारण कृतज्ञता का निदर्शन-स्वरूप यह जो साधारण-सा प्रत्युपकार मैं आपका करना चाहता हूँ, उसे यदि आप स्वीकार कर लेते तो मेरे ऊपर जो इतना बड़ा ऋण चढ़ा हुआ है, उससे छुटकारा पाने का अवसर मुझे किसी प्रकार मिल जाता।

राजाबहादुर ने हँसकर कहा—तुम्हारी सदाशयता से पार पाने का कोई उपाय नही है। अच्छी बात है, तब तुम मुझसे और कुछ ग्रहण करो। एना शायद तुमको मन ही मन चाहती है। इससे तुम एना को ग्रहण कर लो।

इस प्रस्ताव से पुण्डरीकाक्ष मन ही मन प्रसन्न हो उठना चाहता था। वह सोचने लगा कि इस प्रकार इस घर से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर मैं मेनादेवी का आत्मीय होकर रह सकूँगा। परन्तु हृदय के आनन्द और आग्रह का दमन करते हुए उसने कहा—नहीं, नहीं, बदले में कुछ लेकर अपनी कृतज्ञता की मर्यादा और माहात्म्य में बट्टा न लगाऊँगा। मैं और कुछ माँगने का साहस नहीं करता। मेरी प्रार्थना

के साथ जब रुपये का सम्पर्क जुड़ गया है तब मैं आपकी किसी भी कन्या को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करने से डरता हूँ।

पुण्डरीकाक्ष की यह बात सुनकर राजाबहादुर गम्भीर हो उठे। उन्होंने कहा—तो मुझे भी कुछ समय दो, मैं हर एक पहलू को सोच-विचारकर देख लूँ।

पुण्डरीकाक्ष उठा। राजाबहादुर को प्रणाम करके वह बिदा हो गया। वहाँ से चलकर वह गया भास्कर के पास। राजाबहादुर भी कमरे से उठकर अपनी कन्याओं के पास गये।

भास्कर ने जब पुण्डरीकाक्ष को अपने कमरे में प्रवेश करते देखा तब वह चकित हो गया। कुछ विरक्त भाव से ही उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए वह उठकर खड़ा हुआ, किन्तु मुँह से वह कुछ बोला नहीं।

पुण्डरीकाक्ष के मुख पर प्रसन्नता की रेखा विराजमान थी। मुस्कराते हुए उसने भास्कर का हाथ पकड़ लिया और कहने लगा—भाई, मैं अवस्था में तुमसे बड़ा हूँ, इससे मैं तुम कहकर पुकारता हूँ, उसके लिए बुरा न मानना। मैं अभी-अभी राजाबहादुर के पास से चला आ रहा हूँ। मैं बिना सोचे-विचारे एक बेतुका काम कर बैठा हूँ, इसके कारण कल रात से ही पश्चात्ताप के मारे व्याकुल हो रहा हूँ। अब मैं अपनी उस भूल को सुधारने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करूँगा। तुम्हें कृपा करके मेरी ज़रा-सी सहायता करनी पड़ेगी।

पुण्डरीकाक्ष की इन बातों का अर्थ भास्कर की समझ में न आ सका। इससे नीरव भाव से उसके मुँह की ओर वह ताकता रह गया। ज़रा ही देर के विराम के बाद पुण्डरीकाक्ष ने फिर कहना आरम्भ किया मैंने प्रेमादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था। वह प्रस्ताव मैं अभी वापस लिये आ रहा हूँ। इस प्रकार मैंने उन्हें इस बात के लिए स्वाधीन कर दिया है कि वे अपने अभिलषित वर का वरण कर सकें। अब मेरी आग्रहपूर्ण प्रार्थना है कि तुम उनके साथ विवाह कर लो।

इससे वे सुखी होंगी। तुम भी सुखी होओगे। तुम धनवान् कुल के लड़के हो। पता नहीं, किस कारण से दरिद्रता का वरण किये हो। सम्भव है कि अपने आपको दरिद्र समझकर तुम मेनादेवी के साथ विवाह करने में सङ्कोच का अनुभव करते होओ। परन्तु इसके लिए चिन्ता नहीं है। तुम उन्हें चढ़ाव देकर विवाह कर सकते हो। चढ़ाव में देने लायक कुछ वस्तुएँ मैं ले आया हूँ, वे तुम्हें लेनी होंगी।

पुण्डरीकाक्ष की ये बातें सुनकर भास्कर विस्मित हो उठा था। परन्तु उसे इतना भी अवसर न देकर कि वह अपना विस्मय दूर करके कुछ कह सके, पुण्डरीकाक्ष कमरे से निकल गया। सायबान में उसकी 'कार' खड़ी थी।, उसके पास ही उसके अर्दली और ड्योढ़ीदार खड़े थे। उन्हें उसने इशारे से बुलाया। उसके इशारा करते ही वे दोनों बड़े-बड़े सूटकेस लिये हुए पुण्डरीकाक्ष के पीछे-पीछे भास्कर के कमरे में गये।

पुण्डरीकाक्ष ने नौकरों से कहा कि ये सूटकेस यहीं रखकर तुम लोग चले जाओ।

नौकर लोग चले गये। पुण्डरीकाक्ष ने सूटकेसों को खोला। उनमें से उसने गहनों के कई केस निकाले, चाँदी-सोने के बर्तन-आदि निकाले और वह सब भास्कर के विस्मित नेत्रों के सामने रखकर कहा—ये सब मेनादेवी तथा एनादेवी के ही गहने हैं। ये बर्तन-आदि भी इसी घर के हैं। राजाबहादुर को ऋण के भार से व्यग्र जानकर उन दोनों बहनों ने यह सब उन्हे दे दिये थे। इनका विक्रय करने के लिए राजा-बहादुर जौहरी की दूकान पर गये। सौभाग्यवश उस समय मैं वहाँ बैठा था। जौहरी को अधिक मूल्य देकर मैंने यह सब खरीद लिया था, इसलिए कि मेनादेवी के विवाह में चढ़ाव के रूप में दूँगा। अब यदि मेरी ओर से तुम चढ़ाव दे दोगे तो मुझे सुख मिलेगा।

इतनी देर के बाद अपने विस्मय का संवरण करके भास्कर ने कहा—इन सबमें तो बहुत-सा रुपया लगा है। आपने ही राजा-बहादुर का सारा ऋण चुकता कर दिया है। इसके सिवा इतने रुपयों

की चीज़ें आप मुझे दे रहे हैं। मेरा आपका कोई परिचय नहीं है, कोई सम्पर्क नहीं है। यदि आप इस तरह दान करते फिरेंगे तो आपके लिए क्या बचेगा ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—भाई, मैं तो ग़रीब का लड़का हूँ, जन्म भर ग़रीब ही रहा हूँ। तीस रुपये महीने की मैं क्लर्की करता था। भगवान् की कृपा से मै अकस्मात् कुछ रुपये पा गया हूँ। यह सब एक प्रकार से मेरे लिए मुफ़्ती माल है। देने-खोने के बाद भी मेरे पास जो कुछ बचेगा वह तीस रुपये मासिक की आय से अधिक ही रहेगा। मैं अकेला आदमी हूँ। मेरा ख़र्च ही क्या है ? बीच में मुझे विवाह का ज़रा-सा मोह हुआ था, अब वह भी जाता रहा।

भास्कर ने कहा—यह सब कुछ हो सकता है, परन्तु इतने रुपयों की चीज़ें मुझे देने में आपका क्या उद्देश्य है ?

पुण्डरीकाक्ष ने उत्तर दिया—मेनादेवी ने मेरे हृदय में एक बहुत ही सम्मानपूर्ण श्रद्धा का आसन अधिकार कर रक्खा है। उन्हें सुखी करने की अभिलाषा से ही मैं यह अनुरोध कर रहा हूँ।

भास्कर का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उसने चकित भाव से कहा—किन्तु मैं यदि मेनादेवी के साथ विवाह किये लेता हूँ तब तो आप उनके साथ विवाह कर नहीं सकेंगे। ऐसी दशा में इससे तो आपके दुःखी होने की ही बात है !

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए कहा—यदि भोग के दृष्टिकोण से, लोभ के दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह अवश्य मेरे दुःखी होने की बात है। परन्तु जिसके प्रति मैं श्रद्धा करता हूँ, उसके सुख के दृष्टिकोण से देखा जाय तो इससे मुझे सुखी ही होना चाहिए। स्वार्थपरायण होकर मैंने भूल की थी, मैंने अपने प्रेम का अपमान किया था, अपने प्रेम-पात्र की अप्रतिष्ठा की थी। इसी लिए तो प्रेम का उच्च आदर्श हमारे देश में स्थापित हुआ था प्रेम के नाम पर अपनी सारी कामनाओं तथा इन्द्रिय-सुखों के बलिदान में। प्रेमी की आकांक्षायें पूर्ण करना तथा

निष्काम भाव से उसके सारे सुखों की व्यवस्था करना ही प्रेम का उच्च आदर्श है।

पुण्डरीकाक्ष के निष्काम प्रेम का परिचय पाकर तथा उसकी असाधारण उदारता देखकर भास्कर मुग्ध हो गया। प्रशंसापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर ताकते हुए उसने कहा—आपने यह किस तरह मालूम किया कि मेनादेवी मुझसे प्रेम करती हैं या मैं मेनादेवी से प्रेम करता हूँ? आपके हृदय में जो इतना अद्भुत और असम्भव सन्देह उत्पन्न हो गया है, इसका कारण क्या है? मेनादेवी एक धनवान् ज़मींदार की कन्या हैं और मैं उनका केवल एक साधारण-सा कर्मचारी हूँ। अपने हृदय में भला मैं किस तरह इस प्रकार की दुराशा पल्लवित होने दूँगा या वे ही इतनी हीनता क्यों स्वीकार करने लगीं?

पुण्डरीकाक्ष ने हँसकर कहा—प्रेम की दृष्टि से ही प्रेम पकड़ में आता है। इसके सिवा प्रणय के देवता अन्धे हैं। वे पात्रापात्र का विचार नहीं करते। यदि ऐसी बात न होती तो मेरे-जैसे दरिद्र आदमी के हृदय में ज़मींदार की कन्या के प्रति अनुराग कैसे उत्पन्न हो जाता?

भास्कर ने कहा—आप यह बार-बार कह रहे हैं कि मैं मेनादेवी का सम्मान करता हूँ, उनके प्रति मुझे श्रद्धा है और मैं उनसे प्रेम भी करता हूँ। इस अवस्था में दूसरे के साथ उनके विवाह का पैग़ाम लगाने में आपको कष्ट नहीं हो रहा है, यह मुझे अत्यन्त असाधारण और आश्चर्यजनक-सी बात मालूम पड़ रही है।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हमारे देश के प्रणय-देवता अन्धे हैं। परन्तु स्वयं प्रजापति बड़े ही सावधान पहरेदार हैं। उनकी अधीनता में रहनेवाले पहरेदारों में पहला नम्बर है मनु का, दूसरा नम्बर है रघुनन्दन (बंगाल के एक स्मृतिकार) का और तीसरे नम्बर में हैं पञ्चाङ्ग, ग्रह-नक्षत्र आदि जाने क्या-क्या? मनु अपना संहितारूपी अस्त्र लिये हुए और रघुनन्दन अपना उद्वाह-तत्त्व ऊपर उठाये हुए कह रहे हैं—प्रणय अन्धा होकर किसी से भी किसी की प्रीति करा सकता

है, परन्तु खबरदार, यदि ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी का, क्षत्रिय के साथ क्षत्रिय का, कायस्थ के साथ कायस्था का, वैश्य के साथ वैश्या का और शूद्र वर्ण की हजारों 'उपजातियों' में से यदि समान उपजाति के पुरुष और स्त्री में प्रणय न हुआ तो उसे हम नाजायज़ क़रार देंगे, उस पर स्वीकृति नहीं दे सकते। यदि किसी के भाग्य खुल गये और करुणामय विधाता की अनुकम्पा से जाति के दायरे के भीतर ही प्रणय हो गया, तब भी तो कम बाधक नहीं हैं। ये पञ्चाङ्ग हैं तो यह जन्मपत्र है, ये ग्रह हैं, नक्षत्र हैं, वर्ण हैं, अरिष्टाष्टक है, सप्तशलाका है! ये सब कितने झगड़े-झंझट हैं। इतने बाधा-विघ्न ठेलकर अपने मन के अनुकूल वर या वधू का पाणिग्रहण करना कोई ऐसी वैसी बात तो है नहीं। हमारे देश में कितने ऐसे सौभाग्य-शाली व्यक्ति होंगे जो अपने प्रियपात्र के मिलन के लिए इन सबको भी अनुकूल बना सकें। यह संयोग की बात है कि मैं राजाबहादुर का सजातीय निकला। परन्तु गोत्र का झमेला पड़ सकता था, जन्मपत्र का मिलान ठीक नहीं हो सकता था! इससे भी विवाह में बाधा पड़ सकती थी। मैं समझ लूँगा कि इन्हीं सबमें से किसी-न किसी-एक कारण से मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण नहीं हुई। परन्तु यदि मैं मेनादेवी को सुखी कर सका तो चिरकाल के लिए मेरे मन की एक प्रकार की प्रसन्नता होगी, मेरी गणना तुम दोनों के एक प्रिय बन्धु के रूप में सदा होती रहेगी।

भास्कर ने बहुत ही सम्मान और श्रद्धा के साथ कहा---आपके महत्त्व की सीमा नहीं है। परन्तु मैंने तो मेनादेवी के साथ विवाह करने की मूर्खतापूर्ण दुराशा मन में पाल नहीं रक्खी है। इधर आपने मेरे सामने जो यह प्रलोभन लाकर रक्खा है, उसके सम्बन्ध में सोच-विचार कर दो-चार दिन के बाद मैं अपना मत प्रकट करूँगा। आज इसी समय अपना यह अपार अनुग्रह ग्रहण करने का आग्रह आप न कीजिएगा।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा---अच्छा, तुम सोच-विचार लो। परन्तु

समझ रक्खो कि ये सारे सोने-चाँदी के पात्र तथा अलङ्कार तुम्हारे ही लिए मेरे पास रक्खे हुए हैं। तुम जब चाहो, तभी मेनादेवी को उनकी यह हाथ से निकली हुई सम्पत्ति उन्हें सौपकर हर प्रकार से सुखी कर सकते हो।

पुण्डरीकाक्ष ने उन सब वस्तुओं को सन्दूक में फिर बन्द कर लिया। तब नौकरों को बुलाकर उसने उन्हें गाड़ी पर रखवाया और राजा-बहादुर के घर से बिदा हो गया।

जिस समय पुण्डरीकाक्ष मेना के साथ विवाह करने के लिए भास्कर को राजी करने का प्रयत्न कर रहा था, ठीक उसी समय राजाबहादुर भी मेना से इस सम्बन्ध मे बातचीत कर रहे थे। उन्होंने बड़े प्यार से मेना को अपने पास बुलाकर बैठाला और कहने लगे---क्यों रे मेना, तू भास्कर से प्रेम करती है? उसके साथ विवाह करना चाहती है? यदि ऐसी बात है तो आज तक तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा?

मेना के विषादमय तथा प्रभाहीन नेत्र एकाएक बाघिन के नेत्रों की तरह भयङ्कर होकर जल उठे। कड़कती हुई वह बोली---किसने कही है तुमसे यह बात? शायद भास्कर बाबू ने कहा होगा? बिलकुल झूठी है यह बात? वह अर्थलोलुप धूर्त मुझे व्यर्थ में बदनाम कर रहा है!

कन्या के शरीर पर हाथ फेरते हुए राजाबहादुर ने कहा---छि: बेटी, बिना समझे-बूझे किसी को कोई कड़वी बात न कहनी चाहिए। भास्कर बड़ा भला आदमी है। स्वभाव का वह गम्भीर है। उसने मुझसे कुछ कहा नहीं। इसके सिवा वह पैसे का लोभी तो है नहीं। वह किसी बड़े आदमी का लड़का है। कोई विशेष कारण आगया होगा, जिससे कि घर-द्वार छोड़कर परदेश में पड़ा नौकरी कर रहा है। तुमने सुना नहीं? कल वह कह रहा था कि कन्दर्प की-सी जमींदारी मैं जब चाहूँ तब खरीद सकता हूँ। क्रोध के समय आदमी कभी-कभी बहुत लम्बी हाँक जाता है। परन्तु इस बात को ध्यान में रखते

हुए भी भास्कर का चरित्र देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी वह बात कोरी डींग थी।

मेना के सामने भास्कर ने कल दो-दो बार इस बात का इशारा किया था कि मैं एक धनवान् आदमी हूँ। एक बार उसने यह इशारा स्वयं मेना को किया था और एक बार कन्दर्प को। इससे पिता की बात सुनते ही भास्कर की गर्वोक्ति उसे स्मरण हो आई। इससे मेना ने यह अनुभव किया कि पिता जी का अनुमान ठीक भी हो सकता है। मन में यह बात आने पर उसे बहुत कुछ शान्ति मिली। व्यथापूर्ण दृष्टि उठाकर पिता की ओर ताकती हुई वह बोली—तब इस तरह की बात तुमसे किसने कही ?

राजाबहादुर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष को कहीं से इस बात की टोह मिली है कि तुम प्रीति के आकर्षण से उसके साथ विवाह करने के लिए नहीं तैयार हुई हो। तुम उसके दान के बदले में अपने आपको केवल इसलिए बलिदान करने जा रही हो कि मैं ऋण से मुक्त हो जाऊँ। इसी लिए वह आज सबेरे ही आया था और विवाह का जो प्रस्ताव उसने कर रक्खा था, उसे वापस ले लिया है। इस प्रकार तुम्हें वह पूर्णरूप से स्वाधीन और मुक्त कर गया है। मेरे जो दस्तावेज़ ख़रीदकर उसने मुझे दिये थे, उन्हें मैं उसे लौटाल रहा था, परन्तु उसने लिया नहीं। वह कहता था कि तुम्हारे बदले में तो वह सब उसने मुझे दिया नहीं था, बल्कि तुम्हारे पिता की चिन्ता दूर करके तुम्हें सुखी और प्रसन्न देखने के लिए दिया था। वही मुझसे यह भी कह गया है कि तुम्हारा हृदय भास्कर के प्रति प्रीति से आकर्षित हो उठा है।

मेना फिर कर्कश स्वर में बोल उठी—यह अवश्य भास्कर बाबू की कारसाज़ी है। वे यह जान गये हैं कि पुण्डरीकाक्ष बाबू बहुत ही बड़े हैं, उदार प्रकृति के आदमी हैं! इससे कह सुनकर उसने उनसे विवाह का प्रस्ताव वापस करवा दिया और उन्हीं को पैग़ाम

लगाने के लिए भी नियुक्त कर दिया। तुम उन सबसे कह दो कि मैं उनमें से किसी के साथ भी विवाह नहीं करना चाहती हूँ, इसलिए वे मुझे बार-बार अपमानित न करें।

मेना बहुत ही शान्त और धीर लड़की थी। वह सदा ही गम्भीर भाव से रहा करती थी। राजाबहादुर ने उत्तेजित होकर इतने ज़ोर-ज़ोर से बोलते उसे कभी नहीं देखा था। उसे क्रोधित देखकर डर के मारे वे शान्त हो गये, उससे कोई और बात उन्होंने नहीं पूछी। परन्तु जो गुत्थी पड़ गई थी, वह किस तरह सुलझाई जाय, इसका भी कोई उपाय वे न निकाल सके। इससे दुःखित और उद्विग्न होकर वे वहाँ से उठ गये।

मेना जैसे बैठी थी वैसे ही बैठी रही। वह उस समय चिन्ता-सागर में एकदम से डूबी हुई थी।

राजाबहादुर ने अपने आफ़िस के कमरे में जाकर कन्दर्प को बुलवा भेजा। आने पर उन्होंने उससे कहा—देखो कन्दर्प, मेरी यह बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि मैं मेना के साथ तुम्हारा विवाह करूँ। परन्तु मेरी कन्या अब बड़ी हो गई है, पढ़ी-लिखी है, उसमें अब इतना विवेक आ गया है कि वह अपने हित-अहित का विचार कर सके। हर एक विषय में अब उसकी स्वतन्त्र रुचि-अरुचि भी हो गई है। कल से मुझे ऐसा जान पड़ रहा है कि मेना के हृदय में तुम्हारे प्रति वैसा अनुराग नहीं उत्पन्न हो पाया है। ऐसी अवस्था में उस पर दबाव डालकर विवाह के लिए उसे सम्मत करना उसके पिता के लिए उचित न होगा। मुझे इस बात का दुःख है कि यह सम्बन्ध भंग करना पड़ रहा है। परन्तु यदि तुम स्वयं ज़रा-सा सोचकर देखोगे तो यह मालूम हो जायगा कि वर-वधू यदि दोनों ही की इच्छा न हुई तो वह विवाह दो में से एक के लिए भी सुखकर न होगा।

ज़रा देर तक मौन रहने के बाद कन्दर्प ने कहा—मेना को यदि

मेरे साथ विवाह करना स्वीकार न हो तो मैं एना के साथ भी अपना विवाह कर सकता हूँ।

राजाबहादुर ने इस बार भी दृढ़ता के ही साथ कहा—नहीं, उन दोनों में से एक के साथ भी तुम्हारा विवाह होने की सम्भावना नहीं है। यह इरादा तुम अपने दिल से निकाल दो।

कन्दर्प एकाएक आवेश में आकर कहने लगा—आप इस प्रकार अपमानित करके मुझे अपने घर से निकाल देंगे, यह मैं नहीं जानता था। मुझे यदि ऐसा मालूम होता तो मैं आपके यहाँ आकर न ठहरता। आपके गुमाश्ते ने आकर मेरी कोई न कोई शिकायत अवश्य आपसे की होगी। अच्छी बात है, उसको मैं देख लूंगा। गुंडे लगाकर उसकी हड्डियाँ तोड़वाये बिना मैं न रहूँगा। खैर, अब मैं आपके यहाँ नहीं रहना चाहता। मैं अब यहाँ से चलता हूँ, कलकत्ता होटल में रहकर अपना काम-काज समाप्त कर लूंगा, तब घर जाऊँगा।

गाड़ी मँगवाकर कन्दर्प उसी समय चला गया। राजाबहादुर ने उससे बहुत कहा-सुना और इस बात का अनुरोध किया कि कम-से-कम इस समय वह भोजन कर ले तब जाय। परन्तु क्रोध के मारे कन्दर्प भन्नाया हुआ था। वह किसी प्रकार भी ठहरने को तैयार न हुआ।

एना ने जैसे ही कन्दर्प को जाते देखा, वैसे ही वह दौड़ती हुई मेना के पास गई और कहने लगी—दीदी, तुम्हारे एक वर तो विमुख होकर बिदा हो गये, अब तुम्हारे मानस-सरोवर के पुण्डरीक के प्रस्फुटित होने में कोई बाधा नहीं रह गई है। उठ पड़ो, आनन्द से नाचना शुरू कर दो।

मेना ने प्रसन्नतापूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा—भाई एना, तूने ठीक भाँपा है। इस समय सचमुच मुझे आनन्द के मारे नाचने की इच्छा हो रही है। परन्तु वह इसलिए नहीं कि मेरे मानस-सरोवर के पुण्डरीक प्रस्फुटित होंगे। बल्कि इसलिए कि पुण्डरीकाक्ष बाबू

मुझे विवाह के बन्धन से मुक्ति दे गये हैं। वे मुझे पूर्ण स्वाधीनता दे गये है। आज मैंने बन्दिनी की अवस्था से मुक्ति प्राप्त की है।

आश्चर्य के मारे एना चौंक उठी। उसने कहा—एं, तुम यह क्या कहती हो? क्या सचमुच?

मेना ने कहा—हाँ, यह बिलकुल सच है। पिता जी अभी ही मुझे यह शुभ संवाद दे गये है। पुण्डरीकाक्ष बाबू यह ताड़ गये है कि उनके प्रति प्रेम न होने पर भी मैं उनके साथ विवाह करने के लिए केवल इसलिए तैयार हो गई हूँ कि उन्होंने पिता जी का सारा ऋण चुका दिया है। इस प्रकार असहाय अवस्था में पड़कर जो मैं अपने आपको बेचने जा रही थी, इससे वे मुझे छुटकारा दे गये हैं। इसके साथ ही उन्होंने ऋण के दस्तावेज़ और रुक्के भी वापस नहीं लिये, यद्यपि पिता जी ने ऐसा करने के लिए उनसे बड़ा अनुरोध किया है।

एना तथा मेना के मुख पर पुण्डरीकाक्ष के प्रति प्रशंसा का भाव उदित हो आया। एना ने कहा—दीदी, यह उजड्ड आदमी इतने विशाल हृदय का है, यह तो पहले हम लोग जानती नहीं थीं। उससे मैं बहुत रुष्ट हो गई थी। तुम्हारे ऊपर भी मुझे बड़ा क्रोध आया था। वह तुम्हे खरीदने की इच्छा क्यों कर करे या तुम्ही अपने आपको इतने सस्ते में क्यो बेचने लगी हो? यह अच्छा हुआ।

मेना हँसती हुई बोली—एना भाई, दो दिनों के बाद आज तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट आते देखकर मेरी ग्लानि दूर हो गई। मैंने जानबूझकर तेरे प्रिय का अपहरण कर लिया था। मैं तो यह अच्छी तरह जानती हूँ कि तू पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करने लग पड़ी थी। इसी लिए तो तुझे मुझ पर क्रोध आ गया था, तू मुझसे बुरा मान गई थी। परन्तु अब तू यह समझ पाई होगी कि मैं कितना दुष्कर और कठिन कार्य करने को तैयार थी केवल पिता जी को सुखी करने के लिए! पिता जी को ऋण की चिन्ता से मुक्त करने के लिए तेरे सुख का बलिदान करके मुझे स्वयं अपने आपको बलिदान करने के लिए उद्यत होना पड़ा था। इधर

तेरे मन में यह बात बैठ गई थी कि मैं पुण्डरीकाक्ष की सम्पत्ति के लोभ से उसके साथ विवाह करने को तैयार हुई हूँ। परन्तु तुझे मैं यदि सुखी न देख पाती तो क्या मै सुख-सम्पदा के मध्य में रहकर भी किसी प्रकार का आनन्द प्राप्त कर पाती? उस अवस्था में तो सारा ऐश्वर्य मुझे विष-सा मालूम पड़ता।

एना दीदी की पद-धूलि ग्रहण करके बोली—दीदी, मैं बहुत ही स्वार्थपरायण हूँ। इसी से मैं यह नही समझ पाई हूँ कि तुम कितना बड़ा त्याग करने जा रही हो और उस त्याग का कितना माहात्म्य है? इसी लिए तुम्हारे प्रति मुझसे अनुचित व्यवहार हो गया है। तुम्हारे स्नेह में एक दिन के लिए भी मैंने जो अविश्वास किया है, इसके लिए मुझे जीवन भर लज्जित और अनुतप्त रहना पड़ेगा। तुम मुझे क्षमा करो।

मेना ने एना को अपनी गोद में खींच लिया। दोनों हाथों से उसे पकड़े हुए स्नेहमय तथा कोमल स्वर मे वह कहने लगी—तू ही मुझे क्षमा करना भाई! अब यदि तू कहती हो तो मैं तेरे लिए पैग़ाम लगाऊँ। पिता जी ने पुण्डरीकाक्ष से कहा था कि मेना के साथ यदि तुम विवाह नहीं करना चाहते हो तो यदि एना स्वीकार करे तो उसी के साथ कर लो। इस पर पुण्डरीकाक्ष ने क्या कहा है, तुम जानती हो? उसने कहा है कि मेरे साथ रुपये का जंजाल लग गया है, इसलिए मैं अब किसी के साथ भी विवाह करने की इच्छा प्रकट करने का साहस नहीं कर सकता। इस साहसहीन हो गये भीरु को उत्साहदान करके उसके मन में साहस का सञ्चार करने का भार मै ग्रहण करूँगी।

एना ने कहा—नहीं दीदी, तुम्हें कुछ भी कष्ट न करना होगा। तुम्हें इसलिए भी कुछ नही बोलना चाहिए कि वह व्यक्ति तुमसे बहुत डरता है। तुम्हारे प्रति वह बड़ी भक्ति करता है। इससे तुम जो कुछ कहोगी उसे वह तुम्हारा आदेश समझकर मान लेगा। इसलिए पहले मैं इस बात की परीक्षा करूँगी कि वह मुझसे प्रेम करता है या नहीं, बाद को मै ही साहसवान् बना लूँगी।

मेना ने हँसते-हँसते कहा——मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तेरी मनो-वाञ्छा पूर्ण हो, तुम दोनों सुखी होओ।

एना ने भी हँसते-हँसते कहा——किन्तु दीदी, मेरी अपेक्षा वह तुमसे सदा ही अधिक प्रेम करता रहेगा। इससे मुझे कुछ ईर्ष्या होगी, यह मैं पहले से बताये रखती हूँ।

आज बहुत दिनों के बाद दोनों बहनें इस प्रकार एक दूसरे के मुँह की ओर ताकती हुई शुभ्र और अजस्र हास्य-धारा से एक दूसरी को अभिषिक्त कर सकी हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र

दोपहर के बाद से ही पुण्डरीकाक्ष का मन मेना आदि के यहाँ जाने के लिए छटपटाने लगा। परन्तु आज वह अपने मन को बार-बार समझाने लगा—अब क्यों व्यर्थ में जाकर लज्जित होने में आवे और दूसरे को चिढ़ाया जाय। जो कुछ होना था वह तो हो चुका। ये थोड़े से दिन मेरे लिए स्वप्न-राज्य के-से थे, मुझे एक झूठे आनन्द में भुलाये हुए थे। अब वह स्वप्न भंग हो गया है, तब क्यों उसी स्वप्न की स्मृति को खींचते हुए घूमते फिरें! ये थोड़े से दिन ऐसे थे, जब कि मैं मेनादेवी के पास तक पहुँच सका हूँ। मेरे इस अकिञ्चन जीवन के लिए इतना ही यथेष्ट है। इसके बाद सड़क के एक किनारे पर मेरा खड़ा रहना तो कोई बन्द न कर सकेगा। मैं सदा व्याकुल प्रतीक्षा में खड़ा रहा करूँगा, जब वे जायँगी तब मेरे मन और नेत्रों को कृतार्थ करती जाया करेंगी। यदि उनका विवाह हो गया और वे दूसरी जगह चली गईं तो वहीं जाकर रहने में भी तो मेरे लिए कोई रुकावट नहीं हो सकती। खाने का सहारा भगवान् ने कर दिया है। मुझे और कोई बन्धन है नहीं, फिर चिन्ता किसलिए करूँ? मैं उनके पीछे-पीछे छाया की तरह घूमता फिरूँगा, छाया की तरह चरणों के साथ ही लगा रहूँगा, कभी अधिक समीप तक पहुँचने की इच्छा न करूँगा, इच्छा करने पर पहुँच भी न पाऊँगा।

सावन का महीना था। रह-रहकर पानी की बूँदें पड़ रही थीं। राजाबहादुर के बग़ीचे से केवड़े और जूही के फूलों की सुगन्ध भींगी हुई हवा के साथ-साथ आ रही थी, पुण्डरीकाक्ष अपने दोमंज़िले

के बरामदे में बैठा-बैठा विरह-विधुरा रमणी के समान सन्ध्या-वधू का रुदन देख रहा था। इतने में उसकी बुआ ने आकर उसका ध्यान भंग कर दिया।

माला जपना बीच ही में रोककर बुआ ने कहा---पुण्डरीकाक्ष सावन का महीना तो बीता जा रहा है, विवाह के लिए कोई दिन स्थिर न कर लो।

पुण्डरीकाक्ष ने एक विषादमयी हँसी हँसकर कहा---बुआ जी, जीवन के ऊपर से पैंतीस श्रावण तो रोते-रोते चले गये। वैसे ही एक यह भी चला जायगा तो क्या होगा ? उन गत पैंतीस श्रावणों में विवाह न करके उन्हें वैसे ही बिता दिया है, उसी तरह यह भी बिताया जा सकता है। इसके लिए तुम कोई चिन्ता न करो। मेरा अनुरोध सुनने के लिए यह श्रावण एक दिन की भी प्रतीक्षा न करेगा, अवधि पूरी हो जाने पर अनुनय-विनय करने पर भी यह एक दिन न रुक सकेगा।

बुआ जी ने कुछ रोष में आकर कहा---तू जो यह पहेली कह रहा है, वह तो मेरी समझ में आ नहीं रही है। तेरे मन में जो आवे, वही कर।

बुआ जी चली गईं।

पुण्डरीकाक्ष बैठे-बैठे सोचने लगा---इतने दिनों तक मैं कैसे भयङ्कर मोह में पड़ा हुआ था। मैंने सोच रक्खा था कि भाग्य जब फिरे हैं, तब मेरी सभी आकांक्षायें पूरी हो जायँगी। परन्तु विधाता मेरे ललाट के पीछे बैठे-बैठे हँस रहे थे, उन्होंने मेरा सारा मनसूबा ही बिगाड़ डाला। उस समय मैंने सोचा था कि असल को तो पा ही गया हूँ, अब नक़ल की क्या जरूरत है ? अब देखता हूँ कि उस समय यदि मैंने एक फ़ोटोग्राफ़, कम-से-कम उनके हाथ का लिखा हुआ एक चिट काग़ज़, उनके पैरों के नीचे पड़ी हुई ज़रा-सी धूलि संग्रह करके रख ली होती, तो आज मुझे केवल भाव-राज्य में विचरण करना न पड़ता। मेरा कोई एक वास्तविक अवलंबन तो रहता ही !

पुण्डरीकाक्ष सोचते-सोचते कैसा अन्यमनस्क-सा होकर एकाएक

उठ पड़ा। बरसाती कोट पहनकर तथा हाथ में एक छाता लेकर वह निकल पड़ा। उसके जी में आया कि रास्ते-रास्ते में भीगते-भीगते घूमकर मन को शान्त तथा शरीर को श्रान्त कर आऊँ।

घर के बाहर आते ही पुण्डरीकाक्ष के पैर बढ़ना चाहते थे मेना आदि के घर की ओर। उनके घर के फाटक के सामने पहुँचने पर अभ्यास और आग्रहवश उसने बरामदे की ओर ताका। सन्ध्या के धुँधले प्रकाश में श्रावण की झड़ी की बूँदों के बीच से पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि राजाबहादुर के बरामदे के रोशनी से जगमगाते हुए कोने में, जहाँ से खड़े होकर देखने पर फाटक की राह से बाहर की सड़क का थोड़ा-सा अंश दिखाई पड़ता है, खड़ी है एना। पुण्डरीकाक्ष ने जिस दिन से राजाबहादुर के यहाँ मनोविनोद के लिए जाना आरंभ किया था, उस दिन से प्रतिदिन ही उसने एना को उसी स्थान पर खड़ी हुई पाया था। पुण्डरीकाक्ष को देखते ही वह मुस्कराहट के साथ नीरव भाव से आदरपूर्वक उसकी अभ्यर्थना कर लिया करती थी।

आज एना को देखने पर पुण्डरीकाक्ष के मन में एक समस्या उत्पन्न हो आई। वह सोचने लगा कि एना जो इस प्रकार एक ही स्थान पर खड़ी रहा करती थी उसका क्या कोई विशेष अर्थ नहीं है? क्या उसे सड़क पर चलनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को देखने का कौतूहल था, इसलिए उसकी वहाँ खड़ी होने की आदत हो गई थी, या वह किसी की प्रतीक्षा किया करती थी? यदि वह प्रतीक्षा ही किया करती थी तो किसकी?

पुण्डरीकाक्ष ने मन ही मन कहा—इतने दिन तक तो मैं यही सोचता था कि एना जिसकी प्रतीक्षा में खड़ी रहा करती थी वह मैं ही हूँ। एना अपनी दीदी के भावी पति की आदरपूर्वक संवर्द्धना करने के लिए खड़ी रहा करती थी। किन्तु इसके बाद ही पुण्डरीकाक्ष के मन में फिर आया—मैं एना की दीदी को ही मन ही मन चाहता हूँ, उनको देखने के लिए ही दौड़-दौड़कर आया करता हूँ, यही एना ने कैसे जान

लिया ? वह तो अन्तर्यामिनी है नहीं, सर्वज्ञा नहीं है, आकृति देखकर मन का भाव जान लेने की क्षमता उसमे है नहीं ! तब ?

पुण्डरीकाक्ष की चिन्ता-धारा फिर बदल गई। वह सोचने लगा—तब क्या वह सोचती थी कि मैं उसी को देखने के लोभ से उसके यहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित हृदय से पल-मुहूर्त्त गिनता रहा करता था और निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होने में कभी एक पल, एक मुहूर्त्त का भी विलम्ब नहीं होने देता था ! रेलगाड़ी की ही तरह ठीक बँधे हुए समय पर उपस्थित होता रहा हूँ, उसी से ग़पशप करने, उसी से हँसी-मज़ाक करने के लिए ? बराबर किया भी तो मैंने यही है ! मेना के समीप आते ही मेरा कण्ठरोध हो जाता, मैं अन्तिम अवस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की तरह हो जाता ! मुझे ऐसा जान पड़ता कि मेरी नाड़ी ही छूटी जा रही है। उसके सामने मैं आदर, सम्मान और भय के मारे जड़-सड़ हो जाया करता ! और एना के साथ ? एना के साथ तो मैंने कितना ग़पशप किया है, कितना हँसी-मजाक किया है ? इससे आदमी के मन मे किस प्रकार की धारणा हो सकती है ? उसने यदि मेरा मनोभाव समझने में भूल की है, तो कोई अन्याय नहीं किया।

पुण्डरीकाक्ष वहीं खड़े-खड़े एक-एक बात पर गम्भीर भाव से विचार कर रहा था। वह फिर सोचने लगा—एना ने जो इस प्रकार की धारणा कर ली है वह क्या कोरी भूल ही थी ? मेरा मन क्या उसे देखकर प्रसन्न नहीं हो उठा ? उसे देखने के लिए, उसके साथ बातचीत करने के लिए, क्या मै उत्सुकतामय आग्रह से प्रतीक्षा नहीं करता रहता था ? उसके मन में यदि भ्रम उत्पन्न हो गया हो, तो उसका भी कारण तो मैं ही हूँ। मैंने ही उसके मन में इस भ्रम का सञ्चार कर दिया है।

सोचते-सोचते पुण्डरीकाक्ष का ध्यान राजाबहादुर की बात पर गया। वह सोचने लगा कि जिस दिन मैंने मेनादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था उस दिन मेरे मुंह से उनका नाम सुनकर वे चौंक उठे थे। यह नाम उनके कान में अकस्मात् पड़ा था। उन्हें ऐसी

आशा नहीं थी कि मैं मेनादेवी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव करूँगा। उन्हें आशङ्का हुई थी कि मैं भूल कर रहा हूँ, इसी लिए उन्होंने मेरी स्मृति ठीक करने का उद्योग किया था। परन्तु बाद को भी जब मै दृढ़ आग्रह के साथ अपनी पहली बात पर अड़ा रहा तब वे निश्चयपूर्वक जान पाये कि मै मेनादेवी को ही प्राप्त करने की इच्छा कर रहा हूँ। उस समय उनके मुख पर चिन्ता की रेखा उदित हो आई थी। उस दिन से मेना देवी का मुख तो भङ्कर तूफ़ान के समय के काले मेघ के समान काला और प्रभाहीन हो गया और एना भी हो उठी क्रूर-स्वभावा तथा दुर्लभ-दर्शना। इधर दो दिन तक तो इस कोने में खड़ी होकर उसने मेरे आगमन की प्रतीक्षा भी नहीं की। इधर आज जैसे ही मै मेनादेवी के विवाह की बात भंग करके उन्हें मुक्ति दे आया हूँ, वैसे ही क्या एना की भी प्रसन्नता लौट आई? क्या आज वह फिर मेरे ही आगमन की प्रतीक्षा में खड़ी है? तो क्या यह मुझसे प्रेम करती है और मैं भी इससे प्रेम करता हूँ? और मेना की नारी-मर्यादा से सम्पन्न महत्त्वव्यञ्जक गम्भीर मूर्ति देखकर मैं श्रद्धा और सम्मान को भूल से प्रेम समझ बैठा था? मैंने और तो किसी प्रकार की आशा भी नहीं की, और किसी प्रकार का लोभ प्रदर्शित करने का साहस तो मैं कर नहीं सका। अब मैं कभी इस रास्ते में पैर न रक्खूँगा। इसके सिवा जीवन के अब कितने दिन बाक़ी ही हैं। जो कुछ हैं उन्हें भी उसी तरह फूँक दूँगा जिस तरह ये लम्बे पैंतीस वर्ष फूँक दिये।

पुण्डरीकाक्ष सड़क पर कीचड़ में खड़ा था। मस्तक पर अविराम धारा से वर्षा हो रही थी, किन्तु इस सबकी ओर ध्यान न देकर बड़ी देर तक वह सोचता खड़ा रहा। बाद को छाता सीधा करके मस्तक पर लगाये हुए वह चलने लगा। वह ज़रा दूर तक चला भी गया। इतने में राजाबहादुर के यहाँ का एक नौकर भीगते-भीगते दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—बाबू जी, आपको छोटी दीदी रानी बुला रही हैं।

पुण्डरीकाक्ष ठमककर खड़ा हो गया। निमेष भर के लिए तो अपना मुख चिन्ता से अन्धकारमय किये हुए वह खड़ा रहा, किंतु उसके बाद

ही उसका वह चिन्ता का अन्धकार हँसी की उज्ज्वलता के रूप में परिवर्तित हो गया। वह प्रसन्न भाव से नौकर के आगे-आगे चला।

राजाबहादुर के घर में पुण्डरीकाक्ष के पैर रखते ही एक नौकर दौड़ता हुआ उसके पास आया और उतावली के साथ उसके हाथ से भीगा हुआ छाता ले लिया। उसके बाद ही उसने भीगा हुआ बरसाती कोट भी उसके शरीर पर से उतार लिया। अब पुण्डरीकाक्ष धीर भाव से पैर बढ़ाता हुआ ऊपर चढ़ने लगा।

संगमरमर की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते पुण्डरीकाक्ष ने जैसे ही मोड़ पर से ऊपर की ओर दृष्टि दौड़ाई, उसने देखा कि सीढ़ी के सिरे पर बरामदे में मुस्कराती हुई खड़ी है एना।

पुण्डरीकाक्ष की आँखों से आँखें मिलते ही एना दबे कण्ठ से एक गीत गा उठी। उसका उस समय का स्वर बहुत ही कोमल, बहुत ही रसिकतामय था। गीत का भाव यह था—

"देखो, एक पथ-भ्रान्त पथिक आया है! हे नवीन पथिक, तुम्हें मैं पहचानता हूँ। गली-गली में तुम्हारे वाटरप्रूफ़ का छोर उड़ता फिरता है। देखो, यह पथिक ऐसा पागल है कि इस तरह के पानी में घर छोड़कर भटकता फिर रहा है। कौन ऐसा है जो कि इसके प्रति करुण होकर इसे पुकारे?"

पुण्डरीकाक्ष मुस्कराता हुआ ऊपर आगया। एना ने गाना बन्द कर दिया और हँसते-हँसते वह कहने लगी—ऐसे समय में जब कि झमाझम पानी बरस रहा है, मस्तक पर छाता लगाये हुए खड़े-खड़े तुम किस दुर्भावना में पड़े थे, ज़रा बतलाओ तो? दुस्तर पारावार का लङ्घन करने का अभ्यास तो तुम्हें है, फिर ज़रा-सी यह सड़क पार करने में ही संशय का अन्त नहीं होता? जिस प्रकार लोभी बालक सड़क पर मिठाई की दूकान की ओर मुँह बाये ताकता खड़ा रहता है, उसकी मिठाई खाने की लालसा तो रहती है, किन्तु मिठाई ख़रीदने का साधन नहीं होता। मैं देखती हूँ कि आपका भी वही हाल है। लोभ तो है बड़ा

प्रबल किन्तु साहस नहीं होता। जानते तो है कि 'नन बट दि ब्रेव डिज़र्व्स दि फ़ेयर।' केवल वीर ही उत्कृष्ट श्रेणी की वस्तु प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते हुए कहा—मैं फ़ेयर डिज़र्व नही करता, इससे स्वभावतः मुझे साहस भी नही होता। अपराधी हुआ हूँ अपनी भूल के कारण, इसी लिए हृदय पर भय अधिकार जमाये हुए है।

एना ने रसिकतामय स्वर से कहा—मा भैषीः, मा भैषीः। बाँस के वन में डोम से इस तरह का अन्याय तो हो ही जाया करता है। इसमे कोई विशेष अपराध नहीं सचित हुआ। और यदि आप समझते है कि अपराध हो ही गया तो क्षमा माँगने के लिए भी तो आना आवश्यक था।

पुण्डरीकाक्ष ने सूखे हुए मुख से कहा—मुझे तो क्षमा माँगने का भी साहस नहीं होता। आपने यदि मुझे बुलाया है तो आप ही मेरी क्षमा-प्रार्थना अपनी दीदी के पास भेज दीजिएगा। इसके सिवा मैंने जो स्पर्द्धा की है, उसके लिए आप भी मुझे क्षमा कर दीजिएगा।

हँसी से भरा हुआ अपना मुख ऊपर करके कौतुक से मस्तक हिलाती हुई एना बोली—न, मैं किसी प्रकार भी क्षमा न करूँगी। इस विषय में हमारा आपका सदा झगड़ा होता रहेगा, सदा ही आपको इसके लिए ताने सुनने पड़ेंगे। परन्तु दीदी शान्त व्यक्ति है, उनकी बात अलग है। वे चाहें तो क्षमा भी कर दे सकती हैं। आइए, कमरे में बैठिए, मैं दीदी को बुलाये लाती हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने कुछ व्यग्रता के साथ कहा—नहीं, नहीं, मैं उनके साथ कोई बातचीत नहीं कर सकता। जो कुछ कहना होगा वह आप ही मेरी ओर से कह दीजिएगा।

एना हँसती हुई बोली—इसी बल पर बड़ी दीदी के साथ विवाह करने की इच्छा की थी? दीदी यदि कहीं बहू हो गई होतीं तब तो भय के मारे दम घुटते-घुटते ही आप मर जाते। यह एक बहुत बड़ा जंजाल आपका दूर हो गया। अब आप एक ऐसी बहू चुनिए,

जिसके साथ आसानी से बातचीत कर सकें। मेरे साथ तो आप बहुत खुलकर बातचीत कर सकते हैं।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा––हाँ, आपसे तो मैं खूब जी खोलकर बातें कर सकता हूँ। प्रतिदिन देखते-देखते मैं शायद मन ही मन आप दोनों ही बहनों से प्रेम करने लग पड़ा था। उनमें से एक हो गई थीं केवल मेरे कल्पना-लोक की नारी। महिमा की प्रतिकृति और दूसरी हुई थीं व्यावहारिक जीवन की मनोरम सखी! एक हुई थी स्वप्नलोक में विहार करनेवाली देवी तो दूसरी हुई थीं प्रतिदिन के जीवन की प्रत्येक वस्तु को अमृत में अभिषिक्त करनेवाली मानवी! एक हुई चिन्ता की विषय और दूसरी हुई वाक्य हँसी और रङ्ग-रसिकता की विषय।

एना ने उसी प्रकार प्रफुल्ल मुख से ही कहा––तब तो आप गदाधरचन्द्र के दल के आदमी हैं। आपको दूध भी चाहिए, तम्बाकू भी चाहिए। परन्तु यदि दूध न मिल सका तो तम्बाकू का भी परित्याग क्यों करते हैं?

पुण्डरीकाक्ष ने गम्भीर भाव से कहा––मैं आजन्म का हतभाग्य हूँ। इसी लिए साहस नहीं कर पाता। आशङ्का होती है कि कहीं अधिक कामना करने पर सभी कुछ न खो बैठूँ?

एना ने हँसते-हँसते कहा––कामना करके ही एक बार क्यों नहीं देखते? खो न बैठिएगा। भय की कोई बात नहीं है। मेरे परामर्श से यदि पहले कार्य किये होते तो मैं आपको मार्ग छोड़कर नरकुल के पेड़ पर चढ़ने की दुराशा से निवृत्त किये होती। एक अनुभवी साहित्य-कार का कथन है––जीवन में बहुत-से सुयोग आ सकते हैं, किन्तु आते नहीं। जो मनुष्य आधा राज्य और राजकन्या एक साथ ही प्राप्त कर लेता है, उसका भाग्य अच्छा है। परन्तु जो इस तरह नहीं पाता, संयोग से उसे दाहनी ओर से आकर मिल जाता है राज्य और बाईं ओर से उसके पास आ पहुँचती है राजकन्या, वह भी कम सौभाग्य-शाली नहीं होता।

आनन्द से हृदय को विकसित करते हुए पुण्डरीकाक्ष कहने लगा—तब क्या तुम इस बात का साहस और भरोसा दे रही हो कि मैं बाईं ओर से राजकन्या को प्राप्त करने की दुराशा का हृदय में पोषण कर सकता हूँ ?

एना ने समस्त शरीर से हँसकर, मस्तक हिला कर कहा—हाँ, तुम ऐसा कर सकते हो। परन्तु राजकन्या को प्राप्त करने की 'दुराशा' तो अब दूर हो चुकी है, इससे तुम राजकन्या को प्राप्त करने की 'आशा' कर सकते हो। भाषा-सम्बन्धी त्रुटि मत करो।

एना की यह बात पुण्डरीकाक्ष के लिए बहुत ही सन्तोषदायक हुई। आनन्द की अधिकता के कारण विह्वल-सा होकर वह खड़ा रहा। एना ने इधर-उधर की बातें करते-करते खूब ज़ोर-ज़ोर से हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष को चंगा कर लिया, तब वह कहने लगी—अब तुम आकर कमरे में बैठो। मैं दीदी को बुला लाऊँ। अब तो दीदी गुरुजन हो जायँगी, उन्हें प्रणाम करो।

एना ने कमरे में प्रवेश किया। आह्लाद के अतिरेक के कारण शरीररूपी लता को इस प्रकार आन्दोलित करती हुई वह चल रही मानो आनन्द की साक्षात् तरङ्ग ही है। पुण्डरीकाक्ष उसके पीछे-पीछे जाकर द्वार के पास जूते खोलकर रखने के लिए खड़ा हो गया।

एना ने पूछा—यह क्या ? जूते क्यों खोल रहे हो ? यह तो देवी का मन्दिर नहीं, बल्कि मानवी का गृह है। इसलिए . . .।

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—जूते एकदम से भीग गये हैं। पिचपिच करते हैं।

एना ने कहा—इसमें भला जूतों का अपराध ही क्या है ? ऐसी झड़ी में घंटा भर तक खड़े-खड़े भीगते रहे। ज़रा-सा ठहरिए, पिता जी की एक जोड़ा चट्टियाँ ले आ देती हूँ।

पुण्डरीकाक्ष ने व्यस्त होकर कहा—न, न, राम राम ! मैं भला उनकी चट्टियों में पैर डालूँगा ? वे गुरुजन हैं।

एना हँसती-हँसती कहने लगी—तब तो दीदी के जूतों में भी पैर नहीं डाले जा सकते। देखूँ, यदि मेरे जूते इन गदाधर के पादपद्म को अपने वक्ष में धारण कर सकें।

पुण्डरीकाक्ष ने हँसते-हँसते कहा—तो क्या जूतों के ही द्वारा पहले-पहल वरण किया जायगा? परन्तु तुम तो मेरी साली हो नहीं। और होगी क्यों नहीं। मैं सदा यही समझता रहूँगा कि साली को ही रखकर गृहस्थी के सुख का उपभोग कर रहा हूँ।

एना ने हँसकर कहा—तो इसमें हानि ही क्या है? क्या कोई साली को गृहिणी बनाता ही नहीं? तुम्हारे मन में यदि यह भाव रहा, तब तो बल्कि और अच्छा है। उस दशा में मैं तुम्हारे लिए कभी पुरानी होऊँगी ही नहीं। तुम सदा परकीया-रस में ओत-प्रोत रहोगे। हम दोनों की वैष्णव-प्रेम की साधना जारी रहेगी।

पुण्डरीकाक्ष को कमरे में बैठाल कर एना जूते लाने के लिए इस तरह गई, मानो एक आनन्द की तरङ्ग उछलती हुई चली जा रही है। एक नौकर के हाथ से उसने एक जोड़ा चट्टी बाहर बैठक में पुण्डरीकाक्ष के पास भेज दिया और वह स्वयं गई मेना के कमरे में।

मेना अपने कमरे में खिड़की के पास चुपचाप बैठी हुई वर्षा की बहार देख रही थी। साथ ही साथ वह यह भी सोचती जाती थी कि इधर दो दिन के बीच में मेरे जीवनरूपी मंच पर कितनी जल्दी-जल्दी पर्दे बदलते गये, कैसी-कैसी नाटक की-सी घटनायें घट गईं। इतने में एना एकराशि जूही के फूल के समान हँसी-खुशी से भरपूर होकर दीदी के शरीर पर लोट पड़ी और दोनों हाथों से उसे लिपटाये हुए आनन्द-विह्वल स्वर में कहने लगी—दीदी, दीदी, मैंने उस उजड्ड को सड़क पर से बुलवाकर प्रस्ताव कर दिया है और उसने स्वीकार भी कर लिया है। दीदी, तुम चलो।

प्रसन्नता के मारे विकसित हो आये अपने मुख पर आश्चर्य का भाव

व्यक्त करती हुई मेना ने कहा---आँ? यह क्या कहती है? तूने प्रस्ताव कर दिया? तुझे लज्जा नही आई?

आह्लाद के अतिरेक से पुलकित होती हुई एना ने कहा---इसमें लज्जा की कौन-सी बात है? एक तो वह गँवार यों ही मुँह-चोर है, तिस पर वह तुमसे धक्का भी खा चुका है। इससे वह भड़ककर घबरा उठा है। क्या सदा पुरुष ही लोग प्रस्ताव करते रहेंगे? स्त्रियों को इस बात का साहस कभी होगा ही नही? इसके सिवा वैष्णव-प्रेम का आदर्श है लज्जा-पर्य्यन्त का परित्याग कर देना!

मेना एना को खींचकर अपनी गोद के पास ले आई और उसने उसका मुख चुम्बन किया। बाद को उसके नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे।

एना दीदी के नेत्रों मे जल देखकर अत्यन्त ही व्यथित हो उठी। कुछ तो दीदी के प्रति समवेदना होने के कारण और कुछ आनन्द की अधिकता के कारण उसके भी नेत्रों में जल आ रहा था, किन्तु अपना वह भाव दूर कर देने के विचार से अपनी बातों में हँसी की पुट देकर उसने कहा---दीदी, तुम रो रही हो, यह देखकर लोग अपने मन में यही धारणा बनावेंगे कि इस उजड्ड को नही पा सकी हो, इसी लिए तुम्हें रुलाई आ रही है।

आँसुओं के भीतर से ही बहन के मुँह की ओर ताकती हुई मेना कहने लगी---मैं रोती क्यों हूँ, यह जानती है भाई? मैं तेरी दीदी होकर तेरा यह आनन्द नष्ट कर बैठी थी। तुझे मैं आजन्म दुःखी कर रखने को उद्यत हुई थी।

इसके उत्तर में एना भी गम्भीर होकर ही बोली---तुम अपने आपको भी तो आजन्म के लिए दुःख में झोंकने को उद्यत हुई थीं दीदी! यह सब जो होना था, हो गया, तुम बाहर आओ। मैं उजड्ड को अकेला ही बैठाल आई हूँ।

अपने आँसुओं के साथ हँसी मिलाती हुई मेना बोली---तू अब भी

इसी नाम से पुकारती रहेगी ? पुण्डरीक बाबू भला अपने मन में क्या कहेंगे ?

हँसी से शरीर के समस्त अङ्गों को हिलाती हुई एना बोली--कहेंगे क्या ? इस तरह का प्यार का नाम सुनकर कृतार्थ हो जायँगे। तुम चलो, चलो।

यह कहकर एना मेना को खींचती हुई लेकर चली। मेना आगे की ओर पैर बढ़ाते-बढ़ाते अञ्चल से नेत्रों का जल पोंछने लगी।

मेना और एना ने आकर देखा तो पुण्डरीकाक्ष के पास राजाबहादुर बैठे थे। उन्होंने कन्याओं को देखते ही कहा--तुम दोनों कहाँ थी ? पुण्डरीकाक्ष आकर अकेले बैठे थे।

मेना के मुख की ओर दृष्टि डालकर पुण्डरीकाक्ष ने देखा कि उसका विषाद का मेघ बहुत कुछ उड़ चुका है, उसके मुख पर लावण्य-श्री की उज्ज्वलता लौट आई है।

पिता की बात सुनते ही मेना अपने हँसी से विकसित हो उठे मुख से कहने लगी--बाबू जी, एना मुझे खुश-खबरी सुनाने गई थी। उसने एकदम से नीलकण्ठ होकर मेरे कन्धे का भार उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया है और वह भार भी स्वच्छन्दतापूर्वक उसके कन्धे पर सवार हो जाने के लिए स्वयं ही उद्यत हो उठा है। एना इस कलिकाल की स्वयं दधीच मुनि का अवतार है। कितना विशाल आत्मत्याग है उसका ? कितना कष्ट स्वीकार करने के लिए उद्यत है वह !

मेना आज अपने स्वभाव के प्रतिकूल इतनी बातें कह गई और हँसने लगी। उसे इस प्रकार हँसती देखकर और उसकी रस से भरी हुई बातें सुनकर पुण्डरीकाक्ष और राजाबहादुर आश्चर्य में आ गये, साथ ही वे आनन्दित भी हुए। उनकी समझ में यह बात आई कि पुण्डरीकाक्ष एना के साथ विवाह करने के लिए जो तैयार हो गया है उसके कारण उसने एक साथ ही सबको सुखी और दायित्व से मुक्त कर दिया है। मेना पिता को जिस ऋण-चिन्ता से मुक्त करने के लिए आत्मबलिदान करने

को उद्यत हुई थी, वह ऋण-चिन्ता जाती रही, साथ ही उसे आत्म-बलिदान भी नहीं करना पड़ा। एना सुखी हुई, साथ ही पुण्डरीकाक्ष भी अत्यन्त असुखी हुआ हो, यह भी नहीं मालूम पड़ता।

कन्या की यह बात सुनकर राजाबहादुर मारे आह्लाद के प्रफुल्लित हो उठे। एक बार उन्होंने पुण्डरीकाक्ष के मुंह की ओर ताका और एक बार एना के मुख की ओर। उन दोनों ही का लज्जा से झुका हुआ किन्तु मुस्कराहट की रेखा से युक्त मुख देखकर उन्होंने कहा—बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। इस प्रकार की व्यवस्था करने का मेरा प्रारम्भ से लेकर अब तक का सङ्कल्प था। एना का रुख पहचान कर ही मैं स्वयं पुण्डरीकाक्ष के पास गया था और उनसे अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया था। कारण, उस समय भी तो कन्दर्प के साथ ही मेना के विवाह की बात पक्की हो चुकी थी। यह बड़ा उत्तम कार्य्य हुआ, बड़ा ही उत्तम कार्य्य हुआ। इससे तुम सभी लोग सुखी होओगे और तुम सबको सुखी देखकर मैं भी सुखी होऊँगा।

एना ने आगे बढ़कर लज्जा-जड़ित भाव से पिता को प्रणाम किया। उसकी देखा-देखी पुण्डरीकाक्ष ने भी आगे बढ़कर राजाबहादुर को प्रणाम किया। वे दोनों पास ही पास उनके सामने खड़े हुए। राजाबहादुर उतावली के साथ उठे। उन्होंने दोनों ही हाथ फैलाये और उन दोनों को खींचकर अपने पास ले आये। तब हाथ से दोनों को लिपटाये हुए वे बोले—तुम दोनों एक दूसरे की प्रीति से तृप्ति-लाभ करो, सुखी होओ, यही मेरा आशीर्वाद है। महाकवि कालिदास के शब्दों में मैं कहता हूँ—

'आशीरन्या न ते योग्या पौलोमी-मङ्गला भव।'

इतने में एक नौकर ने आकर राजाबहादुर से कहा—हुजूर, एक आदमी आया है, आपसे मिलना चाहता है। वह कहता है कि उसे आपसे कोई बहुत जरूरी बात कहनी है।

राजाबहादुर ने पूछा—कैसा आदमी है ? कोई भला आदमी मालूम पड़ता है ?

नौकर ने कहा—एक लड़का-सा बाबू है।

वहाँ से उठकर चलते-चलते राजाबहादुर ने कहा—तुम लोग बैठो, मैं अभी आता हूँ।

राजाबहादुर के उठकर जाते ही एना ने मेना को प्रणाम किया और हँसते-हँसते पुण्डरीकाक्ष से कहा—लो, प्रणाम करो। बाहर से तो इस तरह का भाव दिखाते रहना कि मानो ये गुरुजन हैं और भीतर ही भीतर कहते रहना—देहि पदपल्लवमुदारम्।

पुण्डरीकाक्ष ने लज्जित होकर मुस्कराते हुए मुख से मेना को नमस्कार किया।

मेना ने कहा कि मैं भी पिताजी के ही समान महाकवि कालिदास के शब्दों में आशीर्वाद देती हूँ—उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्।

एना ने हँसते-हँसते कहा—यह कहो कि उपराग और अनुराग दोनों ही के अन्त में। परन्तु दीदी, तुम्हारा आशीर्वाद तुम्हारे लिए इतनी सुविधा का नहीं हुआ। तुम अन्त में उपराग के ही दल में पड़ गई हो।

पुण्डरीकाक्ष ने कृत्रिम तर्जन करके एना के कान के पास कहा—आह, दीदी को तुम जो मन में आता है, वही कह बैठती हो ?

एना होंठ उलटकर चबुरी बाँधे हुए बोली—हुश, बड़ी दीदी बनी हैं ! दो दिन पहले दीदी क्या थीं ? दो दिन पहले क्या ये ही तुम्हारे कल्पलोक की स्वप्न-विहारिणी नहीं थीं ? अभी-अभी तो तुम इनके सम्बन्ध में कैसी कवित्वमयी भाषा का प्रयोग करते रहे हो !

बात उड़ा देने के विचार से मेना ने कहा—अभी से तूने इन सज्जन के लिए तुम शब्द का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया ?

नेत्रों में और मुख पर बिजली की-सी छटा देदीप्यमान करती हुई

एना बोली—दो दिन बाद तो इस प्रकार का प्रयोग करना ही है, इससे आज से ही अभ्यास किये रखती हूँ। तुम भी 'तुम' कहना आरम्भ कर दो। परन्तु उन्हें कभी ऐसा अवसर न देना कि ये भी तुम्हें तुम कहने लग पड़ें। फिर भी 'आपका' थोड़ा-सा व्यवधान रहेगा। तुम्हारे प्रति इनका जो प्रेम है, उसे जरा भी गुप्त कर रखने का तो अब कोई उपाय है नहीं, इससे जितना भी हो सके, उतना ही सावधान रहने में कुशल है।

एना को मधुरभाव से डाँटते हुए पुण्डरीकाक्ष फिर कुछ कहने जा रहा था, इतने में राजाबहादुर आ पहुँचे। उनके मुख पर विषाद की रेखा फैली हुई थी। आते ही मेना की ओर ताकते हुए वे बोले—कांग्रेस का एक वालंटियर यह सूचना देने आया है कि भास्कर को पुलिस पकड़ ले गई।

सबका हँसी से भरा हुआ मुख मलिन और उद्विग्न हो उठा। मेना के मुख की आभा तो एकदम से ही जाती रही। एना ने पूछा—उन्हें पुलिस क्यों पकड़ ले गई?

राजाबहादुर ने कहा—आज कांग्रेस की एक सभा होनेवाली थी। पुलिस ने आकर सभापति को गिरफ़्तार कर लिया और सभा में सम्मिलित होने के लिए जो भीड़ एकत्र थी, उसे डंडे मार कर तितर-बितर कर दिया। उस छिन्न-भिन्न होकर भागती हुई जनता को एकत्र करके भास्कर स्वयं सभापति बन गया और व्याख्यान देने लगा। इससे पुलिस ने उसे भी गिरफ़्तार कर लिया। जो लड़का हम लोगों को यह समाचार देने आया है, वह कहता है कि भास्कर बहुत दिनों से उन लोगों को छिपाकर रुपये-पैसे की सहायता दिया करता था, इससे वे सब उसे पहचानते हैं। पुलिस ने भास्कर को जब गिरफ़्तार कर लिया है तब यह भी सम्भव है कि वह उसकी चीज़-वस्तु की तलाशी लेने भी आवे। इसी से वह लड़का आया है। वह भास्कर की चीज़ें यहाँ से उठाकर ले जाना चाहता है। उन्हें कहीं और जगह छिपाकर वह रख देगा।

यह बात सुनने के बाद मेना के मुख की आभा प्रदीप्त हो उठी। उसने दृढ़तापूर्ण स्वर में कहा—न, उनकी चीज़ें किसी अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति के हाथों में दी ही नही जा सकतीं। जो आदमी आया है, वह झूठ नहीं बोल रहा है या पुलिस का गुप्तचर नही है, यह कैसे मालूम किया जा सकता है। बाबू जी, तुम जाकर कह दो कि भास्कर बाबू की चीज़ों में कुछ छिपाने लायक़ नहीं है। आने दो पुलिस को, वह लेती नहीं तलाशी।

राजाबहादुर द्विविधा का-सा भाव व्यक्त करते हुए कहने लगे—यह तुम ठीक-ठीक क्या जानो कि भास्कर की चीज़ों में कुछ छिपाने लायक़ है ही नहीं ?

मेना ने दृढ़ स्वर में कहा—हाँ, मैं जानती हूँ। वे कभी कोई भी अनुचित कार्य्य नहीं कर सकते। जो अन्याय नहीं है, पाप नहीं है, उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पुलिस आती है तो आने दो।

राजाबहादुर ने जब देखा कि मेना दृढ़ है और गर्व के साथ ये बातें कह रही है, तब वे कहने लगे—अच्छा, तो मैं जाता हूँ और यही बातें उससे कहे देता हूँ।

राजाबहादुर चले गये। साथ ही साथ मेना भी मुख गम्भीर किये हुए वहाँ से चली गई। एना और पुण्डरीकाक्ष का मुख भी विषाद से आच्छादित हो उठा। वे दोनों गम्भीर होकर नीरव भाव से खड़े रहे। उन दोनों की आज की इस आनन्द-पूर्णिमा के ऊपर कोई राहु विषाद की घनी छाया का संचार करके चला गया।

ज़रा देर तक की नीरवता के बाद पुण्डरीकाक्ष ने कहा—तुम्हारी दीदी ने कल उन्हें बहुत कड़ी बात कहकर डाँट दिया था। मालूम पड़ता है कि इसी से दुःखी होकर उन्होंने अपने आपको इस प्रकार का दण्ड दिया।

एना ने आश्चर्य में आकर पूछा—क्यों? दीदी ने उन्हें क्यों डाँटा ? और जब उन्होंने डाँटा ही तब वह बात तुम्हें कैसे मालूम हुई ?

पुण्डरीकाक्ष ने कहा—अब उस बात को तुम लोगों से छिपा रखने में कोई लाभ नहीं है, इससे बतलाये देता हूँ।

यह कहकर लतागृह में छिपे-छिपे पुण्डरीकाक्ष ने जो कुछ देखा-सुना था, वह सब एना से कह गया। एना तो सुनकर अवाक् रह गई।

बाद को पुण्डरीकाक्ष ने एना को और भी सारी बातें बतलाईं। जौहरी के यहाँ से मेना और एना के सारे गहने वह किस प्रकार खरीद ले आया, वे सब गहने उसने किस मतलब से रख छोड़ा था, अन्त में उन्हें लेकर वह किस प्रकार भास्कर को देने गया और भास्कर से क्या-क्या बातें हुईं, यह सब उसने एना को विस्तारपूर्वक बतलाया। इन सारी बातों से पुण्डरीकाक्ष तथा भास्कर के महत्त्व और लोभशून्यता का परिचय पा जाने पर एना का हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा। चञ्चलता की मूर्ति तथा हँसी से निरन्तर खिलखिलाती रहनेवाली एना इन बातों से इतनी प्रभावित हुई कि वह गम्भीर हो उठी। मुंह से कोई शब्द न निकाल कर उसने पुण्डरीकाक्ष के हाथ पर हाथ रख दिया। इतने ही से पुण्डरीकाक्ष ने यह अनुभव कर लिया कि कितनी अगाध श्रद्धा और प्रीति के साथ यह मेरे इस आचरण का समर्थन कर रही है।

इधर मेना पिता के पीछे-पीछे गई और जिस कमरे में कांग्रेस के वालंटियर के साथ उनकी बातें हो रही थीं, उसके दरवाज़े की आड़ में वह खड़ी हो गई। इस प्रकार गुप्त भाव से उसने सारी बातें सुन लीं। बाद को वालंटियर जब बिदा लेकर चलता बना तब उसने कमरे में प्रवेश किया और पूछने लगी—बाबू जी, क्या वह आदमी चला गया?

राजाबहादुर ने कहा—हाँ।

तब मेना मस्तक झुकाये हुए धीमे स्वर में बोली—उनकी सारी चीजें मैं एक बार देख लेती हूँ। जो कुछ कागज-पत्र हैं, वह सब हटाकर रख दूँ। तुम जरा फाटक के सन्तरियो को सावधान कर दो कि सूचना दिये बिना कोई भी बाहरी आदमी भीतर पैर न रखने पावे।

राजाबहादुर ने कहा—अच्छी बात है। परन्तु भास्कर का बक्स और दराज़ खोलोगी कैसे? कुंजी कहाँ है?

मेना ने कहा—देखूँ, शायद मेरे या एना के गुच्छे की कोई कुंजी लग जाय।

राजाबहादुर ने कहा—तब मेरा भी कुंजियों का गुच्छा ले जाओ।

भास्कर के कमरे में जाकर मेना ने बाहर का द्वार बन्द कर लिया। भीतर का द्वार उसने खोल रक्खा। उसने यह सोच रक्खा था कि यदि आवश्यकता हुई तो इसी द्वार से भाग कर मैं भीतर जा सकूँगी।

मेना और राजाबहादुर को लौटकर आते न देखकर पुण्डरीकाक्ष ने एना से कहा—अच्छा, तो आज मैं चलता हूँ, कल सवेरे ही आऊँगा। अब तुम अपनी दीदी के साथ-साथ रहना।

उन दोनों के मिलन का जो आनन्द था, उस पर विषाद की छाया पड़ गई। इससे उन दोनों ही का मन फीका पड़ गया। उनके मुख की हँसी विलीन हो गई थी। इससे एना ने कोई आपत्ति नहीं की। पुण्डरीकाक्ष भी भारी मन लिये हुए वहाँ से रवाना हो गया।

—

सत्रहवाँ परिच्छेद

भास्कर की डायरी

मेना ने जाकर भास्कर का बक्स खोला। उसमें जितने भी कागज़-पत्र थे, वे सब उठाकर वह अपने कमरे में ले आई। रात्रि मे भोजन आदि से निवृत्त होने पर उसने कमरे की साँकड़ लगा ली और उन सब काग़ज़ों को सजा-सजाकर एक बक्स में रखने लगी। उन काग़ज़ों में कुछ पूरे और कुछ अधूड़े लेख भी थे। उन सबके विषय देख-देखकर मेना ने समझ लिया कि इनमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं हो सकती। इससे उसने निश्चय किया कि इन्हें भास्कर बाबू के बक्स में रख आऊँगी। मेना ने यह भी निश्चय किया कि दो-चार पुरानी और बेमतलबी चिट्ठियाँ भी उसमें रख आऊँगी, जिससे पुलिस को इस बात का सन्देह न हो कि बक्स से कुछ काग़ज़ हटाये गये हैं।

भास्कर के उन सब काग़ज़ों में एक डायरी थी। मेना उसे उठाकर बक्स में रखने ही जा रही थी कि एकाएक वह हाथ से छूट पड़ी। उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाती हुई वह जैसे ही झुकी वैसे ही डायरी के खुले हुए पृष्ठ पर अकस्मात् अपना नाम देखकर चौंक पड़ी। उस समय मेना के हृदय में इतना प्रबल कौतूहल उत्पन्न हुआ कि वह उसे किसी प्रकार रोक न सकी और डायरी का पन्ना खोलकर पढ़ने लगी। यद्यपि हर एक पंक्ति पढ़ लेने के बाद ही मेना के मन में यह बात आती कि दूसरे की डायरी पढ़ना उचित नहीं है, परन्तु फिर भी एक पंक्ति पढ़ लेने के बाद ही दूसरी पक्ति पढ़ लेने का हृदय में इतना प्रबल आग्रह उत्पन्न होता था कि पढ़े बिना उससे रहा ही न जाता।

पहला पृष्ठ समाप्त कर लेने पर मेना का पढ़ने का नशा खूब जम गया और उस नशे में उचित-अनुचित का विचार छोड़कर वह बराबर पढ़ती ही गई। भास्कर ने लिखा था—

"खैर, गर्जनपुर के ज़मीदार लालमोहन चक्रवर्ती का पुत्र प्रभाकर आज अदृष्ट के फेर से गङ्गानगर के ज़मीदार राजाबहादुर राजेन्द्रनारायण चौधरी के घर का नौकर है। प्रभाकर चक्रवर्ती आज भास्कर राय है और अखबारवालों के लिए वह शङ्कर शर्मा है। इस प्रकार के हेर-फेर में चाहे और कुछ न हो, किन्तु कौतुक इसमें अवश्य है।

"सत्यनिधन एटर्नी आदमी अच्छा है। उसने कम से कम मेरे लिए एक नौकरी का प्रबन्ध तो कर दिया है, वह भी एक सज्जन व्यक्ति के यहाँ। साथ ही उसने मेरा वास्तविक परिचय भी गुप्त ही रक्खा है। नौकरी मैं कर रहा हूँ। किन्तु जिनके यहाँ नौकरी कर रहा हूँ, वे आदमी बहुत ही अच्छे हैं।

"राजाबहादुर मुझसे पुत्रवत् स्नेह करते हैं। उनकी कन्यायें देखने में बहुत ही सुन्दरी हैं। कितना तेज है उनके मुखमण्डल पर। विशेष-कर उनकी बड़ी कन्या मेना एक आदर्श कन्या हैं। उन्होंने अपनी गम्भीरता और मर्य्यादा के कारण एक महिमामयी महाराणी के समान सारे घर को अत्यन्त शोभाशाली और महिमामय बना रक्खा है।

"छोटी कन्या एना मानो वास्तव में एना ही हैं। वे हरिणी के समान उछलने-कूदनेवाली है, चञ्चला हैं, हँसना-खेलना और मनोरंजन करना ही उनका एकमात्र कार्य्य है। ये कभी बहुत ही सरल हो जाती हैं और कभी बहुत ही गम्भीर हो उठती है। जीवन के सभी विषयों को ये हँसी का अस्त्र लेकर खदेड़ती रहती हैं।

"इन लोगों के यहाँ मैं अच्छी ही तरह से हूँ। मैं नौकरी करता हूँ, यह अनुभव होने का अवसर इन लोगों ने कभी आने ही नहीं दिया। सभी लोग मेरा सम्मान करते हैं, मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। राजाबहादुर तक मुझे किसी प्रकार की आज्ञा नही देते। वे परामर्श

लेने के बहाने से ही जो कुछ कार्य्य होता है, उसका इशारा कर दिया करते हैं।

"मेना देवी और एनादेवी मुझसे कभी बोलती नहीं, तो भी मुझे देखने पर उनकी दृष्टि में सम्मान का ही भाव उदय हो आता है। मैंने कभी उनसे किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न भी नहीं किया। एक तो धनवान् आदमी की कन्यायें हैं, दूसरे अविवाहिता हैं। कहीं कोई यह कल्पना न कर बैठे कि मैं इनके प्रति अनुरक्त हूँ अथवा मै इनका अनुराग आकर्षित करके अपने को एक हिल्ले से लगा लेने का उद्योग कर रहा हूँ।

यहाँ मै आराम में ही हूँ। तो भी गुज्जरी नदी के तट पर गर्जनपुर गाँव में जो मेरा घर है, उसके लिए मेरा चित्त कभी-कभी दुःखी हो उठता है। वहाँ था पिता का स्नेह, माता की स्मृति, कितने प्रेमी व्यक्तियों की प्रीति और सम्मान। इसी लिए--

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते।

"मुझे सबसे अधिक क्लेश इस कारण है कि देश के कल्याण की कामना से मैंने जितने प्रकार के भी कार्य्य आरम्भ किये थे, वे सब पिता जी के आदेश से बन्द कर देने पड़े। मुझे इस प्रकार की आज्ञा उन्होंने पुलिस के भय से दी थी। पिता जी की इस आज्ञा की मैं उपेक्षा भी कर जाना चाहता था, किन्तु वे मुझसे घबराने-से लगे थे। उन्हें भय था कि मैं कहीं पुलिस के हथकण्डे में आकर उन्हें तक न उसमें फाँस बैठूँ? इसी से वे मुझसे कह बैठे कि तुम घर से निकल जाओ।

"पिता जी के मुँह से यह बात निकलते ही जो मैं घर छोड़कर चल पड़ा, इसके कई कारण हैं। एक तो मुझे यह बात लग गई, दूसरे मुझे यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ कि हमारे देशवासियों में कितनी नपुंसकता आ गई है। घर छोड़ने का तीसरा कारण यह है कि मैं बहुत अधिक नीराश हो उठा था। ग्रामवासियों की उन्नति तथा उनकी सुख-सुविधा के लिए मैंने यहाँ जो कोई भी संस्था स्थापित करने का उद्योग किया

, उसमें उन लोगों की ओर से सहायता के स्थान पर बाधा ही प्राप्त ई है। ग्रामवासियों ने मेरे सभी लोकोपकारी कार्य्यों में बहुत अधिक वेघ्न उत्पन्न किये हैं। वे सभी इस बात के लिए डरते थे कि मैं यर्थ में पुलिस को चिढ़ाने के लिए उपद्रव खड़ा कर रहा हूँ। हाय रे ाया के भय से विह्वल हो जानेवाले मूढ़ देश, अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य था जीविका के साधनों को उन्नत बनाने में तुम्हें इतना भय है, इतना नुद्योग है, इतना अनुत्साह है!"

कई दिनों के विराम के बाद एकाएक एक दिन भास्कर को फर डायरी लिखने की सूझी। उस दिन उसने लिखा था—

"मै जिस नौका पर बैठता हूँ, उसी में छिद्र हो उठता है। अपने पेता का आश्रय त्याग कर मैं राजाबहादुर के आश्रय में आया। ोई भी पिता पुत्र के प्रति जिस प्रकार का स्नेह कर सकता है, ये उससे म स्नेह मेरे प्रति नहीं करते। परन्तु इन बेचारों की अवस्था भी बहुत ी शोचनीय है। ऋण के द्वारा ये बेचारे बाल-बाल बँधे हुए हैं। मैंने नेश्चय कर लिया है कि मैं इनसे वेतन न लूँगा। रहने के लिए स्थान तथा नेह और सम्मान पा गया हूँ, यही मेरे लिए बहुत है। परन्तु मैं यदि छ न लूँगा तो भी उन्हें सङ्कोच होगा, इससे केवल पचास रुपया मासिक ेता जाऊँगा। ये रुपये मै गुप्त रीति से कांग्रेस के कार्य्य के लिए ता जाऊँगा जिससे कि पुलिस खबर पाकर कहीं हमारे पिता को तंग कर सके। मेरा खर्च मेरे लेखों के पुरस्कार से ही चल जायगा। ाकुर शर्मा के लेखों का अब खूब आदर होने लगा है।

इसके बाद कई दिनों का व्यवधान देकर डायरी में फिर लिखा था—

"डायरी लिखने का मेरा स्वभाव नहीं है, किन्तु कोई साथी न ोने के कारण मै इस कापी के पन्नों से अपने मन की बातें कहा करता ँ। यह डायरी मेरे मन की बातों की गूँगी भंडारिन है। यह मेरी रम सखी है। इसके कानों में एक-एक बात कह देने में किसी प्रकार ी आशङ्का नहीं है। यह सुनने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं

करती, किसी प्रकार का तर्क नहीं करती, कोई उपदेश नहीं देती। जो बात इससे गुप्त रखने को कही जाती है, उसी को हरएक आदमी से कहते फिरने के लिए इसका मुंह भी नहीं खुजलाता रहता।

"आज साँझ को मेना देवी के पास मैं पहले-पहल गया था। आज पहला अवसर था जब कि मैंने उनसे बातचीत की। राजाबहादुर के ऋण का हाल सुनकर उनका मुख मलिन हो उठा। परन्तु उस मुख की उस समय की शोभा जिसने नहीं देखी है उसे यह समझाना सम्भव नहीं है कि उस गम्भीरता तथा मलिनता में कैसी अनुपम सुन्दरता थी उनके मुख की। मन आज हर्ष और विषाद से परिपूर्ण हो उठा है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो आज संध्या के आकाश में नया रङ्ग लग गया है। यह क्या अनुराग की प्रतिच्छुरित आभा है?

कई दिनों के पन्ने फिर खाली छोड़ दिये गये थे। तब एक दिन के पन्ने में लिखा था—

"आज राजाबहादुर ने मेनादेवी को बतलाया—शङ्कर शर्मा के नाम से जो व्यक्ति लिखा करता है वह मैं ही हूँ। यह बात सुनकर वे मुस्कराती हुई प्रसन्नतामयी दृष्टि से मेरी ओर ताकने लगीं। इतने में ही मुझे साहित्य-साधना में सिद्धि मिल गई। साधना के अन्त में मैं देवी का वर पा गया। मैंने सुना कि शङ्कर शर्मा के लेख उन्हें पसन्द हैं। इससे यह अनुभव हो रहा है कि शङ्कर शर्मा की लेखनी और जीवन दोनों ही सार्थक हो गये। जीवन में जो भी उत्तम से उत्तम पुरस्कार मिलना सम्भव था, वह मुझे मिल गया। शनि, राहु, केतु आदि जितने भी पाप-ग्रह हैं, इस समय यदि वे सभी मिलकर मेरी ओर क्रूर दृष्टि से देखने लगें, तो भी मैं उनके कारण किसी प्रकार की चिन्ता न करूँगा।"

फिर कई दिनों का व्यवधान देकर लिखा था—

"सुनने में आया है कि कन्दर्प नामक किसी एक ज़मींदार के साथ मेनादेवी के विवाह की बात पक्की हो गई है। जाने दो, दुर्भावना दूर हुई। कभी-कभी मन में यह दुराशा उदय हो आया करती थी कि शङ्कर

शर्मा यदि प्रिय लेखक है, तो आदमी भी वह बिलकुल अपसन्द कर देने के लायक़ नहीं हो सकता। मैं तो समझता हूँ कि शङ्कर शर्मा अत्यन्त ही निम्नश्रेणी का और तुच्छ समझ लेने के लायक़ नहीं है। बात केवल इतनी है कि वह ग़रीब है। परन्तु यह ग़रीबी भी तो उसने अपने आप ही मोल ली है ? वह यदि शान्त और सुशील होकर सरकार की इच्छा के अनुकूल हवा में अपनी जीवन-नौका का पाल उड़ाता चला जाय तो इसी समय धनवान् हो सकता है। उस अवस्था में यह कन्दर्प शङ्कर शर्मा के सामने बहुत साधारण जान पड़ने लगेगा। परन्तु लोभ करना कोई अच्छी बात नहीं है। यदि मेनादेवी उस कन्दर्प के प्रति अनुरक्त हों, तो क्यों व्यर्थ में अस्वीकृत हो जाने के क्लेश को निमत्रित कर ले आऊँ ? यह मेरे लिए सौभाग्य की ही बात हुई, जो मैंने अधिक घनिष्ठता नहीं की। किसी प्रकार का सम्पर्क न स्थापित करके दूर-दूर रहकर मैंने कितनी बुद्धिमानी का काम किया है। भास्कर राय में बुद्धि है, यह कहना पड़ेगा।"

फिर कई दिनों तक कुछ नहीं लिखा गया था। अन्त में डायरी के अन्तिम पृष्ठों की ओर एक दिन लिखा था—

"पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड नामक एक सज्जन आज बाँह फुलाकर—राजगृह में प्रविष्ट हुए हैं। पहले उन्होंने अपनी बुआ को भेजकर मणि को वज्र से समुत्कीर्ण कर रक्खा था, आज वे सूत्र के समान सुड़सुड़ाकर हाज़िर हो गये। उनका निमन्त्रण है। उनकी अभ्यर्थना के लिए कल से ही राजकुमारियों का अपार आयोजन आरम्भ हो गया है। कितने प्रकार की भोजन-सामग्रियाँ कल से तैयार की जा रही हैं।

"आज दोपहर के बाद राजकुमारियों का ध्यान गया है शृंगार करने की ओर, इसलिए कि अपने सौन्दर्य से वे नवाब साहब का मन आर्कषित कर लें। राजाबहादुर मुझसे कह रहे थे, इस निमन्त्रण-सभा में उपस्थित रहने के लिए। एक आदमी का निमन्त्रण है, उसे आदरपूर्वक बुलाया जा रहा है और मुझे यों ही उपस्थित हो जाने की आज्ञा दी

जा रही हैं। मुझसे तो यह न हो सकेगा। 'हंसमध्ये वको यथा' होकर बैठे रहने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। इसके सिवा मैं क्या उपस्थित रहूँ किसी के एकान्त सम्भाषण में विघ्न डालने के लिए! किसी का रोष-भाजन बनने के लिए! 'मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः!' (मणि से विभूषित होने पर क्या सर्प भयङ्कर नहीं होता?) और उससे भी अधिक भयङ्कर होता है मणि से विभूषित प्रेम का आकांक्षी पाणि-प्रार्थी। अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर निरीह व्यक्ति को भी वह काटने दौड़ता है। इधर 'मणिना भूषिता' रूपसी भी कम भयङ्करी नहीं होती। 'मनसा देवि नमोऽस्तु ते' कहकर उन्हें बचाकर मैं दूर ही हटा रहता हूँ।

"मैंने भूल की थी। पहले से किसी के सम्बन्ध में किसी प्रकार की धारणा बनाना उचित नहीं है। मनुष्य का कार्य्य देखकर उसके सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। एनादेवी ने बडे ज़ोरों की सजावट की थी। ऐसा सुन्दर-वेश उन्होंने बनाया था कि उनकी ओर देखकर एक बार मुनि का भी मन आकर्षित हो उठे। परन्तु मेनादेवी ने किसी प्रकार का साज-शृंगार नहीं किया था। खद्दर की एक देशी साड़ी और एक साधारण कुर्ती पहने हुए अपनी शुचिव्रता मूर्ति में वे अधिक सुन्दरी हो उठी थीं। इस वेश में वे बड़ी ही सुन्दरी मालूम पड़ रही थी। शायद मेरी दृष्टि में पक्षपातिता दोष आ गया हो। होगा, कौन जाने?"

फिर कई दिनों के पृष्ठ खाली पड़े थे। बाद को बिलकुल कल की तारीख़ में लिखा था—

"पुण्डरीकाक्ष तो प्रतिदिन ही आते-जाते रहते हैं। एनादेवी उनके आगमन की प्रतीक्षा में वासकसज्जा किये हुए प्रतिदिन ही बरामदे में खड़ी रहती हैं। इस प्रकार दोनों ही बहनें 'बुकड' हैं। यह खूब रहा! परन्तु दो दिन से दोनों बहनें बहुत उदास मालूम पड़ती हैं! कारण क्या है? क्या इन दोनों में कुछ झगड़ा हो गया है?"

"आज अकस्मात् कन्दर्प प्रकट हो आये हैं। खूब अच्छे डील-डौल के हैं। हृष्ट-पुष्ट हैं! मुखमण्डल पर प्रसन्नता की रेखा विराजमान

रहती है। नौकर-चाकर के हाथ से पाले-पोसे गये जीव हैं। और बेचारा पुण्डरीकाक्ष! वह तो इनके सामने बिलकुल ही निष्प्रभ हो उठेगा। हजार हो, वह तो अभी एकाएक कल धनवान् हुआ है और ये हैं जमींदार के लड़के!

"मेरा भी निमन्त्रण है। राजाबहादुर ने बड़े आग्रह के साथ कहा है इससे मैं अस्वीकार नहीं कर सका। परन्तु मैं इस सभा में तो बिलकुल ही वशीभूत-सा हुआ बैठा रहूँगा। पुण्डरीकाक्ष एकाएक उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ है, एकाएक नवाब बन बैठा है! मेरे जैसे ग़रीब नौकर से बातचीत करने में उसे अपनी मर्यादा में कमी आ जाने की आशङ्का होती है। पहले जब वह मुझे देखता था, तब विनीत भाव से नमस्कार करता था। आज-कल का यह हाल है कि मेरी ओर वह देखता तक नहीं! सामना हो जाने पर मुँह फेर लेता है और छाती फुलाये हुए अपने रास्ते चला जाता है। मन ही मन मुझे हँसी आती है। हँसी इस बात पर आती है कि धनवान् हो जाने पर असभ्यता प्रदर्शित करने तथा दूसरों का तिरस्कार करने की आदत डाल लेने की क्या आवश्यकता है?

"और कन्दर्प? वह तो ज़मींदार आदमी है। उसके लिए तो मेरे-जैसे नौकर से बातचीत करना ही असम्भव है। घर की लड़कियों तक ने तो कभी मुझसे बातचीत करने या मुझे जानने की इच्छा की नहीं। आज इस निमन्त्रण-सभा में क्या वे मुझसे बोलने लगेंगी? अकेले राजाबहादुर सुजनता के अवतार हैं। शिष्टाचार की रक्षा के लिए वे अपने नौकर के भी सम्मान में अपने भावी जामाताओं से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं आने देंगे। इससे बड़ा तमाशा होगा। वे दोनों ही मन ही मन अपना अपमान समझेंगे, क्रुद्ध होंगे और कुढ़-मुढ़ायेंगे।

"निमन्त्रण-सभा में जाकर देखा तो वहाँ की अद्भुत ही लीला थी। कन्दर्प खूब उछलते-कूदते हुए अपनी वीरता की घोषणा

कर रहे थे। उनके एक बार ज़रा-सा विराम लेते ही एनादेवी ने मुझसे अनुरोध किया, चलिए भास्कर बाबू, हम लोग बग़ीचे में टहल आवें। मैं तो सोच रहा था कि इन कन्दर्प का मुख जब तक खाद्य और पानीय से नहीं पूर्ण हो जाता तब तक इनकी ये गर्वमय बातें हम लोगों को गले के नीचे उतारनी ही पड़ेंगी। अब एनादेवी के आह्वान से मैं चकित तो अवश्य हुआ, किन्तु आत्म-रक्षा का मार्ग पाकर उनके साथ निकल पड़ा। इससे पहले एनादेवी ने कभी मुझसे बातचीत नहीं की थी। मैंने भी उनके पास फटकने का साहस नहीं किया था। कई दिन काम के बहाने से मेनादेवी के पास अवश्य गया था, किन्तु उनसे भी काम के सम्बन्ध की बातों के सिवा और एक भी बात नहीं की। परन्तु आज यह कैसी बात हो गई? इस तरह की घटना की तो कभी कल्पना तक मन में नहीं उदित हुई थी!

एनादेवी ने मुझे अपने साथ में बुला भर लिया, घर से बाहर निकलने पर उन्होंने मुझसे एक भी बात नहीं की। मैं पड़ गया बड़े सङ्कट में। न तो मुझसे बोलते बनता था और न चुप रहते बनता था। न तो उनका साथ छोड़कर चला आते बनता था और न उनकी छाया का सहचर होकर उनके पीछे-पीछे मुझसे घूमते ही बनता था।

एकाएक एना ने देखा कि बेचारा पुण्डरीकाक्ष छोटा-सा मुँह किये हुए पैर घिसलाते-घिसलाते किसी प्रकार अकेला ही बग़ीचे में टहल रहा है, मेना को लेकर कन्दर्प बग़ीचे की दूसरी ओर इससे ज़रा-सा पहले ही चला गया है। इस प्रकार दोनों राजकुमारियों ने, कन्दर्प को और मुझे अपना साथी चुन-चुनकर उस बेचारे को चरने के लिए अकेला ही छोड़ दिया। बेचारे की अवस्था देखकर मुझे बड़ी ममता हो रही थी। ऐसे समय में पुण्डरीकाक्ष का सामना होते ही एना खिल-खिलाकर ख़ूब ज़ोर से हँस पड़ीं।

"एना की उस समय की हँसी में इतना व्यङ्ग्य था कि उसके आघात से पुण्डरीकाक्ष बहुत ही संकुचित हो उठा। उसकी आकृति बिलकुल ही तेजहीन हो गई। जान पड़ने लगा कि अब पुण्डरीकाक्ष की नाड़ी ही छूट जाना चाहती है।

"एना मुझे साथ में लिये हुए तेजी से पैर बढ़ाती हुई दूसरी ओर चली गई, पुण्डरीकाक्ष से बहुत दूरी पर। पुण्डरीकाक्ष की दृष्टि की आड़ मे होते ही उन्होंने तड़ाक-फड़ाक मेरा भी साथ छोड़ दिया और घर की ओर चल पड़ीं।

"अब पुण्डरीकाक्ष की-सी ही दशा मेरी भी हो गई। मैं भी अकेला पड़ गया। इससे लौटकर घर में अपने आपको छिपाने जा रहा था। इतने में एकाएक मेरे कान में मेनादेवी की आवाज़ आई। उस आवाज़ में भय था, व्याकुलता थी और था भयङ्कर क्रोध से भरा हुआ आकुल आह्वान—भास्कर बाबू, इस शराबी बदमाश के हाथ से क्या आप मुझे बचा सकते हैं!

"कान मे पहुँचते ही मैंने पहचान लिया कि यह कण्ठ-स्वर मेनादेवी का है। जिस ओर से वह स्वर आ रहा था उसी ओर मुँह फेरकर मैंने ध्यान से देखा। किन्तु सन्ध्या के अन्धकार में मुझे कुछ दिखाई न पड़ा। लता-कुंज के भीतर से केवल धक्कमधक्के की आवाज़ कान में पड़ी, मानो कोई किसी को पटकने की कोशिश कर रहा है।

"दो ही छलाँग में मैं कुंज में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर देखा तो कन्दर्प खड़ा हाँफ रहा था। मेनादेवी भी हाँफती-हाँफती अपने अस्तव्यस्त कपड़ों को यथास्थान करके सँभाल रही थी। मामला समझने में विलम्ब नही हुआ। मेरे जी में आ रहा था कि उस कन्दर्प-स्वभाव सार्थकनामा व्यक्ति के चैतन्य का अन्त करके उसे सदा के लिए सचेत कर दूँ। परन्तु मैंने अपने आपको सँभाल लिया। सोचा कि यह राजा का भावी जामाता है और मैं राजा का एक अदना-सा नौकर हूँ। परन्तु उस हतभाग्य ने मुझे अपनी मनस्कामना पूर्ण करने का सुअवसर स्वयं

दे दिया। उसने मुझे गाली दी और उसकी गाली का जवाब मैंने घूँसे से दिया। मुँह पर ऐसे ज़ोर का घूँसा मारा कि ज़बान ही न खुल सकी। मुँह की गाली मुँह में ही रह गई। मेरा पुरस्काररूपी घूँसा खाकर कन्दर्प लड़खड़ाते-लड़खड़ाते एक फूल के वृक्ष से टकरा गया, इससे उसके पैर रुक गये और वह गिरने से बच गया।

"कन्दर्प भगा। मैं भी लता-कुंज के बाहर आ गया। वहाँ खड़े-खड़े मैं इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि मेनादेवी निकलकर आवें तो मैं उन्हें घर पहुँचा दूँ। कुंज से उनके निकलते ही मेरी जिह्वा पर कैसी दुष्टा सरस्वती बैठ गई! मैं उनसे कह बैठा—इस तरह की घटना के बाद तो आप इस बदमाश की सहधर्मिणी होना स्वीकार करेंगी नहीं, ऐसी दशा मे यदि आप कृपा करके उसके स्थान पर मुझे अभिषिक्त कर लेतीं,—

"मेरी बात समाप्त होने से पहले ही मेनादेवी भभककर जल उठीं। वह पहला अवसर था जब कि उन्होंने मुझे यह सूचित किया कि पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर का सारा ऋण चुका दिया है, और उसके बदले में उसने मेनादेवी के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। इससे वे भी अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य हुई हैं। परन्तु मेरी सच्चरित्रता, मेरी सुजनता तथा मेरे प्रेम के प्रति अत्यन्त ही निष्ठुरता-पूर्ण अन्याय करके उन्होंने मुझ पर इस प्रकार की दुर्भावना करने का अभियोग लगाया कि मैं पुण्डरीकाक्ष के द्वारा लौटाई गई ज़मींदारी के लोभ से उन्हें प्राप्त करना चाहता हूँ। यह कितनी बड़ी भूल थी उनकी, क्या मैं धन-लोलुप हूँ, ऐश्वर्य्य के फेर में हूँ! यदि मैं चाहूँ तो आज ही पिता के पास लौटकर चले जाने पर अतुलित ऐश्वर्य्य का अधीश्वर बन सकता हूँ।

"मीराबाई के स्वामी राणा कुम्भ के हृदय में भक्ति थी। किन्तु कभी वे वह भक्ति प्रकट नहीं होने देते थे। वे सोचते थे कि मेरा प्रश्रय मिल जाने पर मीरा और भी अधिक भावोन्मत्त हो उठेंगी। अन्त में

एक दिन रात में राणा जब निद्रित अवस्था में थे तब उनके मुँह से भगवान् का नाम निकल ही गया। यह सुनकर मीरा ने समझ लिया कि मेरे स्वामी तो परम भागवत हैं। इससे प्रातःकाल उठते ही उन्होंने उस दिन उत्सव मनाने की घोषणा कर दी। मीरा की यह घोषणा सुनकर राजा ने यह जानना चाहा कि यह उत्सव किस बात के लिए मनाया जा रहा है? इसके उत्तर में मीरा ने सूचित किया कि निद्रा की अवस्था में भी जो व्यक्ति भगवान् का स्मरण करता है, उसके समान भागवत और कौन हो सकता है? इस प्रकार के व्यक्ति मेरे स्वामी हैं! इसी बात की प्रसन्नता प्रकट करने के लिए मैंने आज उत्सव की घोषणा की है। मीरा की बात सुनकर राजा ने खेद प्रकट करते हुए कहा--"दीवार के अन्दर जो इतना रोज़ छिपाकर रक्खा था, वह आज निकल गया।"

"मेरी भी आज वही दशा हुई। इतने दिनों तक प्राचीररूपी वक्ष के भीतर बन्द करके जिस प्रेम को यक्ष की निधि के समान मैंने गुप्त कर रक्खा था, आज अकारण ही उसका आवरण मुक्त करके उसे अपमानित कर दिया। परन्तु मुझे पुरस्कार भी प्राप्त हो गया है। मेनादेवी ने मुझे सूचित कर दिया कि यही बात यदि मैंने कल कही होती तो वे बड़े आदर के साथ मुझे वरण कर सकती थीं। बस, मुझे जो कुछ अधिक-से-अधिक लाभ हो सकता था, वह हो गया। मैंने जो अपना प्रेम व्यक्त कर दिया, उसी के कारण तो उनके हृदय का यह गूढ़ संवाद ज्ञात करने में समर्थ हो सका हूँ। परन्तु व्यक्त कर देने के कारण प्रेम की जो अमर्यादा हुई, उससे मेरे हृदय को क्लेश हो रहा है!

"हृदय के भीतर ही भीतर जो प्रेम छिपा रहता है, वह भी कितना पवित्र होता है। अन्धकारमय हृदय में माणिक्य के समान वह देदीप्यमान रहता है, परन्तु आलोक में आने पर वही कलङ्क के समान कालिमामय दिखाई पड़ने लगता है।

"मैंने प्रियपात्र को निराशामय अवस्था में देखकर प्रेम-प्रदान करके

उसे सान्त्वना देने, उसका निराशा का सन्ताप दूर करने के विचार से ही अपना हृदय नग्न किया था। परन्तु क्या सबकी सब आशाये पूरी ही हो जाया करती हैं ? मेरी भी नहीं हुई। इसमें खेद की कौन-सी बात है ? दुःख बिलकुल ही न पा सके, इस तरह का हतभाग्य कौन है ? अपने प्रियपात्र के हाथ से यह आघात मिलने पर मेरे हृदय में जो खरोंच हो गई है, वही मेरे चिरजीवन के प्रेम का साथी और साक्षी है। परन्तु रामचन्द्र की सब बातों की पुनरावृत्ति करते हुए विलाप करने की भी मुझे इच्छा हो रही है। अपने हृदय की विकलता का मै किसी प्रकार भी निवारण नहीं कर पाता हूँ !

हा हा देवि स्फुटितहृदये ध्वंसते देहबन्धः।
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि ।।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा।
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ।।

हाय हाय देवी, मेरा हृदय फटा जा रहा है। शरीर की समस्त ग्रन्थियों के बन्धन शिथिल हो उठे है, यह जगत् शून्य-सा मालूम पड़ रहा है। निरन्तर जलती हुई चिता के समान मेरा हृदय जला जा रहा है। मेरी विरह-विधुर अन्तरात्मा अवसाद-ग्रस्त होकर अन्धतमसा में मानो निमज्जित हुई जा रही है। मोह चारों ओर से घेरे आ रहा है। बतलाओ देवि, बतलाओ, मैं मन्दभाग्य इस समय कौन-सा उपाय करूँ। ?"

उसके बाद ही आज की तारीख में लिखा है—

"कल सारी रात मुझे नींद नहीं आई। यहाँ से भागने का उपाय सोच रहा था। जिसके ऊपर धनलोलुप होने का लाञ्छन लगाया जा चुका है, उसका अब यहाँ रहना अच्छा नही है। कन्या के मन में जब इस प्रकार की बात आ जानी सम्भव है, तब पिता ही रुपये-पैसे के काम में मेरा विश्वास क्यों करने लगे ? मुझे यहाँ से भागना ही पड़ेगा, भागना ही पड़ेगा। परन्तु इस प्रकार भागने में कहीं कोई यह न समझ बैठे कि

में अमानत में ख़यानत करके भाग गया हूँ या कोई अनुचित कार्य कर बैठा हूँ, जिसका रहस्य खुल जाने की आशङ्का से अपना मुँह छिपा लिया है। समस्त रात्रि कोई उपाय स्थिर नहीं कर सका।

"सवेरा होते ही पुण्डरीकाक्ष आये थे। वे लता-कुंज के समीप कहीं थे और कल मेनादेवी के प्रति मैंने और कन्दर्प ने जो कुछ अत्याचार किया है, उसका हाल उन्हें मालूम हो गया है। उन्होंने यह भी मालूम कर लिया है कि मैं मेनादेवी से प्रेम करता हूँ। केवल इतना ही नहीं बल्कि मेनादेवी की बात सुनकर उन्होंने अपने मन में इस बात का भी मिथ्या सन्देह कर लिया है कि मेनादेवी भी मुझे चाहती हैं। हाय रे अन्ध सन्देह! यही सन्देह तो पहले मेरे हृदय में भी उदित हुआ था! इसी के कारण तो मैंने अपना गुप्त प्रेम मेनादेवी के समीप प्रकट कर देने की भूल की है! यही कारण है कि मैं इस प्रकार का लाञ्छन अपने ऊपर लगा ले आया!

"जो भी हो, पुण्डरीकाक्ष के मन में जो यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि मेनादेवी मुझसे प्रेम करती है, उसके कारण उन्होंने निश्चय कर लिया है कि उनके साथ विवाह करने की जो पुण्डरीकाक्ष की प्रार्थना है, उसे वे वापस ले लेंगे। इस प्रकार मेनादेवी का और उनका जो विवाह-सम्बन्ध स्थिर हुआ है, उससे मुक्त होकर मेनादेवी अपनी इच्छा के अनुसार मेरे साथ विवाह कर सकेंगी। मेनादेवी को इस प्रकार की स्वतन्त्रता मिल सकती है, किन्तु मेरे ऊपर जो अर्थलोलुप होने का लाञ्छन लगा है, उससे कौन मुझे छुटकारा दिला सकता है?

"पुण्डरीकाक्ष ने वह उपाय भी किया है। उन्होंने मेरे सामने कम-से-कम पचास-साठ हज़ार रुपयों की क़ीमत के सोने के जड़ाऊ गहने और सोने-चाँदी के काम के बर्तन आदि लाकर रख दिया और कहने लगे—ये सभी गहने मेनादेवी और एनादेवी के हैं! पिता को ऋण की चिन्ता से मुक्त करने के लिए उन्होंने यह सब उन्हें विक्रय के

लिए दे दिया था। जिस दिन उन सबको लेकर राजाबहादुर सराफ़ की दूकान पर देने गये थे, उस दिन पुण्डरीकाक्ष भी दूकान पर वर्त्तमान थे। राजाबहादुर तब तक पुण्डरीकाक्ष को पहचानते नहीं थे, किन्तु पुण्डरीकाक्ष राजाबहादुर को पहचानते थे। इनके दूकान से चले आने पर वे सारा सामान ख़रीद ले आये। अपने पास वे इस विचार से वह सब रक्खे थे कि मेनादेवी को विवाह में चढ़ाव में देंगे। अब उन्होंने तो यह निश्चय ही कर लिया है कि वे मेनादेवी के साथ विवाह न करेंगे, इससे उनके सभी गहने-आदि वे मुझे दे रहे थे कि मैं अपनी ओर से उन्हें चढ़ाव में दूँ, साथ ही इससे मेरे ऊपर अर्थलोलुप होने का जो लाञ्छन लगा है, वह बहुत कुछ दूर हो जाय। परन्तु ऐसा भी कहीं होता है ?

"पुण्डरीकाक्ष ने राजाबहादुर की इतनी बड़ी ज़मींदारी रेहन से छुड़ाकर उन्हें वापस दे दी है। इससे उनका कितना बड़ा ऋण राजाबहादुर के ऊपर चढ़ गया है। इसके सिवा ये गहने भी कितने मूल्यवान् हैं। सारी ज़मींदारी महाजनों से छुड़ाकर पुण्डरीकाक्ष यदि राजाबहादुर को न भी देते और राजाबहादुर उनके साथ मेना का विवाह कर देते, तो शायद दहेज के रूप में उनका दिया हुआ धन इन गहनों के मूल्य के बराबर किसी प्रकार हो जाता। ऐसी अवस्था में मेरे हृदय की कामना के पूर्ण होने का मार्ग तो उन्होंने स्वयं ही हर प्रकार से बन्द कर रक्खा है।

"पुण्डरीकाक्ष के प्रति मेरे हृदय में ज़रा भी शत्रुता का भाव नहीं है। इसके विपरीत उनके हृदय की इस प्रकार की विशालता देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। विशेषतः ऐसी परिस्थिति में, जब कि अपने प्रियपात्र को सुखी करने के लिए उन्हें मैं इस प्रकार आग्रहपूर्वक आत्म-त्याग करते देखता हूँ, तब मेरा हृदय उनके प्रति अपार श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठता है।

"इतनी बड़ी धन-राशि ले जाकर पुण्डरीकाक्ष ने मेरे सामने रख

दी और उसे ग्रहण करने के लिए वे मुझसे अनुरोध करने लगे। उन्हें इस प्रकार का निःस्वार्थ दान करते देखकर मैंने कहा—आप मेनादेवी के साथ विवाह नहीं कर सके, इसके लिए आपको दुःख और क्षोभ नहीं हो रहा है? इसके उत्तर में पुण्डरीकाक्ष ने कहा—मुझे दुःख तो हो रहा है, किन्तु क्षोभ नही हो रहा है। मैंने मेनादेवी से प्रेम किया है, यही मेरे लिए बहुत है। इसके बदले में मैं भी यदि उनका प्रेम प्राप्त करने में समर्थ हो पाता, तो वह मेरे लिए लाभ की बात होती। यदि उन्हें पत्नी के रूप में प्राप्त कर लेता तब तो मेरा परम लाभ था, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है। परन्तु मैंने तो इस प्रकार की वणिक्-वृत्ति से लाभ-हानि का लेखा लगाकर प्रेम किया नहीं। 'तस्यां प्रीतिः, तत्प्रियकार्य्यसाधनञ्च' उनमें प्रीति है तो उनके प्रिय कार्य्य का साधन करूँ। यह है मेरे प्रेम का आदर्श।

"अपनी सन्तोष-वृत्ति का परिचय देते हुए पुण्डरीकाक्ष ने कहा—हमारे देश में प्रेम के मार्ग में कितने प्रकार के विघ्न हैं! ऐसा भी प्रायः हो जाता है कि प्रेमिक-प्रेमिका और-और जाति के होते हैं, इससे उनका विवाह नहीं हो पाता। यह तो संयोग की बात थी कि मेना-देवी मेरी स्वजातीया हैं। परन्तु जन्मपत्र मिलाने पर ग्रह-योग की प्रतिकूलता होने के कारण भी तो हम दोनों के विवाह में बाधा पड़ सकती थी! इतने विघ्न जब पद-पद पर हमारे प्रेम के साथ लगे रहते हैं, तब मनोरथ सार्थक न होने पर नीराश होने का तो कोई कारण नहीं है। आशा छोड़कर ही प्रेम करना चाहिए। आशा पूर्ण हो जाय तो अच्छा ही है और यदि न पूर्ण हो तो भी सहन कर जाना चाहिए।

बात यह है कि इसका कोई निश्चय नहीं रहता कि जिससे हम प्रेम करने जा रहे हैं, उसका प्रेम आकर्षित कर ही लेंगे; या उस प्रेम-बन्धन को दृढ़ करने में समर्थ हो सकेंगे। यह सोच-समझकर ही

प्रेम के व्यापार में मैं प्रवृत्त हुआ हूँ। प्रेम तो ऐसी वस्तु है कि सब प्रकार की अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए असाध्य साधना करने पर भी नहीं उत्पन्न होता !

"पुण्डरीकाक्ष ये सब बातें कहकर मेरे ज्ञान-रूपी नेत्र खोल गये हैं। उनके निष्काम प्रेम का परिचय पाकर तथा उनके हृदय की विशालता एवं उदारता देखकर मुझे यथेष्ट बल प्राप्त हुआ है। वे मेरे गुरु हैं। ऐसे गुरु हैं, जिसकी कृपा से मैं हृदय का मोह नष्ट करने में समर्थ हो सका हूँ। मैं उन्हें मन ही मन सौ-सौ बार प्रणाम करता हूँ।

"मैंने दो दिन सोच-विचार करने के बाद पुण्डरीकाक्ष से यह बतलाने को कहा है कि मैं वे सब आभूषण आदि ग्रहण कर सकूँगा या नहीं। परन्तु वे तो मेरा सङ्कल्प स्थिर कर गये हैं। उनकी बातों पर जितना ही मैं विचार करता हूँ उतनी ही मेरे हृदय में दृढ़ता आती है, साथ ही दुःख का भाव भी नष्ट होता जाता है। मैं यहाँ से खिसकूँगा। आज ही दिन भर में राजाबहादुर के रुपयों-पैसों का हिसाब-किताब ठिकाने से लगाकर दूसरे वक़्त अगस्त्य-यात्रा करूँगा। आज-कल सरकार ने लोगों के लिए बड़ी सुविधा कर रक्खी है। खाने-पहनने का सुभीता न हो तो, सीधे जेल में पहुँच जाइए। बहुत सीधा और आसान रास्ता खुला है। समाज से मुँह छिपाकर यदि भागना चाहते हो, तो कहीं उल्टा-सीधा एक लेक्चर झाड़ जाओ अथवा दो-चार बार वन्दे मातरम् का गान कर जाओ, एक तिरङ्गा झंडा हाथ में ले लो और ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से गांधी जी की जय बोलने लगो। बस, फिर क्या रहा। सारी चिन्ता ही दूर हो गई। कम-से-कम छः महीने तो जेल की चहारदीवारी के भीतर काट ही आ सकते हो। मैंने निश्चय किया है कि आज ही साँझ को कृष्ण-मन्दिर की यात्रा करूँगा और कुछ ऐसा ढंग निकालूँगा, जिससे कम-से-कम दो वर्ष तक बाहर न निकलना पड़े।

"आज फिर सत्यनिधन एटर्नी के पास से खबर आई है कि पिता

जी का शरीर बहुत ही ख़राब हो गया है। वे कलकत्ता आ रहे हैं चिकित्सा कराने के लिए। यहाँ आकर अपनी सम्पत्ति का एक बिल भी वे करेंगे। हमारे ज़िले के वकील से विल का एक मसविदा बनवाकर सत्यनिधन के पास देखने के लिए उन्होंने भेजा है। उस विल में उन्होंने यह व्यवस्था की है कि पिता जी की मृत्यु के बाद भी एक वर्ष के भीतर मैं लौटकर न जाऊँ, तो मैंने जहाँ-जहाँ, जो-जो संस्थाये स्थापित की है, उन सभी के सञ्चालन में जमींदारी की सारी आय सदा व्यय होती रहेगी। ज़मींदारी तथा उसके आय-व्यय के प्रबन्ध का भार रहेगा थोड़े से ट्रस्टियों के हाथ मे। यदि एक वर्ष के बाद मैं कभी लौटकर जाऊँ तो मैं भी एक ट्रस्टी हो सकूँगा, किन्तु सम्पत्ति में मेरा कोई अधिकार न होगा।

"विल मे जो अन्तिम प्रस्ताव है, वह आवेश के ही कारण लिखा गया है। जो पुत्र इस प्रकार पिता की आज्ञा की अवहेलना करके निकल भागा और उसने पिता के प्रति जरा भी मोह-ममता न प्रदर्शित की, उसे दण्ड देने के ही विचार से पिता ने अपने विल में इस प्रकार की व्यवस्था की है, यह बात स्पष्ट ही है। मैंने जब से उनकी बीमारी का हाल सुना है, तभी से मेरा मन तड़फड़ा रहा है, उन्हें देखने जाने के लिए। किन्तु इस समय यदि मै जाता हूँ तो मेना के ही समान पिता जी भी हृदय में एक मिथ्या धारणा बना सकते हैं। सम्भव है, वे यही समझ बैठें कि मै उनके विल का ही हाल सुनकर दौड़ पड़ा हूँ, सम्पत्ति के अधिकार से वञ्चित हो जाने के भय से। एक बार धन के लोभ का कलङ्क लग ही चुका है मेरे ऊपर। वही बहुत है। अब पिता जी से भी यह कलङ्क क्यो लगवाऊँ?

"किसी-किसी समय सचमुच हृदय में धन का लोभ उत्पन्न हो आता है। इच्छा होती है कि पिता की सम्पत्ति का अधिकारी बनकर मेना-देवी को मैं यह दिखला दूँ कि मुझे उनके राजा पिता की केवल राज-कुमारी ही प्राप्त करने की आकांक्षा है उनके आधे राज्य की अणु-

मात्र भी अभिलाषा नहीं है। परन्तु नहीं, मेनादेवी को प्राप्त करने की कामना मुझे हृदय से निकाल देनी होगी। उन्हें प्राप्त करने का मार्ग मुझे बन्द कर देना होगा। इसलिए जेल जाने के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है।

"जेल जाने का भी मेरा यह ढंग बहुत ही लज्जाजनक है। कितने लोग देश-सेवा के लिए गौरव के साथ कारागार का जीवन स्वीकार कर रहे हैं और मैं क्या कर रहा हूँ? नितान्त ही स्वार्थपरायणता के साथ अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए स्वदेश-प्रेम का मिथ्या आवरण धारण करके जेल जाना चाहता हूँ! एक आघात के कारण जब शरीर और मन व्यथित रहता है, ठीक उसी समय दूसरा भी आघात आकर लग जाता है, तब पहले आघात की बात भूल जाती है। इससे मैं एक आघात को एक दूसरे आघात से ढकने जा रहा हूँ और लोग कहेंगे—वाह, भास्कर कैसा वीर है!

"इस प्रकार देश-सेवा का ढोंग रचकर जो स्वयं अपने को तथा दूसरों को भी ठगने जा रहा है वह हूँ मैं, इसके कारण कभी-कभी मन मे बहुत ही लज्जा और धिक्कार का भाव आता है। परन्तु रक्षा का इससे उत्तम और लाभदायक कोई दूसरा उपाय तो दिखलाई पड़ता नहीं। इससे इस मार्ग का ही अवलम्बन करना पड़ेगा।

"अभी अपना सामान यहीं पड़ा रहने देता हूँ। कांग्रेस का कोई स्वयंसेवक भेज दूँगा, वह ले जाकर कहीं रख देगा। लौटकर आने पर यदि मिल गया तो अच्छा ही है, और यदि कहीं न मिल सका तो भी मेरा कुछ होना-जाना नहीं है। इतनी बड़ी हानि जब मैं स्वीकार कर रहा हूं तब दो चार लेखों, दो-चार पुस्तकों और दो-चार धोती-कुर्तों के खो जाने से मेरा क्या बिगड़ जायगा? जो हानि मैं स्वीकार कर रहा हूँ मेनादेवी के पास से जाकर, यहाँ तक कि उन्हें एक बार देखने तक की आशा छोड़ रहा हूँ, तब इसके सामने तो और सभी प्रकार की हानियाँ मेरे लिए बहुत ही तुच्छ हैं, नगण्य हैं। समुद्रे पातिता

श या शिशिरः किं करिष्यति। जिसने समुद्र में अपनी शय्या लगाई है, उसका शिशिर-ऋतु क्या करेगी।

"भाई डायरी, तुम्हारे कान में मै हृदय की बहुत-सी बातें कह गया और ऐसी बातें कह गया, जो नितान्त ही गोपनीय हैं। जिन्हें मैं और किसी से भी कहने का साहस न कर सकता। मनुष्य को जब हृदय की बात कहने का अवसर नहीं मिलता तब उसका श्वास-रोध हो उठता है। तुम्ही मेरे एक ऐसे सहायक हो, जिसके सामने मुँह खोलकर मैं साँस ले सकता हूँ। तुम्हारे कान में मैंने अपनी अन्तिम बात कह ली। अब और कुछ कहने का समय मुझे न मिलेगा मित्र। इसलिए अब बिदा हो रहा हूँ। तुम मुझे बिदा दो। जाते समय मैं तुम्हारा अग्निसंस्कार कर जाऊँगा।"

यहीं भास्कर की डायरी समाप्त होकर रुक गई थी। शायद यहीं उसके नेत्र से एक बूँद जल भी गिरा था। उस जल का दाग़ वहाँ बना था। अन्तिम पंक्ति में एक स्थान की स्याही फैल गई थी!

मेना जब तक डायरी पढ़ रही थी, तब तक वह बराबर ही आँखें पोंछ-पोंछकर आँसुओं के समूह को हटाती जाती थी। भीगे हुए पक्ष्मजाल के भीतर से ही उसे डायरी पढ़नी पड़ रही थी। अन्त में आकर उसकी दृष्टि जब भास्कर के अश्रुजल के चिह्न पर पड़ी तब उसके नेत्रों से तर-तर करके आँसुओं की धारा बह चली। उसके आँसुओं का झरना उफना आया। शय्या पर लोटकर पश्चात्ताप के मारे वह जलने लगी। उसके मन में बार-बार केवल यही एक बात आती—मैं ही हतभागिनी हूँ, मैं ही हतभागिनी हूँ; जिसने उन्हें अपमानित करके दुःख के मुख में झोंक दिया है।

मेना का हृदय जैसे-जैसे भास्कर के प्रति प्रीति से पूर्ण होता जाता था, वैसे ही वैसे पुण्डरीकाक्ष की महत्ता के प्रति भी उसे अत्यधिक श्रद्धा होती जा रही थी। वह मन ही मन कहने लगी—एना के भाग्य बड़े अच्छे हैं जो इस प्रकार के व्यक्ति को वह स्वामी के रूप में प्राप्त

करने जा रही हैं। मेरे भाग्य में तो सुख है नहीं, वे ही लोग सुखी हों। भगवान् करें, वे सदा प्रसन्न रहें।

उस दिन रात्रि भर मे मेना को एक क्षण के लिए भी निद्रा नहीं आई। समस्त रात्रि उसने रोते ही रोते बिता दी। दूसरे दिन प्रात काल जब वह उठी तब उसके मुख-मण्डल पर क्लान्ति और विषाद का भाव उदित हो आया था। कमरे से निकलते ही दीदी के मलिन और सूखे हुए मुख पर एना की दृष्टि पड़ी। इससे वह भी दुःखित हो उठी। विषाद के मारे मुख मलिन किये हुए आकर एना ने दीदी के हाथ पर हाथ रख दिया और उसे सान्त्वना देने के लिए कोमल-स्वर मे केवल पुकार कर ही रह गई—दीदी !

मेना ने दृष्टि उठाकर बहन की ओर देखा। उसकी ओर देखते ही मेना के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। एना की भी आँखे भीग उठीं।

जरा देर तक चुपचाप आँसू बहा लेने के बाद मेना ने कहा—मैंने ही उन्हें ठेलकर जेल भेजा है एना !

आश्चर्य में आकर एना ने कहा—यह कैसे ? इसके उत्तर में मेना भास्कर की डायरी का हाल आदि से अन्त तक एना को बतला गई।

सारी बातें सुनने पर एना को जब भास्कर का परिचय मिला तब वह आश्चर्य में आ गई। भास्कर के स्वदेश-प्रेम का हाल जानकर उसे सन्तोष हुआ। मेना ने बिना सोच-विचार किये एकाएक जो उसे इस प्रकार का रूखा और कटु उत्तर दे दिया, इसके कारण एना दुःखी हुई, साथ ही वह सुखी भी हुई पुण्डरीकाक्ष की निःस्वार्थ परोपकार-परायणता का हाल जानकर। दूसरे का हित-साधन करने के लिए पुण्डरीकाक्ष इतना आत्मत्याग कर सकते हैं, यह जानकर एना का हृदय श्रद्धा से लबालब भर उठा। उसके हृदय में सुख और दुःख दोनों ही की तरङ्गें पास ही पास नाचने लगीं। उसके मुख पर सुख

और दुःख की छाया मेघ से ढकी हुई सूर्य की किरणों के समान रह-रहकर प्रकट होने और छिपने लगी।

एना से सारा हाल राजाबहादुर ने सुना। पुण्डरीकाक्ष ने भी सुना। अपनी प्रशंसा से वह लज्जित हो उठा। उसके मुख पर भी व्यथा की एक हलकी-सी छाया उदित हो आई। किन्तु मुख पर मुस्कराहट का भाव लाते हुए उसने अपनी झुकी हुई दृष्टि उठाकर एक बार एना और मेना की ओर ताका।

राजाबहादुर तथा सत्यनिधन एटर्नी ने मिलकर भास्कर के मुकदमे में बड़ी पैरवी की। कई वकील-बैरिस्टर नियुक्त किये। राजाबहादुर ने स्वयं जमानतदार होकर उसे छुड़ाने के लिए दरख्वास्त दी, किन्तु किसी प्रकार भी वह छूट न सका।

भास्कर के ऊपर जो अभियोग लगाया गया था उसे उसने स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने बहुत जोरदार शब्दों में कहा—मैंने स्वदेश-प्रेम के सम्बन्ध मे व्याख्यान देकर, वन्दे मातरम् की ध्वनि करके या राष्ट्रीय झंडा फहराकर कोई नैतिक अपराध नही किया है। ये बातें सुनने के बाद अदालत ने भास्कर को एक वर्ष का सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया।

एक दिन जेल में भास्कर को सूचना मिली कि मेना उससे मिलने आई है। पहले तो भास्कर ने यही सोचा कि उससे मिलना अस्वीकार कर दूँ। परन्तु उसके बाद ही एक बार मेना को देख लेने की इतनी प्रबल इच्छा उसके हृदय में उत्पन्न हुई कि उसका उससे न मिलने का सङ्कल्प हवा हो गया।

क़ैदियों से मिलने के लिए जो स्थान निर्दिष्ट था, वहाँ पर मेना आई। उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही भास्कर के मन में आया—

वसने परिधूसरे वसाना नियम-क्षाममुखी धृतैकवेणिः
अति-निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति

मेना मोटे खद्दर की एक साड़ी और खद्दर की ही एक

हुए थी। उसके शरीर पर कोई आभूषण नहीं था। दोनों हाथों में केवल पतली-पतली दो-चार चूड़ियाँ भर थीं। पैर उसके नंगे ही थे।

भास्कर के समीप आते ही मेना उसके चरणों पर लोट पड़ी। दण्डवत्-प्रणाम करने के बाद आँसुओं से भास्कर के चरण धोते-धोते क्षीण कण्ठ से वह केवल इतना भर कह सकी—तुमने मेरा अक्षम्य अपराध क्षमा नहीं किया, यह अच्छा किया है। यह दण्ड तुमने नहीं ग्रहण किया, मुझे दिया है। तुमसे क्षमा प्राप्त करने के लिए मैं आजन्म प्रतीक्षा करती रहूँगी। यदि हो सके, मेरा प्रायश्चित्त समाप्त होने पर मुझे क्षमा कर देना।

भास्कर नीचे की ओर झुका। उसने मेना के हाथ पकड़कर उसे उठाया। मुह से वह कुछ बोला नहीं, मेना के मुंह की ओर ताकते हुए उसने अपनी मुस्कराहट से उसे अभिनन्दित किया।

मेना ने भास्कर के हाथ से अपना हाथ खींचा नहीं। भास्कर ने भी मैना का हाथ नहीं छोड़ा। आँखों मे आँसू-भरे हुए मेना ने कहा—मैंने तुम्हारी डायरी पढ़ी है, सारी बातें मुझे मालूम हो गई हैं। पिता जी से कहकर मैंने उनकी सारी सम्पत्ति का एना के नाम विल करवा दिया है। अपने लिए मैंने उन्हे एक कौड़ी भी नहीं छोड़ने दिया। मेरे पास जितने भी वस्त्र और आभूषण थे, वे सब मैंने दीन-दुखियों को दे दिये हैं। अब मैं बिलकुल ख़ाली हाथ रहकर तुम्हारे अनुग्रहरूपी महान् ऐश्वर्य्य के लिए तपस्या करूँगी। तुम्हें यदि प्रसन्न कर सकी तो तुमसे मैं वर माँगूंगी कि तुम अपने आपको मुझे दान कर दो।

भास्कर ने मेना के दोनों हाथ ज़ोर से पकड़ लिये। मुख पर ...ता का भाव विकसित करके उसने कहा—इस समय मैं व्रतधारी ...भी मैं कुछ न कहूँगा। मुझे लौटने दो।

...ने अपनी करुणा से भरी हुई कातर-दृष्टि से भास्कर की ...र फिर ताका। तब उसने उसके चरणों पर मस्तक रखकर

प्रणाम किया और भास्कर की आकृति पर जो आनन्द का भाव विकसित था, उससे अभिषिक्त होकर वह धीरे धीरे जेल से निकल आई।

भास्कर से मेना को अकेले में मिलने का अवसर मिल सके, इसी लिए उसके साथ और कोई नहीं गया था। जेल के फाटक के पास ही एना गाड़ी पर बैठी हुई मेना की प्रतीक्षा कर रही थी। लौटकर आते ही एना ने देखा कि दीदी की नेत्रों की पलकें भीगी हुई तो हैं, किन्तु उनका मुख उज्ज्वल है। इससे उसे आशा हुई। आनन्दमय कौतूहल के साथ उसने पूछा—दीदी, क्या उन्होंने क्षमा कर दिया है ?

गाड़ी पर बैठती हुई मेना बोली—हाँ भाई, उनसे क्षमा मिल गई, उन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण किया है।

बड़ी बहन के सौभाग्य की सूचना का संवाद मिल जाने पर एना का मुख आनन्द से उज्ज्वल हो उठा।

॥ इति ॥